विचार
↓
चिंतन
↓
शोध सृजन

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed
Research Journal of Humanities

वर्ष : 10 | अंक : 40 | अप्रैल-जून, 2025
Year - 10 | Volume - 40 | April - June, 2025

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
डॉ० सुधीर कुमार तिवारी

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 10	अंक - 40	अप्रैल-जून, 2025
Year - 10	**Volume - 40**	**April-June, 2025**

प्रधान-संपादक

डॉ. सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ. योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**
संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–
सृजनश्री न्यास,
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,
उ0प्र0–212635
ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	500	1800	16,000
संस्थागत	600	2000	18,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो. गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. माधवेन्द्र पाण्डेय,** पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय।
- **प्रो. अरविंद कुमार झा,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **प्रो. सच्चिदानंद मिश्र,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- **प्रो. दयाशंकर त्रिपाठी,** बी–17, नीलकंठ बंग्लोज, वल्लभ विद्यानगर, आनंद।
- **प्रो. एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **प्रो. सुमन जैन,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
- **प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल,** इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
- **प्रो. अनूप शुक्ल,** रामजानकीपुरम्, सिविल लाइन, फतेहपुर।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** लाल बहाकुर शास्त्री पी. जी. कॉलेज, पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर, चंदौली (उ. प्र.)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. ऋषभ कुमार मिश्र**, डॉ. बी. आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. योगेश कुमार करसनभाई चाडसणिया,** उच्च शिक्षा विभाग, गुजरात सरकार।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** चंद्रधारी मिथिला कॉलेज, दरभंगा (बिहार)।
- **डॉ. हरीश पाण्डेय,** महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदू विश्वविद्यालय, वर्धा–महाराष्ट्र।
- **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनात्तूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, वाराणसी।
- **डॉ. आनंद कुमार,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर, (उ. प्र.)।
- **श्रीमती आकांक्षा अग्निहोत्री,** सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, आनंद–गुजरात।
- **डॉ. वर्षा तिवारी,** पं. शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल–(म. प्र.)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जवाबदेही नहीं होगी। किसी भी प्रकार के विवाद–संवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में ही होगा।

संपादकीय

जब हम किसी रचनात्मक विधा को समझने–समझाने की प्रक्रिया से गुजरते हैं, तभी आलोचना का जन्म होता है, और यह गुजरना– जितनी बार होता है, आलोचना उतनी ही बेहतर होती चली जाती है, लेकिन इस बात का आलोचना में ध्यान रखना बहुत ज़रूरी है कि वह तटस्थ एवं निष्पक्ष हो। यदि ऐसा नहीं होता, तो आलोचना कमजोर हो जाती है, और कमजोर आलोचना का कोई बहुत मतलब नहीं होता। आलोचना वही बेहतर है जो किसी रचना को संपूर्णता में परिभाषित करे। अगर यह संपूर्णता उसमें नहीं आती, तो आलोचना में संकीर्णता आ जाती है, और यह संकीर्णता व्यक्ति की पूँजीवादी विचारधारा के साथ धीरे–धीरे अपना विस्तार करने लगती है।...

आज से यदि हम 100 साल पहले आलोचना के क्षेत्र में चले जाएँ, तो उसमें दो बातें स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं– पहली, रचना की सैद्धांतिक प्रक्रिया के साथ उसका सामाजिक जीवन में उपयोग सिद्ध करना। अगर वह रचना सामाजिक जीवन में उपयोगी नहीं है, तो उसे स्वीकार करने में आलोचकों एवं पाठकों को असहजता होती है। दूसरा, आचार्य शुक्ल के शब्दों में अगर कहें तो– "जब कोई व्यक्ति अपने संकुचित स्वार्थ के दायरे से ऊपर उठकर, लोक–सामान्य भाव–भूमि पर पहुँच जाता है... जहाँ व्यक्ति अपने संकीर्ण स्वार्थों से परे होकर, समस्त मानव जाति के साथ एक भावनात्मक संबंध महसूस करता है।" यहीं मनुष्य व्यक्तिगत राग–द्वेष से परे होकर समाज–हित करता है और आनंदित होता है– और यह प्रक्रिया पूरे भक्तिकाल और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम दौर में देखी जा सकती है।

स्वतंत्रता के बाद भारत में या कहूँ कि पूरी दुनिया में दो तरह की विचारधाराएँ विशेष रूप से काम करती हैं– एक समाजवादी विचारधारा, जो जन–समुदाय के हित को लेकर चलती है, और दूसरी पूँजीवादी विचारधारा, जो बाज़ारवादी व्यवस्था को पल्लवित–पुष्पित करते हुए व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए आगे बढ़ने को प्रेरित करती है। धीरे–धीरे लगभग 20वीं सदी के अंत तक समाजवादी विचारधारा को धकेलते हुए, या कहूँ मिटाते हुए, पूँजीवादी विचारधारा पूरी दुनिया में प्रतिष्ठित होती चली गई और अब समाजवादी विचारधारा को पराजित करते हुए यह आगे भी निकल चुकी है। इसके तमाम कारण भी गिनाए जा सकते हैं। वे कारण समाज के लिए कितने महत्त्वपूर्ण हैं? यह कहना बड़ा कठिन है, किंतु यह स्पष्ट है कि संपूर्ण विश्व की राजनीति को आज यह पूँजीवादी विचारधारा जिस तरह से चाहती है, उस तरह से नचा रही है।

आज कई बार यह कहना कठिन हो गया है कि यह व्यक्ति राजनीतिक है या पूँजीवादी। अधिकतर जितने भी राजनीतिक लोग दुनिया में इस समय दिखाई दे रहे हैं, वे सभी कहीं न कहीं पूँजीवादी व्यवस्था के व्यापार से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। उनका यह जुड़ाव ही उन्हें राजनीति की ओर खींच रहा है, या यह भी कह सकते हैं कि बाज़ारवाद से जुड़ा हर एक बड़ा आदमी अब राजनीति के सच्चे अर्थ को खत्म करके सिर्फ बाज़ारवादी व्यवस्था के आधार पर समाज को चला रहा है।

ऐसे में यह बहुत कठिन हो जाता है कि हम एक बेहतर साहित्य की रचना कर सकें या फिर किसी रचना की बेहतर आलोचना कर सकें। एक बनी–बनायी लीक पर– आँख, नाक, मुँह सब बंद किए हुए– चलना है, या कहूँ कि अब दौड़ना है– बिना हाँ–न किए हुए। ऐसे में साहित्य का होना या न होना, आलोचना का होना या न होना– अब किसी राजनीतिक व्यवस्था को या कहूँ कि पूँजीवादी व्यवस्था को प्रभावित– नहीं करता। यह व्यवस्था जब चाहे इस साहित्यिक और आलोचनात्मक विमर्श का गला घोंट सकती है। हम ऐसे प्रयास देख भी रहे हैं, और हम यह भी देख रहे है कि आज न तो कोई बेहतर लिखने वाला है, न उसकी बेहतर कोई आलोचना करने वाला है, और न ही उसे कोई बेहतर समझने–पढ़ने–बताने–समझाने वाला है।

आज की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि नैतिक मापदंड जो हमारे थे– संपूर्ण विश्व को एक साथ चलाने के लिए– वे सब अब सिर्फ बातों में ही, या यूँ कहूँ कि झूठी बातों के रूप में ही देखे जाते हैं। सच्चाई यह है कि नैतिक मूल्यों, विचारों, सिद्धांतों का दूर–दूर तक कहीं कोई प्रयोग न तो राजनीति से जुड़ता है और न ही पूँजीवादी व्यवस्था से। अगर कहीं भी ये मूल्य जीवित हैं, तो वह हमारे घर और परिवारों में, जिन्हें ये

व्यवस्थाएँ काफ़ी समय से खत्म करने की लगातार पुरज़ोर कोशिश कर रही हैं— प्रत्यक्ष रूप से भी और अप्रत्यक्ष रूप से भी। जितने प्रकार के आधुनिक संसाधन हमें पत्राचार या मीडिया आदि में दिखाई देते हैं, वे सब कहीं न कहीं इन्हीं व्यवस्थाओं के प्रचार–प्रसार में लगे हुए हैं। चाणक्य ने कई बार इस विषय पर अपने विचार व्यक्त किए और उनकी विचारधारा में यह स्पष्ट भी था कि राजनीति जब तक बेहतर नहीं हो सकती, तब तक सामाजिक प्रक्रिया को बेहतर नहीं बनाया जा सकता। इसीलिए उन्होंने राजनीतिक व्यवस्था को एक नयी दृष्टि देते हुए चंद्रगुप्त जैसा शासक बनाया। आज किसी गुरु में ऐसा प्रभाव हमें दिखाई नहीं देता कि वह चंद्रगुप्त जैसा कोई शासक तैयार कर सके।

क्या कभी हम विवेकानंद की इस बात को भूल सकते हैं कि— "राजनीति एक खेल है, जिसे चालाक लोग खेलते हैं, मूर्ख लोग दिन भर चर्चा करते हैं!" कवि को मूर्ख बनाकर राजनीति पर कविता के माध्यम से चर्चा करने के कार्य पर लगा दिया गया, और कवि भी यह मान बैठा कि उसका काम कविता रचना नहीं है; कविता के माध्यम से राजनीति करनी है। यह बात उन्होंने लगभग सवा सौ वर्ष पहले कही थी।

आज समस्त साहित्यिक प्रक्रिया और आलोचनात्मक प्रक्रिया राजनीति की पिछलग्गू बनकर चल रही है। 1936 में प्रेमचंद ने भी 'साहित्य के उद्देश्य' नामक निबंध में लिखा था कि— "साहित्य राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई का नाम नहीं है, बल्कि राजनीति को मशाल दिखाते हुए चलने वाली सच्चाई का नाम है।" इतना पढ़ने–लिखने, समझने के बाद भी आज किसी भी नैतिक मूल्य, कर्तव्य आदि पर चर्चा करने से डर लगता है। आज की पूरी पढ़ाई–लिखाई सिर्फ सीखने की प्रक्रिया से होकर गुजरती है। एक तरफ पूरी दुनिया में तमाम तरह के फ्रॉड कराए जाते हैं, और दूसरी तरफ उनसे बचने के उपाय बताए जाते हैं। सारी की सारी प्रशासनिक व्यवस्था— इसी में लगी हुई है। इस तरह से सामाजिक–पारिवारिक व्यवस्था बिगड़ती ही चली जा रही है।...

ऐसी तमाम बातें अब चिंता का विषय बनी हुई हैं, और जिनके बीच बनी हुई हैं, वे लगातार अपनी वैचारिक प्रक्रिया के आधार पर कोशिश भी कर रहे हैं कि पुनः प्रकृति–व्यवस्था के माध्यम से समाज का संचालन किया जाए, किंतु इसकी पूर्ति की प्रक्रिया दूर–दूर तक हमें दिखाई नहीं देती। जितनी बड़ी–बड़ी वैचारिक व्यवस्थाएँ हमारे ऋषियों–मुनियों या महापुरुषों ने दी हैं, वे सब धीरे–धीरे नष्ट–भ्रष्ट हो रही हैं, या उनका कोई अर्थ ही नहीं बचा। पुलवामा जैसे हमले हों या फिर तमाम देशों में चल रही लड़ाइयाँ हों, मिसाइलों आदि के प्रयोग से जिस तरह से प्रकृति को नष्ट–भ्रष्ट किया जा रहा है— अब नहीं लगता है कि कभी हम इस कृत्रिम–व्यवस्था से दूर जाकर— प्रकृति–व्यवस्था में रह सकते हैं? कई बार ऐसा लगता है कि कृत्रिम व्यवस्था, प्रकृति व्यवस्था को बड़े साज़िश के साथ नष्ट इसलिए कर रही है क्योंकि वह अपना वर्चस्व चाहती है, और इस वर्चस्व को बनाए रखने के लिए प्रकृति व्यवस्था को नष्ट करना— उसके लिए आवश्यक हो जाता है, जिस ओर वह लगातार बढ़ रही है। इस तरह के तमाम विषयों को लोग— जान और समझ रहे हैं, लेकिन उस पर काम होता हुआ— बहुत कम दिखाई देता है क्योंकि जो पढ़–लिख रहे हैं, वे सब जान रहे हैं, और जो नहीं पढ़–लिख रहे हैं— वे अब जानना भी नहीं चाहते, और उनकी नज़र में या तो पढ़ने–लिखने वाले मूर्ख हैं, या पागल हैं, या फिर कुछ...— यह वर्तमान की सच्चाई है।

उपरोक्त पत्रिका का यह अंक कुल 21 शीर्षकों में प्रकाशित हो रहा है, जिसमें हिंदी–भाषा के 19 (उन्नीस, पुस्तक समीक्षा एवं संगोष्ठी प्रतिवेदन सहित), संस्कृत–भाषा का 1 (एक), और अंग्रेजी–भाषा का 1 (एक) शोध–पत्र शामिल हैं। सभी शोध–पत्र या लेख अपने–अपने क्षेत्र के विद्वानों की महनीय अभिव्यक्तियाँ हैं। इन लेखों से हमारे पाठक निश्चित रूप से लाभांवित होंगे।

इस अंक के संपादन हेतु 'आलोचन–दृष्टि परिवार' को सादर आभार ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहयोग और सहकार से ही— पत्रिका का यह अंक अपना अंतिम कलेवर ग्रहण कर रहा है। साथ ही, पाठकों–लेखकों के स्नेह एवं लगाव के प्रति भी, कृतज्ञ हूँ। शेष....

30 जून, 2025।

विषयानुक्रमणिका

- संपादकीय iii-iv
- विषयानुक्रमणिका v-vi

1. उत्तर आधुनिकता : भाषा और साहित्य के समक्ष चुनौतियाँ 1-3
प्रो. विजयकुमार रोडे

2. जयशंकर प्रसाद की चिंतन-पद्धति 4-7
डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय

3. आकांक्षा, आदर्श और स्वप्न की उत्सवधर्मिता की कविता ('जूही की कली' का...) 8-12
डॉ. सर्वेश मौर्य

4. धर्मांतरण, अंतर्जातीय प्रेम विवाह और जाति का प्रश्न 13-18
डॉ. नितीन गायकवाड

5. रघुवीर सहाय की काव्य-संवेदना 19-24
सचिन शुक्ला

6. 'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी' का सांस्कृतिक दृष्टिकोण एवं भाषिक औचित्य 25-29
किरन असवाल एवं डॉ. अजीत सिंह तोमर

7. अनूप वशिष्ठ की गज़लों का भाषाई वैशिष्ट्य 30-32
शैलेन्द्र गुप्ता

8. भारतीय संस्कृति में गोदान की प्रासंगिकता 33-35
डॉ. पराक्रम सिंह

9. नागार्जुन : कल और आज (नागार्जुन की प्रमुख कविताएँ के संदर्भ में) 36-39
डॉ. वसीम आलम

10. हिन्दी शोध : परिभाषा और स्वरूप 40-42
खुशबू कुमारी एवं प्रो. (डॉ.) रामनरेश पंडित

11. हिंदी बाल कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ : एक अध्ययन 43-47
दर्शना एवं प्रो. कविता त्यागी

12. बच्चों में पाठ्यसहगामी गतिविधियों के माध्यम से नागरिक अवबोध का विकास 48-54
हर्षवर्धन एवं अमृता बरनवाल

13. भारतीय ज्ञान परंपरा में वाणिज्यिक संप्रत्यय (स्मृति ग्रंथों के विशेष संदर्भ में) 55-66
ओम प्रकाश, डॉ. रोमसा शुक्ला एवं डॉ. हरीश पाण्डेय

14. प्रगतिवादी कविता में स्त्री : वस्तु से विषय बनने की प्रक्रिया 67-71
अनुज यादव एवं डॉ. कमलेश कुमारी

15. हिंदी में राम काव्य 72-75
अखिलानंद मिश्र एवं डॉ. ललित कुमार सिंह

16. श्यौराज सिंह 'बेचैन' के साहित्य में सामाजिक न्याय 76-82
राजेंद्र श्रीमंत आठवले

17. नयी वैचारिक जमीन की दस्तक : 'फुज्जार' कहानी संग्रह 83-87
डॉ. सुनील कुमार मानस

18. समकालीन भारत का ग्रामीण विकास : समीक्षात्मक अनुशीलन 88-95
निशान्त सक्सेना

19. संस्कृत आशिवर्चन मन्त्राः शुभेच्छयाः दिव्यपरम्परा 96-99
डॉ. सुनील कुमार मानस

20. **Tech-Driven Inclusion : Enhancing Entrepreneurship & Innovation for...** 100-103
Dr. Nigam B. Pandya

21. 'फुज्जार' कहानी संग्रह की पुस्तक समीक्षा व राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन... 104-104
धनेश दत्त पाण्डेय

उत्तर आधुनिकता : भाषा और साहित्य के समक्ष चुनौतियाँ

प्रो. विजयकुमार रोडे*

सारांश :– उत्तर आधुनिकता आधुनिकता के पश्चात उत्पन्न एक बहुआयामी, जटिल बौद्धिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विमर्श है, जो बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वैश्विक ज्ञान तथा सांस्कृतिक परंपराओं को प्रभावित कर उन्हें पुनर्परिभाषित करने का प्रयास करता है। पॉल द मान, मिशेल फूको, जॉक देरिदा तथा रोला बार्थ उत्तर आधुनिकतावाद के चिंतक माने गए हैं।

उत्तर आधुनिकता का उद्भव पश्चीमी समाज में उपभोक्तावादी संस्कृति, पूंजीवादी मीडिया और तकनीकी विकास के परिणाम स्वरूप हुआ है। उत्तर आधुनिक विचार में 'महा आख्यानों' का अंत घोषित किया गया, जिसमें साहित्यिक और भाषाई संरचनाओं की सार्वभौमिकता पर प्रश्न उपस्थित किए गए। हिंदी भाषा और साहित्य, जो परंपरा, भावबोध और सामाजिक प्रतिबद्धता के आयामों में विकसित हुए हैं वे उत्तर आधुनिक विमर्श से कई प्रकार की चुनौतियों से घिर गए हैं। अतः यह शोधपत्र भाषा और साहित्य की बहुआयामी चुनौतियों का विश्लेषण करने का प्रयास करता है।

बीज शब्द : आधुनिकता, उत्तर–आधुनिकता, भाषा, साहित्य, पूँजीवाद, मीडिया, संरचनावाद, विखंडनवाद, भाषा, संक्रमण, सोशल मीडिया, भूमंडलीकरण।

विश्व में कला, साहित्य, संस्कृति तथा समाज में युगानुरूप, परिवर्तन होते गए हैं। इन क्षेत्रों में सारी स्थितियाँ स्थिर, अपरिवर्तनशील कभी नहीं रही है। इतिहास में किसी न किसी युग में समाज, विज्ञान, राजनीति, कला, साहित्य और विचारधारा में व्यापक और प्रभावी रूप में जब बदलाव दिखायी दें, तब हम यह स्वीकारने लगते हैं कि किसी एक युग का समापन होकर नए युग का आरंभ हो रहा है। परंतु यह स्थिति संक्रमण की होती है। न पुराना युग पूरी तरह अपना अस्तित्व खो देता है, न नया युग पूर्णतः स्थापित हो जाता है। ''आज जिसे उत्तर आधुनिकता का युग कहा जा रहा है, उसका प्रारंभ इसी प्रकार आधुनिकता के तत्वों में तब्दीली के कारण हुआ है। हम आज कला, दर्शन, साहित्य, अर्थव्यवस्था एवं तकनीकी में जो परिवर्तन देख रहे हैं, उस परिवर्तन को नए नजरिए से देखा जा रहा है। उसे नए तरिके से परिभाषित किया जा रहा है। जिसे आधुनिकता के दायरे में समेटना असंभव–सा हो गया है। अतः वर्तमान समय आधुनिकता के बाद का समय बन गया है। दूसरे शब्दों में इसे उत्तर आधुनिकता का दौर माना जाने लगा है।''[1] इस दिशा में पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' कहते हैं– ''उत्तर आधुनिकता को प्रायः समाज–राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में होनेवाले परिवर्तनों से जोड़कर देखा गया है। एक ओर उसे 'आधुनिकतावाद का नवजात शिशु' या उसकी 'नवजात स्थिति' माना गया है, तो दूसरी ओर उसे आधुनिकता की भस्म से उत्पन्न कहा गया है।''[2]

भारतीय जन मानस ने आधुनिकता की स्वतंत्र खोज कभी नहीं की। बल्कि वह पश्चीम की आधुनिकता से प्रभावित और प्रेरित होकर उसका अर्जन करता रहा। 'आधुनिकता की मूल अवधारणाओं पर हमारे यहाँ कम ही विचार किया गया।' वर्तमान में ''हम जिस आधुनिकता की बात करते हैं वह पश्चीम में जन्मी थी। पश्चीमी देशों ने इस आधुनिकता को एक अस्त्र के रूप में प्रयोग कर उपनिवेशों में अपने द्वारा किए जानेवाले शोषण को न केवल न्याय संगत अपितु अनिवार्य घोषित किया।''[3]

वास्तविक रूप में पश्चिम में आधुनिकता का आरंभ चौदहवीं शताब्दी से माना जाता है, जो सत्रहवीं–अठारहवीं शताब्दी तक आते–आते समूचे विश्व में विस्तार पाता है। ''उत्तर आधुनिकता की

* **हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे।**

अवधारणा व्यापक और बहुआयामी है। कई बार इसे आधुनिकता बोध के एक विस्तार के रूप में देखा गया है तो कुछ व्याख्याकार इसे आधुनिकता बोध की प्रतिक्रिया में जन्मे एक परवर्ती अध्याय के रूप में देखते हैं।''[4] प्रमुख रूप से उत्तर–आधुनिकतावाद की विभिन्न ज्ञान शाखाओं पर अपना चिंतन उद्‌घाटित करनेवाले विद्वानों में– पॉल द मान, मिशेल फूको जॉक देरिदा तथा रोला बार्थ माने जाते हैं। इनके अलावा भी पश्चिमी देशों में भाषा, साहित्य, कला, दर्शन आदि पर चिंतन प्रकट करनेवालों में ल्योतार्द, जूलिया क्रिस्तिएवा, जॉक लकाँ, फ्रेडरिक जेम्सन आदि का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है।

साहित्य के क्षेत्र में लेखकीय रचनाधर्मिता का अवसान और पाठक की उपस्थिति का विवाद पश्चीम में बीसवीं शताब्दी के पाँचवे और छटे दशक से माना जाता है। इस दौर में पश्चीम में कला, साहित्य, ज्ञान विचार आदि की मृत्यु घोषित करने की मानो चिंतकों में होड–सी लगी थी। टॉमस एजि और विलियम हेमिल्टन ने 'द रैडिकल थियरी एंड द डेथ ऑफ गॉड (1966) लिखकर ईश्वर की मृत्यु की घोषणा कर दी। जॉक देरिदा ने 'मनुष्य की मृत्यु' (1982), फ्रांसिस फुकुयामा ने इतिहास का अंत' (1991), डैनियल बेल ने 'विचारधारा का अंत' (1960), गियन्नी वातीमों ने 'आधुनिकता का अंत' (1991), विक्टर वर्गिन ने 'कला का अंत' (1986), एल्विव कर्नान ने 'साहित्य की मृत्यु' (1990), रोला बार्थ ने, 'लेखक की मृत्यु' (1968) तथा मिशेल फूको ने 'आलोचक की मृत्यु' की घोषणा कर डाली। आश्चर्य की बात यह कि संसार के विचारकों ने समय–समय पर इस बात पर बल दिया कि 'संसार निरंतर नव रूपों को परिधान कर मनुष्य को जीवन जीने के लिए आशावान बनाता है।' महात्मा गौतम बुध्द ने भी कहा था– 'मृत्यु जीवन की कोई भयावह घटना नहीं है, वह जीवन का पूर्णत्व होती है।' ऐसे में उत्तर आधुनिक सोच जो यह कहती है कि 'अब साहित्य नाम की कोई वस्तु नहीं है। साहित्य से किसी प्रकार की मंगल कामना करना व्यर्थ है। चाहे वह राजनीति की कोई पुस्तक हो, साहित्य–दर्शन या अर्थशास्त्र की पुस्तक हो सब टेक्स्ट है पाठ है। यह धारणा पारंपारिक धारणा के विपरीत है एवं साहित्य की अस्मिता एवं अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न खडा करती है।''[5] निश्चित रूप से हर युग में कला, साहित्य, संस्कृति तथा ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के प्रति देखने का और समझने का दृष्टिकोण बदलते रहता है, परंतु संपूर्ण रूप से कला अथवा साहित्य की मृत्यु घोषित करना संदिग्धता निर्माण करना है। विचारक फ्रांसुआ कहते हैं– ''उत्तर आधुनिकता आधुनिकता के विपरीत न होकर उसका क्रमिक विकास है जिसमें आधुनिकता के संकटों, उसकी समस्याओं को नई स्थितियों के अनुरूप व्याख्यायित किया गया है।''[6] इसी प्रकार वार्ताओं नई संभावनाओं की खोज के रूप में उत्तर आधुनिकतावाद के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं।

रोला बार्थ ने 'द डेथ ऑफ द ऑथर' (1968) में इस बात को दर्ज किया है कि 'समय आ गया है कि आलोचना एवं दर्शन लेखक, साहित्यकार के लुप्त होने या उसके अवसान की वास्तविकता को स्वीकार करले... एक संस्था के रूप में लेखक की मृत्यु हो चुकी है।' परंतु इस प्रकार की अवधारणा को पूर्ण रूप से स्वीकारा नहीं जा सकता। वर्तमान समय में डिजिटल युग ने साहित्यिक अभिव्यक्ति को लोकतांत्रिक और त्वरित बना दिया है। ब्लॉग लेखन, ई–पुस्तकें, सोशल मीडिया तथा पॉडकास्ट जैसे माध्यमों ने लेखक और पाठकों को एक–दूसरों के करीब लाया है। वहीं दूसरी ओर दुनिया भर में पाठक क्लासिक रचनाओं को पुनः पुनः पढ़ते हैं। ऐसे में साहित्य और साहित्यकार पर प्रश्न उपस्थित करना संभ्रम उत्पन्न करता है।

उत्तर आधुनिक साहित्य बहुलता, विखंडन और आत्मसंशय को अपनाता है। हिंदी साहित्य में भी इसके प्रभाव स्वरूप रचनात्मकता के नए रूप उभरकर आए हैं। आत्मकथा लेखन, दलित लेखन, स्त्रीवादी लेखन, आदिवासी तथा समलैंगिकतावादी साहित्य आदि को देखा जा सकता है। उत्तर आधुनिक समय में साहित्य बाजार के नियमों के अधिन होने का खतरा अधिक बढ गया है। प्रकाशन जगत में विक्रय योग्य विषयों, लोकप्रिय शैली और मनोरंजन को प्राथमिकता मिल रही है। गंभीर साहित्यिक कृतियाँ प्रकाशकों की प्राथमिकता से बाहर होती जा रही है। इसका दुष्परिणाम यह है कि नव लेखन सतही, त्वरित और उपभोक्तावादी बनता जा रहा है। जिसमें चिंतनशीलता और भाषा का सौंदर्य गौण हो जाता है। ''स्थितियाँ हमारे अनुकूल हो या प्रतिकूल, जिस दौर से हम गुजर रहे हैं उसमें इस विश्वव्यापी परिवर्तन श्रृंखला से बच

निकलना मुश्किल है। हम एक भूमंडलीय वातावरण में है।''[7] पारंपरिक कलाएँ और साहित्य की जगह अब ई–माध्यमों ने ली है।

डॉ. माणिक मृगेश कहते हैं– ''भाषा एक तारतम्य है। एक सूत्र है। जब सूत्र ही छिन्न–भिन्न या टूटा हुआ होगा तो संप्रेषण नहीं होगा।''[8] 'परंतु आश्चर्य की बात यह है कि उत्तर आधुनिकतावादी विद्वान शब्द एवं अर्थ में कोई मूलभूत संबंध नहीं मानते। उनके अनुसार अपनी कल्पना नुसार किसी शब्द का अर्थ गढा जा सकता है। वे इसे शब्द की जनतांत्रिकता कहते हैं। ''प्राचीन भाषा शास्त्रियों ने शब्द एवं अर्थ का अटूट संबंध बतलाया है। काव्य की परिभाषा इतनी व्यापक हुई कि 'शब्दार्थों सहितों काव्यम्' की घोषणा की गई। किंतु उत्तर आधुनिकतावादी विद्वान शब्द एवं अर्थ में कोई मूलभूत संबंध नहीं मानते।''[9] अतः शब्द और अर्थ की यह दशा चिंताजनक है, जिसे आधुनिकतावादियों ने नई परिभाषा दी है। शब्द और अर्थ के इस जनतांत्रिक प्रयोग पर जार्ज कोनार्ड कहते हैं– ''यह एक खतरनाक समय है। शब्द की गरिमा नष्ट हो रही है। पात्र छिन्न–भिन्न हो रहे हैं और स्मृतियाँ अस्त–व्यस्त।''[10] 'भाषा की संकरता एवं वैश्वीकरण का प्रभाव आधुनिक युग में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। तकनीकी संचार माध्यमों ने पारंपरिक भाषाई संरचनाओं को प्रभावित किया है।

निष्कर्ष :– यह कहना सार्थक होगा कि उत्तर आधुनिकता हिंदी भाषा एवं साहित्य के लिए एक परीक्षा की घड़ी है। यह संकट केवल भाषा की संरचना या साहित्य की शैली तक सीमित नहीं है, बल्कि यह हमारी सांस्कृतिक दृष्टि से बौद्धिक स्वतंत्रता और साहित्यिक प्रतिबद्धता से भी जुड़ा हुआ है। यदि हिंदी, साहित्य को वर्तमान और वैश्विक संदर्भों में प्रासंगिक बनाना है, तो उसे अपने भीतर उत्तर आधुनिक आत्मबोध उत्तरदायित्व का निर्माण करना होगा।

संदर्भ–सूची :–

1. डॉ. भगवान शरण भारद्वाज, विशिष्ट साहित्यिक निबंध, नीलकमल प्रकाशन दिल्ली, 2007, पृ. 338।
2. डॉ. रेणु वर्मा, साहित्यिक निबंध, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2013, पृ. 228।
3. वेदप्रकाश भारद्वाज, यह जो उत्तर आधुनिकता है, वागर्थ, सितंबर 1998, पृ. 56।
4. सं. शंभुनाथ, हिंदी साहित्य ज्ञानकोश, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, 2019, पृ. 624।
5. डॉ. भगवान शरण भारद्वाज, विशिष्ट साहित्यिक निबंध, नीलकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृ. 341–42।
6. वेदप्रकाश भारद्वाज, यह जो उत्तर आधुनिकता है, वागर्थ, सितंबर, 1998, पृ. 60।
7. राजी सेठ, पाठकीय संभावनाओं का भविष्य, वागर्थ, सितंबर, 2001, पृ. 142।
8. डॉ. माणिक मृगेश, भूमंडलीकरण, निजीकरण व हिंदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 28।
9. डॉ. रेणु वर्मा, साहित्यिक निबंध, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2013, पृ. 233।
10. डॉ. भगवान शरण भारद्वाज, विशिष्ट साहित्यिक निबंध, नीलकमल प्रकाशन दिल्ली, 2007, पृ. 342।

जयशंकर प्रसाद की चिंतन-पद्धति

डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय *

किसी भी रचनाकार की निर्मिति का एक परिवेश होता है—जैसे शरीर में रीढ़ होती है जो शरीर को संतुलित रखती है, वैसे ही किसी लेखक की रीढ़ उसकी वैचारिक निर्मिति होती है। किस प्रकार से यह रीढ़ व चेतना बनी है, इसको जानने के लिए परिवेश को जानना होता है। जिस समय जयशंकर प्रसाद थे उस समय स्वाधीनता आंदोलन चल रहा था। मैं यह बात बहुत ठीक है कि जयशंकर प्रसाद जैसा प्रतिभाशाली लेखक उस युग में कोई नहीं था। जयशंकर प्रसाद ने जिस भी विधा में हाथ लगाया उसमें एक नई परिपाटी आरंभ कर दी और उसके मानक बन गए। कवि जयशंकर प्रसाद को आप जानते हैं। आधुनिक चेतना से संपन्न पहला व्यवस्थित महाकाव्य कामायनी को मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। नाटककार जयशंकर प्रसाद ने किन—किन आक्षेपों से गुजरकर हिंदी नाटक और रंगमंच की पीठिका तैयार की है। कहा जा रहा था कि भारतीय रंगमंच की परिपाटी के अनुकूल उनके नाटक नहीं हैं, लेकिन प्रसाद देख रहे थे कि सिनेमा आ चुका है और इसलिए ही उन्होंने कह दिया था कि नाटक रंगमंच के हिसाब से नहीं होगा नाटक के हिसाब से रंगमंच को ढलना होगा। वे सौ साल आगे की देख रहे थे, जैसे राहुल सांकृत्यायन ने बीसवीं सदी में रहते हुए 'बाइसवीं सदी' को देखा था। हिंदी नाटक की परंपरा में वे अब भी शीर्षस्थ बने हुए हैं। जब कथा लेखन में उन्होंने हाथ चलाया तो बनारस में ही प्रेमचंद भी थे। प्रेमचंद के समानांतर अलग आस्वाद की, अलग जमीन की, अलग पृष्ठभूमि की कहानियों और उपन्यासों को रच दिया। प्रसाद ने उनके समानांतर कथा साहित्य एक स्कूल बना दिया। एक चीज जिसकी तरफ ध्यान प्रायः हम हिंदी के लोगों का कम जाता है— आलोचक जयशंकर प्रसाद की तरफ। उसी समय बनारस में रामचंद्र शुक्ल थे। आलोचना में जयशंकर प्रसाद ने कम लिखा है। लेकिन जहां भी लेखनी चलायी, वहां आलोचना के नये मानकों को स्थापित कर दिया। इस विधा में उनकी असहमति रामचंद्र शुक्ल से है। 'रहस्यवाद' वाला निबंध उनकी आलोचनात्मक प्रतिभा का प्रमाण है। इस विषय पर रामचंद्र शुक्ल उनसे कमतर प्रतीत होते हैं और यहीं पर हमें बोध होता है कि भारतीय चिंतन पद्धति और भारतीय सांस्कृतिक विमर्श को जयशंकर प्रसाद ने जितना पचाया और समझा है वैसी व्यापक समझ और उसको कहने का साहस बहुत कम लोगों में है। 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' से गुजरने; विशेष तौर पर 'काव्य और कला' और 'रहस्यवाद' वाले निबंधों से जयशंकर प्रसाद की वैचारिक निर्मिति को समझने की कुंजी मिलती है। प्रसाद अपनी चिंतन—प्रक्रिया में जाना किधर चाहते हैं या जा किधर रहे हैं, इसका बोध मिलता है। यह रहस्यवाद ही था जिसका प्रयोग कबीर और छ्यावादी काव्य को 'रिड्यूस' करने के लिए किया गया, जिसे शुक्ल जी ने कनकौआ कहा था तथा इसे अभारतीय सिद्ध करने का प्रयास किया था। तब जयशंकर प्रसाद को लगता है कि क्या बौद्ध अब भारतीय थे? रहस्यवाद का संबंध अनेक मान्यताओं से जोड़कर जयशंकर प्रसाद ने कबीर की कविता को, खुद अपनी कविता को और पूरी छायावाद की परंपरा है यानी रहस्यवाद की परंपरा पर एक लंबा निबंध लिखा और रामचंद्र शुक्ल पर चुटकी लेते हुए कहा, "विज्ञ समालोचक भी हिंदी आलोचना करते—करते छायावाद, रहस्यवाद आदि वादों की कल्पना करके उन्हें विजातीय, विदेशी प्रमाणित करते ही हैं। यहां तक कहते हुए लोग सुने जाते हैं कि वर्तमान हिंदी कविता में अचेतन में, जड़ों में चेतनता का आरोप करना हिंदी वालों ने अंग्रेजी से सीख लिया है।"[1] जयशंकर प्रसाद ने जो साधना की पद्धति है वह कैसे हमारे वेदों से, उपनिषदों से चलती हुई बौद्धों के भीतर गई है और वहां से एक अपनी रेखा बनाते हुए हिंदी कविता में प्रविष्ट होती है, इसको रेखांकित किया है और तब लगता है कि रामचंद्र शुक्ल ने रहस्यवाद को आधार बनाकर एक परंपरा को सिरे से नकारने की कोशिश की है। जयशंकर प्रसाद का 'रहस्यवाद' निबंध से ही पता चलता है कि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर संबंधी जिन अवधारणाओं का विकास किया है उसकी पूरी जमीन जयशंकर प्रसाद की दी हुई है। इस ज़मीन पर ही हजारी प्रसाद द्विवेदी की कबीर संबंधी

* सह—आचार्य, हिंदी विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हरियाणा।

आलोचना विकसित होती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी 'कबीर' नामक पुस्तक जयशंकर प्रसाद के उस निबंध का विस्तार भर है। जब परंपरा की चर्चा होती है तब भारत की अनगिनत परम्पराओं की ओर देखना जरुरी है क्योंकि इससे ही हमारी भारतीयता बनती है, जिसमें बहुलता की चेतना है। इस संबंध में दो परंपराओं का उल्लेख आवश्यक है– एक बौद्ध परंपरा और दूसरी ब्राह्मण परंपरा। ये दोनों परम्पराएं कई स्थलों पर अनेक सहमति और असहमति के बिन्दुओं का निर्माण करती हैं। भक्ति काल को पढ़ते समय कई बार मन में यह प्रश्न आता है कि रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति के संबंध में जिस स्थापना को देने का प्रयास किया है कि मुसलमानों के आक्रमण के कारण भक्ति आंदोलन आया; ऐसी स्थिति में भक्ति आंदोलन को उत्तर भारत से आना चाहिए था, दक्षिण भारत से नहीं क्योंकि सारे आक्रमण तो पश्चिमोत्तर प्रांत से हो रहे थे। इस संबंध में प्रसाद की स्थापनाओं को देखना रुचिकर है जिसमें वे दोनों परंपराओं का उल्लेख करते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी भी दबी जबान में कहते हैं कि भक्तिकाल किसी पूर्व में चली आ रही परंपरा का उत्कर्ष है। भक्ति आंदोलन से बौद्ध परम्परा को सिरे से खारिज करने का प्रयास किया गया और इसे भारतीय ज्ञान परंपरा में भी अगर हम शामिल करते हैं तो इस परंपरा को बहुत काट–छाँट कर। हम भारतीय ज्ञान परंपरा का खाका या उसकी डिज़ाइन या उसका पूरा परिवेश को जानने के लिए जाना पड़ेगा प्रसाद जी के नाटकों के पास और इसमें उनके हर एक नाटक सहयोग करते हैं। बौद्ध दर्शन या बौद्ध परंपरा और ब्राह्मण परंपरा के बीच संवाद होता उनके कई नाटकों में दिखायी पड़ता है। ये दोनों परंपराएं बिल्कुल सम्मुख खड़ी हैं। 'स्कंदगुप्त' और 'चंद्रगुप्त' में हर जगह यह द्वंद्व मिलता है। उनमें स्वाधीनता संग्राम का परिवेश होने के कारण हम यह मान लेते हैं कि इसमें जो लक्षण दिखाए गए हैं वे सारे लक्षण देशभक्ति के हैं। उनमें सिर्फ देशभक्ति के लक्षण नहीं हैं। प्रसाद जी ने अगर पीछे का परिवेश लिया है तो कुछ सोच समझकर लिया होगा। यहाँ सिर्फ ऐतिहासिकता का प्रश्न नहीं है। वहाँ वैचारिक संघर्ष और टकराहट भी है। प्रसाद का संघर्ष भी एकहरा नहीं था। वे एक तरफ भारतीय ज्ञान मीमांसा में हस्तक्षेप कर रहे थे और दूसरी ओर जिस ओरिएण्टल स्टडीज़ को स्थापित करने की अंग्रेज कोशिश कर रहे थे, उससे भी संघर्ष कर रहे थे। प्रसादजी ने उस ओरिएण्टल स्टडीज़ के विरुद्ध इंडिजिनियस स्टडीज़ की अवधारणा को विकसित किया। इसके लिए जरूरी था कि पीछे जो हमारा विमर्श और हमारी बहसें रही हैं, उनकी तरफ जाया जाए। उनकी समस्त विचारभूमि इसके आस–पास बनी हुई है। समस्त भारतीय चिंतन परंपरा में ब्राह्मण परंपरा और बौद्ध परंपरा की केन्द्रीय भूमिका रही है। 'स्कंदगुप्त' के दो पात्र हैं। एक है– प्रपंचबुद्धि, जो विद्रोह में शामिल है और एक है–प्रख्यातकीर्ति। इस नाटक में ध्यान देने योग्य है कि बार–बार बौद्ध मठों पर आक्षेप लगता है कि वे राज्यसत्ता के विरुद्ध हैं, जो शासकीय व्यवस्था है उसके विरुद्ध विद्रोह कर रहे हैं। जैसे प्रपंचबुद्धि नाम ही से पता चल रहा है कि कुछ खल या बुरे किस्म का व्यक्ति होगा। प्रपंचबुद्धि के समक्ष जयशंकर प्रसाद ने प्रख्यात कीर्ति को रखा है। इस नाटक में ब्राह्मण और बौद्ध, दोनों आमने–सामने हैं। यह आरोप लगाया जाता है कि नाटक में जो बौद्ध श्रमण केंद्र है, जिसे संघ कहते हैं, वहाँ से राज्य विरुद्ध गतिविधियाँ होती हैं। वहाँ हूणों, यवनों एवं म्लच्छों को प्रश्रय दिया जाता है। नाटक में प्रख्यातकीर्ति बौद्ध चिंतन को स्पष्ट करता है, "यही आपका धर्मोन्माद था? एक युद्ध करने वाली मनोवृत्ति की प्रेरणा से उत्तेजित होकर अधर्म करना और धर्माचरण की दुदुंभी बजाना–यही यही आपकी करुणा की सीमा है। जाइए, घर लौट जाइए। (ब्राह्मण से) आओ, रक्त–पिपासु धार्मिक ! मेरा उपहार देकर अपने देवता को संतुष्ट करो।"[2] प्रसादजी के भीतर भी खींचतान दोनों परंपराओं को लेकर है। बनारस में बैठे हैं तो उनका जो नित्य का परिवेश है वो खींचतान कर रहा है उनके भीतर। 'चंद्रगुप्त' में चाणक्य ने नाटक के पहले और दूसरे अंक में नन्द वंश पर जो आक्षेप लगाए हैं, वे आरोप विचारणीय हैं। नंद वंश का शासन अच्छा था बुरा था, यह विचारणीय विषय हो सकता है। लेकिन, नंद को कहा जाता है कि वह जारज पुत्र है और बौद्धों के हिसाब से कार्य कर रहा है। उसके शासन में जनता उत्पीड़ित है। उन्होंने एक पात्र नाम राक्षस नाम रखा है, वह बौद्ध है। वह बौद्ध चिंतन का प्रतिनिधि है। वह चाणक्य से कहता है कि केवल सत् धर्म की शिक्षा ही मनुष्य के लिए पर्याप्त है। चाणक्य प्रति उत्तर करता है, "बौद्ध धर्म की शिक्षा मानव–व्यवहार के लिए पूर्ण नहीं हो सकती भले ही वह संघ–विहार में रहने वाले लोगों के लिए उपयुक्त हो।"[3] यह टकराहट है दोनों परंपराओं में। प्रसादजी इसको दबाना–छिपाना नहीं चाहते। दोनों को समक्ष रख रहे हैं और किसको श्रेष्ठ बताना है, इसका भी प्रयास नहीं करते। दोनों को

आमने–सामने रखकर और पाठकों पर यह निर्णय छोड़ते हैं। एक ब्रह्मचारी कहता है, "नन्द केवल शस्त्र–बल और कूटनीति के द्वारा सदाचारों के सिर पर तांडव नृत्य कर रहा है। वह सिद्धांत विहीन, नृशंस कभी बौद्धों का पक्षपाती, कभी वैदिकों का अनुयायी बनकर दोनों में भेद–नीति चलाकर बल संचय करता है। मूर्ख जनता धर्म की ओट में नचाई जा रही है। नन्द न इधर का न उधर का।"[4] धार्मिक भेदभाव को अच्छा मानकर और आज के समय के हिसाब से अंतिम वाक्य को पढ़ सकते हैं और नन्द की नीतियों को प्रतिकूल मान सकते हैं। लेकिन चाणक्य की श्रेष्ठता देशभक्ति के प्राबल्य से स्थापित होती है। इस संवाद के बाद चाणक्य प्रतिनिधि पात्र बनकर आगे के क्रियाकलापों को अंजाम देता है। प्रसादजी भी इस नाटक में चाणक्य को ही आगे लेकर जाते हैं। इन दोनों के बीच में खींचतान चलती है। 'राजश्री' नाटक में हर्षवर्धन बौद्ध हो जाते हैं। 'अग्निमित्र' नाटक में राष्ट्र के नियमन की बात है। इन दोनों परंपराओं में संघर्ष और समन्वयन है। एक राष्ट्र और राज्य, जिसे नेशन स्टेट कहते हैं, की अवधारणा का विकास जयशंकर प्रसाद ने किया है। हम जानते हैं कि स्वाधीनता आंदोलन में राष्ट्र को लेकर उन्होंने कई गीतों की रचना की है। जैसाकि एक विचारक राष्ट्र–निर्माण के अंगों पर विचार करता है। स्वाधीन भारत की संकल्पना को भी प्रसाद ने कुछ इस प्रकार स्पष्ट किया है, "मगध के स्वतंत्र नागरिकों को बधाई है। आज आप लोगों के राष्ट्र का नवीन जन्मदिवस है। स्मरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतंत्र उत्पन्न किया है, परन्तु व्यक्तिगत स्वतंत्रता वहीं तक दी जा सकती है जहाँ तक दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा न पड़े। यह राष्ट्रीय नियमों का मूल है। वत्स चंद्रगुप्त! स्वेच्छाचारी शासन का परिणाम तुम ने स्वयं देख लिया है। अब मंत्रिपरिषद की सम्मति से मगध और आर्यावर्त के कल्याण में लगो।"[5] इसमें स्वाधीन भारत की संकल्पना दिखाई दे रही है। इनकी रचनाओं में परिस्थिति है– युद्ध का परिवेश। नाटकों के साथ कविताओं में भी इसको देखा जा सकता है। 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण', 'अशोक की चिंता', 'प्रलय की छाया' आदि में युद्ध की भरमार है।

प्रसाद जी नाटकों में राष्ट्र की कल्पना पर काम करते हैं और कविता के क्षेत्र में व्यक्ति केंद्र में है। वह प्रेम के माध्यम से हो, एक बौद्धिक मनुष्य हो, व्यक्ति ही केंद्र में आता है। वे आधुनिक कवि हैं और आधुनिक रचनाकार हैं तो विज्ञान से मुँह नहीं मोड़ सकते, बौद्धिकता से मुँह नहीं मोड़ सकते। व्यक्ति जब केंद्र में आता है, आधुनिक मनुष्य केंद्र में आता है, व्यक्तिवाद केंद्र में आता है तो कामायनी सृजित होती है और कामायनी जयशंकर प्रसाद के पूरे चिंतन का सार तत्व है। पंद्रह सर्ग, प्रतिभिज्ञा दर्शन और बौद्धवाद, शैव दर्शन आदि पर विचार न करते हुए एक आधुनिक कवि पर ही बात करना उचित होगा क्योंकि वह केंद्र में है। शैव और बुद्ध चिंताधाराएं यहां पर भी हैं और आनंदवाद उसकी परिणति है। लेकिन आधुनिक राज्य बनेगा, लोकतांत्रिक राज्य बनेगा जो पूँजीवाद की देन है तो मनुष्य अपना जीवन कहाँ से शुरू करेगा और कहाँ जाकर खत्म करेगा? इस प्रश्न पर कामायनी के पंद्रह सर्गों में विचार किया गया है। मनोवृत्तियों के आधार पर आधुनिकता के प्रवेश को आधुनिक युग के प्रत्येक रचनाकार ने जांचने–परखने की कोशिश की है। रामचन्द्र शुक्ल के चिंतामणि के निबंध श्रद्धा–भक्ति, लोभ और प्रीति आदि भी मन की वृत्तियों पर केन्द्रित हैं। यह साहित्यिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन की बुनियाद पर हो रहा था यानी कि सामंतवाद से आधुनिकतावाद की ओर। इस व्यवस्था परिवर्तन में एक भीषण संघर्ष चल रहा था। इस पर जयशंकर प्रसाद ने भी विचार किया है। उनके समकालीन प्रेमचंद ने भी आधुनिकता के आगमन की पदचाप सुन लिया था। एक बहुत रोचक कहानी है प्रायः हम उसे बाल मनोविज्ञान की कहानी कहकर निकल जाते हैं–'ईदगाह'। वह आधुनिकता के प्रवेश की कहानी भी है। जब हामिद ईदगाह पर जाने के लिए शहर में प्रवेश करता है। प्रेमचंद ने जिस प्रकार नगरीय व्यवस्था का चित्रण किया है, उसे नये ढंग से पढ़ने की आवश्यकता है, वहाँ पूँजीवाद और आधुनिकता के आने के लक्षण दिखाई देते हैं। इससे जयशंकर प्रसाद भला कैसेअछूते रह सकते थे। उन्होंने भी सर्गों के माध्यम से मन की वृत्तियों पर काम किया। चिंता से शुरू होकर आनंद तक की स्थिति मानव क्रिया व्यापार और उसके जीवन जगत से जुड़ी हुई है। ज्ञान और सौंदर्य दोनों के उपासक प्रसाद मानते हैं कि दो ही चीजें हैं जो विश्वव्यापी है। 'कामायनी' शुरू होती है बहुत ही हलचल और उथल–पुथल के साथ, जैसा प्रसाद का स्वभाव है, "हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठे शिला की शीतल छाँह/ एक पुरुष, भींगे नयनों से, देख रहा था प्रलय प्रवाह!/ नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था, एक सघन;/ एक तत्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन।"[6] अब इस उथल–पुथल को दिखाने के लिए आल्हा छंद का चुनाव किया है। इस उथल–पुथल के बीच विज्ञानवाद का अँखुआ फूट पड़ता है। चूँकि मनुष्य चिंतनशील प्राणी है और उसके जीवन में संघर्ष है, ऐसी स्थिति में चिंता से चिंतन की यात्रा स्वाभाविक है। इससे ही कर्म, काम का भाव प्रकट होता है जो इच्छित स्वर्ग से मंडित सर्ग की प्रेरणा बनता है,

"ओ चिंता की पहली रेखा, अरी विश्व–वन की व्याली;/ ज्वालामुखी स्फोट के भीषण, प्रथम कंप–सी मतवाली।"[7] हिंदी कविता में मनोविज्ञान पर इतना बारीक काम बहुत कम देखने को मिलेगा। प्रसाद विज्ञान के विश्वासी हैं किंतु मनुष्य की भावना के साथ। वे इंगित करते हैं कि विज्ञान और कर्म के जरिए ही किसी भी चीज़ की साधना की जा सकती है; दूसरा कोई उपाय नहीं है, "हाँ तुम ही हो अपने सहाय?/जो बुद्धि कहे उसको न मान कर फिर किसकी नर शरण जाय/जितने विचार संस्कार रहे उनका न दूसरा है उपाय।"[8] इस कर्म और बुद्धि की साधना से ही सारस्वत प्रदेश बनता है। प्रसाद के जीवन काल में देश आज़ाद नहीं हुआ था किंतु सारस्वत प्रदेश के माध्यम से स्वाधीन और लोकतान्त्रिक भारत का स्वप्न अवश्य ही प्रकट होता है। सारस्वत प्रदेश में शासक के कदाचार से उबकर जनता विद्रोह कर बैठती है। यह आधुनिक समाज की विशेषता है कि इसमें जनता जागरूक और अपने अधिकारों के प्रति सचेत है। इस संदर्भ में 'कामायनी' बहुत ही अग्रगामी और दूरदर्शी कृति है। पूँजीवादी व्यवस्था जब भी अराजक होगी तब आधुनिक व्यवस्था भी अराजक होगी। इस अराजकता में सीधा हस्तक्षेप जनता का होगा। दरअसल यह कृति पूँजीवाद के ह्रास, लोकतंत्र की संस्थाओं के पराभव को भी देखा जा सकता है। ये सभी बातें रहस्य सर्ग के अंतर्गत हैं। इसका नाम वे विडंबना सर्ग रख सकते थे किंतु मनोभावयुक्त सर्ग–सोपान भंग हो जाता। पूँजीवाद में बौद्धिक क्रियाकलाप और आविष्कार जब अपनी उच्चतम अवस्था में होंगे, तब असमानता भी बहुत होगी। लेनिन ने भी पूँजीवाद की चरम अवस्था को साम्राज्यवाद की अवस्था है। किंतु जयशंकर प्रसाद समरसता के पक्षधर हैं, "समरसता है सम्बन्ध बनी, अधिकार और अधिकारी की।"[9] पूँजीवाद के भीतर की विसंगतियों का रेखांकन कुछ इस प्रकार मिलता है, "अस्ति नास्ति का भेद, निरंकुश करते ये अणु तर्क –युक्ति से;/ ये निस्संग, किंतु कर लेते कुछ संबंध–विधान मुक्ति से/ यहाँ प्राप्य मिलता है केवल तृप्ति नहीं कर भेद बांटती;/ बुद्धि विभूति सकल सिकता–सी प्यास लगी है ओस चाटती।"[10] यह केवल 'आस्ति–नास्ति' का भेद नहीं है अपितु निरंकुशता पर कड़ी चोट है। पदार्थवादी चिंतन, जो मुक्ति कामी चिंतन है, वह भी निरंकुश हो सकता। उसकी तरफ भी सचेत रहने की आवश्यकता है। यहाँ प्राप्त मिल जाता है, तृप्ति नहीं मिलती। इसे ही हम उपभोगवाद कहते हैं। अधिक से अधिक पूंजी जमा कर लेने की जो लालसा है,जो वृत्ति है जिसे पूँजीवाद कहते हैं। एक व्यक्ति ही चाहता है की समस्त संसाधनों पर, उत्पादन की प्रणालियों पर, संपत्तियों पर उसी का कब्जा हो, उसी का अधिकार हो। सब कुछ को प्राप्त करने की प्रवृत्ति के पीछे यह धारणा काम करती है कि सब कुछ बुद्धि विभूति से अर्जित किया जाएगा। प्रसाद इस धारणा का पूरे आवेग से खंडन करते हैं। उन्होंने 'कामायनी' में आधुनिक सामाजिक व्यवस्था की गहन छानबीन करते हुए इसकी संस्थाओं की सीमाओं का उल्लेख किया है, "न्याय, तपस, ऐश्वर्य में पगे ये प्राणी चमकीले लगते!/ इस निदाघ मरु में सूखे स्रोतों के तट जैसे जगते/ मनोभाव से कार्य–कर्म का संतुलन में दत्त चित्त से;/ यह निस्पृह न्यायासन वाले चूक न सकते तनिक वित्त से।"[11] कवि ने हमारी आगामी न्यायिक व्यवस्था के भीतर वित्त के प्रवेश और पूँजीवाद द्वारा न्यायिक संस्थाओं के नियंत्रण व नियमन को स्पष्ट रूप में रेखांकित किया है। प्रसादजी भविष्य का कवि हैं, दार्शनिक हैं व चिंतक हैं, यह सामान्य बात नहीं है।

जयशंकर प्रसाद के यहाँ प्राचीन काल से चले आ रहे वैचारिक भिन्नताओं का समेकन होने के साथ–साथ आधुनिक काल की प्रवृत्तियों पर गहन विचार किया है। मनुष्य की द्वंद्वात्मकता को अनेक आयामों से देखने का गंभीर प्रयास हुआ है।

संदर्भ–सूची :–

1. प्रसाद, जयशंकर; प्रसाद रचनावली (खंड:3); भारत पुस्तक भंडार, सोनिया विहार, दिल्ली; पृ:25।
2. प्रसाद, जयशंकर; प्रसाद रचनावली (खंड:6); भारत पुस्तक भंडार, सोनिया विहार, दिल्ली; पृ:130–131।
3. प्रसाद, जयशंकर; प्रसाद रचनावली (खंड:5); भारत पुस्तक भंडार, सोनिया विहार, दिल्ली; पृ:59।
4. वही; पृ:56।
5. वही; पृ: 143।
6. प्रसाद, जयशंकर; प्रसाद रचनावली (खंड:4); भारत पुस्तक भंडार, सोनिया विहार, दिल्ली; पृ:13।
7. वही; पृ:13।
8. वही; पृ:82।
9. वही; पृ: 76।
10. वही; पृ: 128।
11. वही; पृ: 128।

ꟾ★ꟾ

आकांक्षा, आदर्श और स्वप्न की उत्सवधर्मिता की कविता 'जूही की कली' का पुनर्मूल्यांकन

डॉ. सर्वेश मौर्य*

हाल की कथित संस्कृति रक्षा की बढ़ती घटनाओं के मद्देनजर कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की कविताएँ बेतरह प्रासंगिक हो उठी है। विद्वजन कहते हैं यही 'प्रासंगिकता' साहित्य का वह कालजयीपन है जिसकी खोज हर रचनाकार और आलोचक करता है। निराला की एक बहुचर्चित कविता है– 'जूही की कली'। जब यह कविता लिखी गई तो कहा जाता है तब के यशस्वी संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'सरस्वती' में छापने से मना कर दिया था, क्योंकि यह कविता 'नैतिक मूल्यों का वहन' नहीं करती थी; संभवतः 'अश्लील' थी। हालांकि निराला साहित्य के यशस्वी समालोचक रामविलास शर्मा ने इसका जिक्र नहीं किया है। निराला की साहित्य साधना भाग–1 जीवनी खंड में उन्होंने इस कविता के लेखन की अलग पृष्ठभूमि बताई है। वे लिखते हैं– "इस समय रविंद्रनाथ की कविताएँ उन्हें नए सिरे से आकर्षित करने लगीं। सुंदरी उर्वशी– नग्न कांति, सुरेन्द्र वन्दिता– कितनी भव्य है, विजयनी सरोवर में स्नान करती हुई, स्तनों से हंसों को दुलराती हुई, स्नान के बाद सीढ़ियों पर चरणचिन्ह आंकती हुई, सूर्य का प्रकाश उनके स्तनों पर पड़ता हुआ, लावण्यपाश में बंधा यौवन! रात्रे और प्रभाते– में दो प्रेमियों का मिलन, मधुयामिनी की ज्योत्स्ना, फेनिलोच्छल यौवन सुरा, पान चुम्बनभरा सरस बिम्बाधरे। प्रातः सुप्तोथिता का सौंदर्यवर्णन, आहा जागी पोहालो विभावरी, क्लांत नयन तव सुंदरी। चौरपंचाशिका की सुप्तोथिता मदनविह्वलितालसागी विद्या भी याद आयी और सूर्यकान्त ने निषेध भावनाएं दूर करके एक कविता लिख डालीः विजन में वन वल्लरी पर, सोती थी सुहागभरी/स्नेह स्वप्न मगन, अमल कोमल तनु–तरुणी जूही की कली"। और "यह कविता उन्होंने शिवपूजन सहाय और महादेव प्रसाद सेठ को सुनाई। इन मित्रों को उसमें ऐसा लालित्य दिखाई दिया जैसा उस समय की खड़ी बोली हिंदी कविता में दिखाई ना देता था। वे सूर्यकांत की प्रतिभा के कायल हो गए। शिवपूजन सहाय ने 'जूही की कली' अपने 'आदर्श' नामक पत्र में प्रकाशित की। 'आदर्श' अपने नाम के अनुरूप धर्म और नीति के उपदेश देने वाला पत्र था। सन् 22 के जाड़े में यह पत्र निकला था, सन् 23 का बसंतोत्सव देखने के बाद बंद हो गया। कविता पत्र के उपयुक्त ना थी पर ना छापने से 'आदर्श' में ही छपना अच्छा था''[1]

यह समझा जा सकता है कि निराला ने उस समय क्या महसूस किया होगा। कैसे इस कविता को लिखने का साहस आया होगा। उनके समय में विक्टोरियन नैतिकता के साथ भारतीयों के सांस्कृतिक युद्ध के चलते संस्कृति को लेकर हालात अच्छे नहीं थे। फिर भी निराला ने यह कविता लिखी। आज उससे भी बुरा दौर है; इसलिए निराला की यह कविता आज ज्यादा प्रासंगिक है। इधर संस्कृति रक्षा का काफ़ी जोर है। रोजी–रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य के सवाल के बजाय संस्कृति के सवाल तरजीह पा रहे हैं। सत्ता की सनक में मगरूर; संस्कृति की रक्षा का दावा करने वाले कुछ लोग संस्कृति रक्षा के नाम पर चयनात्मक तरीके से संस्कृति का नेचर एक्सक्लूसिव बनाने पर आमादा हैं। उनके तईं भारतीय संस्कृति का इन्क्लूसिव नेचर बेमानी है। वे संस्कृति के शुद्धिकरण के महान काम में लगे हुए हैं। इस सांस्कृतिक प्रोपेगेंडा की राजनीति से दो बातें समझ में आती हैं। पहली– संस्कृति रक्षा के नाम पर जानबूझकर साम्प्रदायिक माहौल बनाया जा रहा है। पॉलिटिकल नैरेटिव को रियलिटी में तब्दील किया जा रहा है। इसके जरिये ये कोशिश हो रही है कि सही सवालों को केंद्रीयता न मिल सके। दूसरे– इस किस्म के बवालों में जनांदोलनों को पीछे धकेला जा सके। ऐसे में यह समझना कि संस्कृति का सवाल मूल सवाल नहीं है इसलिए कथित संस्कृति रक्षकों की हरकतों पर रिएक्ट करने की बहुत जरूरत नहीं; गलत है। निराला इस प्रश्न की गंभीरता बखूबी समझते थे इसलिए उन्होंने नए सांस्कृतिक मूल्यों वाली कविता लिखी। जाहिर है उन्हें उपेक्षा का अंदाजा रहा होगा फिर भी उन्होंने यह जोखिम उठाया। बेहद अकुंठ भाव से 'जूही की कली' कविता की रचना की। इसे आज के समय में पढ़े जाने की बेहद

***क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, एनसीईआरटी, मानसगंगोत्री, मैसूर–570006(लेखक एनसीईआरटी में असिस्टेंट प्रोफेसर हैं)।**

जरूरत है। यह कविता जनतांत्रिक मूल्यों, जन–आकांक्षाओं, जन–आदर्शों व जन–स्वप्न की उत्सवधर्मिता की कविता है। सामयिक संदर्भों में इस कविता का पुनर्मूल्यांकन चार बिंदुओं में किया जा सकता है– प्रवास का दंश, दांपत्य प्रेम, बेहतरी का स्वप्न और दैहिकता का उत्सव।

प्रवास का दंश :– जिस समय निराला ने यह कविता लिखी वे कोलकाता (तब कलकत्ता) में रह रहे थे। ऐसे में कविता में अभिव्यक्त प्रवास का दंश निराला का स्व–अनुभव भी हो सकता है। उस समय कोलकाता प्रवासी मजदूरों का बड़ा केंद्र था। पूर्वी उत्तर भारत से बहुत से लोग रोजी कमाने कलकत्ता का रुख कर रहे थे। अंग्रेजी राज में खेती लगातार चौपट हो रही थी। लोगों का जीवन बद्तर होता जा रहा था। भारतीय कृषि और घरेलू उद्योग धंधों को जानबूझकर भी बर्बाद किया जा रहा था जिससे लोगों की बेबसी को भुनाया जा सके। एक तरफ भारतीय कृषि और उद्योग धंधों को बर्बाद तो दूसरी ओर ब्रिटिश उपनिवेशों में चाय, अफीम, गन्ना और नील की खेती को प्रमोट किया जा रहा था। इसके लिए भारतीयों को बेहतर जीवन का प्रलोभन देकर; बहकाकर एग्रीमेंट के तहत बाहर ले जाया जा रहा था। छले जाने की पीड़ा का बयान चाय बागान के असमी गीतों में देखा जा सकता है–

"मिनी मिनी मिनी रे, मिनी रे मिनी मिनी रे/
चल मिनी असम जाबो, देसे बड़ा दुख असम देसे मिनी चाय बागान होलिया/
मिनी मिनी मिनी रे, मिनी रे मिनी मिनी रे। /
बाबु बोले काम काम, सदार बोले धरि आन, साहेब बोले लीबो पिठेर चाम/
हो जदुराम फाकि दिया आनि दिया असाम।"

चलो मिनि असम चलते हैं।/देश में बहुत दुख है।/असम देश में चाय के बागान भरे हुए हैं।/चलो असम चलते हैं।/कुदाल से जैसे तैसे खुदाई करना है।/पत्ता तोड़ने का काम है।/हाय जदूराम/झुठ बोलकर भेज दिया असम।/चिड़िया फुट फुटकर रो रही है/काकरिम (ज़मत चवज) में पानी नहीं है।/पिताजी और भाईया ने/झुठ के बांसुरी बजाया।/सरदार बोलते हैं काम करो/बाबु बोलते हैं काम करो/साहब बोलते हैं पीठ के चमड़ा ले लेंगे।/(सरदार, बाबु और साहब श्रमिकों को बहुत अत्याचार करते हैं)/हाय जदूराम/झुठ बोलकर भेज दिया असम/चलो मिनि असम चलते हैं।[2]

और पूर्वी उत्तर भारत में इसका क्या असर पड़ा? उसकी पीड़ा का बयान भोजपुरी लोकगीतों में देखा जा सकता है। औरतों के लिए रेल बैरन; शहर, साहेब दुश्मन और परायी औरतें सौत हो गयीं–

रेलिया बैरन पिया को लिए जाए रे। जौन टिकसवा से बलम मोरे जैहें, रे सजना मोरे जैहें,
पानी बरसे टिकस गल जाए रे, रेलिया बैरन।।/ जौने सहरिया को बलमा मोरे जैहें, रे सजना मोरे जैहें,
आगी लागै सहर जल जाए रे, रेलिया बैरन।।/ जौन सहबवा के सैंया मोरे नौकर, रे बलमा मोरे नौकर,
गोली दागै घायल कर जाए रे, रेलिया बैरन।।/जौन सवतिया पे बलमा मोरे रीझे, रे सजना मोरे रीझें,
खाए धतूरा सवत बौराए रे, रेलिया बैरन।[3]

रेल बैरन हो गई है क्योंकि वो पिया को ले जाती है; शहर, साहेब दुश्मन क्योंकि वियोग का कष्ट बढ़ा रहे हैं; औरतें सौत क्योंकि वे काला जादू जानती हैं वे पुरुषों को भेड़ा बनाकर कैद कर लेती है। इसलिए वे नहीं चाहती कि पति रेल पर बैठकर परदेस जाए इसीलिए किसी भी तरह बारिश की मदद से, प्रकृति की मदद से, ईश्वर की मदद से, वे इस यात्रा को रोक देने की कोशिश करती हैं पानी, आग, गोली, धतूरा को काम पर लगा देती हैं। वे चाहती हैं कि उसकी दो टकिया की नौकरी में उनका लाखों का सावन बर्बाद न हो।

यह पूरा दौर जबरदस्त प्रवासन का दौर है; जिसका संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा। यहां तक कि उसकी अभिव्यक्ति सांस्कृतिक रूपों में भी दिखाई पड़ती है। जो पीछे छूट गए हैं; उनकी एक दुनिया है। उनका दुख भिखारी ठाकुर की बिदेशिया[4] लोकविधा में अभिव्यक्त हुआ। यहाँ गाँव–गिरावं है, बुजुर्ग हैं, औरतें बच्चे हैं। निराला ने उसका दूसरा सिरा पकड़ा है जो पुरुष थे जो अपने घरों को छोड़कर मजबूरीवश मजदूरी करने के लिए देस–परदेस जा रहे थे; गिरमिटिया मजदूर बन रहे थे; उनके मन में क्या चलता था? उसकी झलक आपको जूही की कली में मिलेगी।

लम्बे जनसंघर्ष के बाद जब 1820 के दशक में यूरोप में दास प्रथा को अमानवीय माना जाने लगा। 1830—1860 के बीच ब्रिटिश, फ्राँसीसी और पुर्तगालियों ने अपने—अपने क्षेत्रों में गुलामी पर पूर्णतः प्रतिबंध लगा दिया। हालाँकि कुछ विचारकों का यह भी मानना है कि उपनिवेशवादियों ने गुलामी को सिर्फ इसलिए प्रतिबंधित किया ताकि वे एक नई प्रथा 'गिरमिटिया मज़दूरी'[5] के साथ इसे प्रतिस्थापित कर सकें। ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका और एशिया तक हो रहा था और उन्हें नए श्रमिकों की आवश्यकता थी, लेकिन दासता या दास प्रथा को अमानवीय करार दे दिया गया था, जिसके कारण एग्रीमेंट प्रथा या अनुबंध श्रम की एक नई अवधारणा का विकास हुआ। भारत से गिरमिटिया मज़दूरों के प्रवासन की शुरुआत दास या गुलाम प्रथा के उन्मूलन के पश्चात् कैरेबियाई क्षेत्र में ब्रिटिशों द्वारा स्थापित चीनी और रबड़ के बागानों को चलाने के लिये की गई। गिरमिटिया मज़दूरों को मासिक आधार पर मज़दूरी का भुगतान किया जाता था और वे उन्हीं बागानों में रहते थे,वहीं काम करते थे। गिरमिटिया मज़दूरी की शर्तों में यह लिखा होता था, कि कोई भी पुरुष अपनी मज़दूरी की 10 वर्षीय अवधि को पूरा करने के बाद अपने देश वापस लौट सकता है, परंतु ब्रिटिशर्स नहीं चाहते थे कि कोई भी मज़दूर वापस लौटे क्योंकि इससे उनके व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता था। इसलिए तरह तरह के हथकंडे अपनाये जाते थे। इस अमानवीय प्रथा का विरोध गाँधी आदि ने किया। तब जाकर 1917 में इस प्रथा का उन्मूलन हुआ। लेकिन प्रवासन बना रहा। उसकी जो पीड़ा है। वही निराला की कविता का आधार है। निराला की कविता 'जूही की कली' को इस संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए। मुझे लगता है 'बिदेशिया' और 'जूही की कली' एक दूसरे की पूरक हैं। इन दोनों को प्रवास की पूरक कविताओं की तरह पढ़ें तो प्रवास के दर्द का सही मतलब और सही प्रभाव पता चलता है। बिदेशिया और जूही की कली प्रवास के दंश को भोगते लोगों की दशा के एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक में छूट गए लोगों की दशा, दिक्कतों, उम्मीदों और निराशाओं का बयान है तो दूसरे में छोड़ कर चले गए लोगों की मनःस्थिति, विकलता और विवशता का छायांकन है। 'दूर देश में था पवन' और 'आयी याद' की बारम्बारता से इसी बात को कहने की कोशिश हुई है। यहां दूर देश में पवन क्या करता था; पवन किस तरह की स्थितियों—परिस्थतियों में था; इसका कोई विवरण नहीं मिलता। संकेत हैं, बाकी की व्याख्या हमें करनी होगी; क्योंकि कविता अर्थ से ज्यादा अर्थात् में होती है। यहां अर्थात् है विवशता व्याकुलता, जो प्रवासजन्य है। पवन उपेक्षित जन का प्रतीक है; जो आर्थिक तौर पर इतना कमजोर है कि पत्नी को साथ नहीं ले जा सकता; इसलिए छोड़कर परदेस गया है। कविता में मिलन का जो स्वप्न है, बेहतरी की जो आकांक्षा है; वह प्रवासियों की आकांक्षा और स्वप्न का प्रतीक है। कविता को इस व्यापक दृष्टी से पढ़ा जाना चाहिए।

दांपत्य प्रेम :— निराला का नायक व्याकुल है, विकल है; उसकी विकलता महत्वपूर्ण है। यह महज संयोग नहीं कि निराला के आदर्श कवि तुलसीदास, स्वयं उसी विकलता का सामना कर चुके हैं, कवि बनने से पहले रत्नावली प्रसंग को याद करिए। उनके नायक राम भी उसी विकलता को महसूसते हैं। जब सीताहरण हो जाता है तो विकलता की इंतहा देखिए। राम जो कि मर्यादा पुरुषोत्तम हैं जिनमें देवत्व है; वे उसे त्याग कर सीधे सामान्य मनुष्य बन जाते हैं। ऐसा मनुष्य जो पति है, पत्नी का प्रेमी है जिसकी गुंजाइश भारतीय सामाजिक संस्था में नहीं के बराबर है; जिसकी संस्कृति में इस लोकतांत्रिक प्रेमभाव का सेलिब्रेशन नहीं है। तुलसी और निराला के ये राम स्खलित राम हैं; जो मान—मर्यादा से ऊपर उठ चुके हैं इस भाव को त्याग चुके हैं कि लोग क्या कहेंगे? लोग क्या सोचेंगे? यह राम दक्षिणपंथी कट्टर संहारक राम नहीं हैं। याद करिए तुलसी की वे पंक्तियां जहाँ राम अपनी खोयी हुई पत्नी का पता पूछ रहे हैं है— हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी, तुम्ह देखी सीता मृगनैनी/ खंजन सुक कपोत मृग मीना, मधुप निकर कोकिला प्रबीना। या फिर याद करिए निराला की राम की शक्तिपूजा की वे पंक्तियां— "धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,/धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध/ जानकी! हाय उद्धार प्रिया का हो न सका। अद्भुत पंक्तियां हैं। तुलसी और निराला के राम लोक—लाज की परवाह नहीं करते जैसे बाल्मीकि के राम करते हैं। यह अद्भुत संयोग नहीं क्या कि राम को 'पृथ्वीतनया की कुमारिका छवि' याद आती है। जूही की कली के पवन को अपनी प्रिया जूही की कली की कम्पित कमनीय गात की याद आती है; दोनों को साथ पढ़ना चाहिए—

आयी याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,/ आयी याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,
आयी याद कान्ता की कंपित कमनीय गात,[6]...
ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत/ जागी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन/विदेह का, —प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन

नयनों का–नयनों से गोपन–प्रिय सम्भाषण,–/पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान–पतन,–
काँपते हुए किसलय,–झरते पराग–समुदय,–/गाते खग–नव–जीवन–परिचय–तरू मलय–वलय,–
ज्योतिःप्रपात स्वर्गीय,–ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,–/जानकी–नयन–कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।[7]

स्त्री को याद करना पौरुषपूर्ण नहीं समझा जाता रहा है। स्खलित पुरुष आदर्श नहीं हो सकता है क्योंकि मर्द को दर्द नहीं होता। निराला, निराला के चरित्र और निराला के आदर्श इस अर्थ में स्खलित हैं। नारी प्रेम में अपना पौरुष गवां चुके हैं। निराला की साहित्य साधना–1 को पढ़ें तो पता चलता है कि निराला और उनकी पत्नी मनोहरा देवी का संबंध कितना रागात्मक था। डॉ रामविलास शर्मा ने मनोयोग से इस प्रसंग को लिखा है। 'जूही की कली' के पवन को याद करें; राम की शक्ति पूजा के राम को याद करें; तुलसीदास के तुलसी को याद करें सभी पुरुषत्व गंवा चुके हैं; ह्रदय हार चुके हैं। अस्थि चर्म मय देह यह, ता सों ऐसी प्रीति! के लिए झिड़के जा चुके हैं। पवन में यह व्याकुलता प्रवास जनित है। कोलकाता में रह रहे निराला को यह दर्द गहरे महसूस होता है। इसलिए जूही की कली के बाद भी कविताओं में यह दर्द अभिव्यक्ति पाता रहता है।

रामविलास शर्मा के दो प्रिय कवि हैं– निराला और केदारनाथ अग्रवाल। अन्य ढेरों समानताओं के साथ यह आश्चर्यजनक समानता दोनों कवियों में मिलती है कि दोनों की दांपत्य प्रेम में अगाध आस्था है। दोनों एकनिष्ट हैं; पत्नी प्रेमी। कमसकम उनके साहित्य में यही दिखाई देता है। संभवत रामविलास शर्मा भी आजीवन एकनिष्ठ पत्नीव्रता रहे हालांकि स्वयं मेरे लिए एकनिष्टता कोई महान मूल्य नहीं है। बल्कि मेरे लिए एकनिष्ठता और इस किस्म के शुद्धतावाद का आग्रह सामंती समझ और मूल्य का ही एंडोर्समेंट है। पाठक इस बारे में मुझसे इतर समझ रख सकते हैं। मुझे यहाँ भी चयन की दोतरफा स्वतंत्रता और जनतांत्रिकता ही ठीक लगती है। हालांकि चुनाव की यह स्वतंत्रता जनतांत्रिकता अराजकता नहीं है बल्कि म्यूचुअललिज्म है; परस्परता है।

बेहतरी का स्वप्न :– यह कविता बेहतरी का एक सुनहरा स्वप्न देखती है। ऐसा सुनहरा स्वप्न मनुष्यता की रीढ़ है। इस कविता में भी एक स्वप्न है कि प्रिया की याद आने पर उस से मिलन हो जाए। हीरो हीरोइन से सारी विघ्न–बाधाओं को–"उपवन–सर–सरित गहन–गिरि–कानन/ कुंज–लता–पुंजों को पार कर"[8] मिलने का स्वप्न देखता है। भारतीय परम्परा के अन्य साहित्य की तरह इस कविता में भी हैप्पी एंडिंग–सुखांत दिखाई देता है। कभी–कभी मन में सवाल उठता है भारत में सुखांत कि इतनी समृद्ध परंपरा क्यों मिलती है? जबकि जीवन में उसका नामो–निशान तक नहीं मिलता। अयथार्थ का इतना सेलिब्रेशन क्यों? संभवतः जीवन में जो मिसिंग है; उसी की भरपाई साहित्यिक कल्पनाओं के जरिये की जा रही है। निराला की कविता में भी यही भाव बहुत मजबूती से अंत में आया है। जीवन का यथार्थ इतना कड़वा और कठोर है कि इस खुरदरी दुनिया को पार करके सपनों की मखमली दुनिया में प्रवेश करना आसान नहीं। लेकिन विकल्पहीनता की अवस्था में यही आदर्श, आकांक्षा और स्वप्न लाइफलाइन बन जाते हैं। निराला की कविता जटिल खुरदरे यथार्थ से सरल स्वप्निल सुनहले लोक में ले जाती है।

दैहिकता का उत्सव :– निराला घनघोर दैहिक ऐंद्रिकता के कवि हैं। जो आप पढ़ते हैं; वह महसूसने लगते हैं। उनकी कविताओं में देह का खासकर स्त्री देह का अकुंठ चित्रण मिलता है। उदाहरण के लिए 'जूही की कली' 'सरोज स्मृति' और 'तोड़ती पत्थर' जैसी कविताओं को देखा जा सकता है– "अमल–कोमल–तनु तरुणी––जुही की कली" (जूही की कली)[9] "धीरे–धीरे फिर बढा चरण, बाल्य की केलियों का प्रांगण/ कर पार, कुंज–तारुण्य सुघर, आईं, लावण्य–भार थर–थर, काँपा कोमलता पर सस्वर, ज्यौं मालकौस नव वीणा पर,/ नैश स्वप्न ज्यों तू मंद मंद" (सरोज स्मृति)[10] या "कोई न छायादार/ पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;/श्याम तन, भर बंधा यौवन,/नत नयन, प्रिय–कर्म–रत मन" (तोड़ती पत्थर)[11] जैसी पंक्तियों को देखकर यह समझ में आता है कि निराला में स्त्री सौंदर्य का जो वर्णन मिलता है; वह अप्रतिम है। ऐसा नहीं कि निराला से पहले स्त्री सौंदर्य का चित्रण नहीं है। निराला अलग वहां है जहां वे अकुंठ हो जाते हैं। उनका दैहिक वर्णन कामोद्दीपक या बाजारू नहीं बल्कि सहज स्वाभाविक मानवीय है। यही स्वाभाविकता निराला की निरालियत है।

'जूही की कली' कविता में "कम्पित कमनीय गात", "केलि" "स्नेह स्वप्न मग्न" "खेल रंग, प्यारे संग" को ध्यान में रखिए। यहाँ जिस "कम्पित कमनीय गात" की बात की गई है; वह केलि और खेल में संतुष्टि से कांपता हुआ गात है। यह संतुष्टि डेमोक्रेटिक सेक्सुअल रिलेशनशिप के बगैर संभव नहीं है। यदि रिलेशनशिप बराबरी की नहीं है; समानता की नहीं है तो इस किस्म की संतुष्टि जिसे अंग्रेजी में ओर्गैस्म कहा जाता है असंभव है।

यह वह देश है जहाँ सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में ही नहीं सेक्सुअल लाइफ में भी भयंकर असमानता है। यहाँ औरतें सेक्सुअल प्लेजर के लिए ऑब्जेक्ट भर हैं। निराला की काव्यचेतना वाले प्रेम की पराकाष्ठा का उदाहरण भारत में स्वप्न ही है। न ऐसी संतुष्ट स्त्री मिलेगी न पत्नी प्रेम में व्याकुल ऐसा पुरुष। परस्त्री प्रेम की व्याकुलता कलकलाहट की बात मैं नहीं कर रहा। यहाँ वैवाहिक संस्था के भीतर घुटती रहती मर्यादित स्त्रियों की श्रृंखला देखी जा सकती है जिनके मन की आवाजें कोई नहीं सुनता। ये स्त्रियां क्या सोचती हैं? क्या चाहती हैं? इसके बारे में जानना विवाह संस्था में विशेषाधिकार प्राप्त पुरुष के लिए तौहीन की बात है। स्त्रियों की निर्मिति भी कुछ इस किस्म से की जाती है कि वे भी अपने मन की आवाजें नहीं सुन पातीं।

मई 2019 का डूरेक्स का एक सर्वे बताता है कि 70% भारतीय महिलाएं ओर्गैस्म महसूस नहीं करती जब उनसे सेक्स किया जाता है शायद ही वे किसी से सेक्स करती हैं। क्योंकि यहाँ भी वही मानसिक बुनावट ही काम करती है। मतलब यह कि भारत में ओर्गैस्म इनइक्वलिटी एक बड़ा प्रश्न है जिसे प्रश्न ही नहीं माना जाता है। एक बार कॉफी विद करण शो में विद्याबालन ने कहा था– "वुमन लाइक इट, वांट इट, नीड इट, एस मच एस मैन डू" यह आश्चर्यजनक नहीं हैं कि हमारे समाज में फीमेल मास्टरबेशन के सीन्स आज भी अजीब है; ओर्गैस्म का सवाल आज भी या तो टैबू है या रैडिकलिज्म का शिकार जबकि इसके नॉर्मलाइजेशन की जरूरत है। पिछले एक दशक तक यही हालात थे; ऐसे में निराला के नायक को ओर्गैस्म या संतुष्टि में कांपता शरीर याद आता है; यह नोट करने वाली बात है। कमसकम निराला का नायक इस डेमोक्रेटिक रिलेशनशिप को समझता है; जिसे आज भी समझने की जरूरत है। यह बड़ी छलांग है जो इस मामले में निराला ने लगाई है। निराला के काव्य मूल्य आज भी काम्य हैं। इसीलिए लगभग शताब्दी बाद भी कथित संस्कृति रक्षा के इस शर्मनाक दौर में निराला ज्यादा प्रासंगिक हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. रामविलास शर्माः निराला की साहित्य साधना–1, पृष्ठ 60–61, राजकमल प्रकाशन, तृतीय संस्करण, 1979।
2. विस्तार के लिए देखें– पी. पी. महतो, द वर्ल्ड व्यू ऑफ़ द असम टी गार्डन लेबरर्स फ्रॉम झारखंड इन कारोटेमप्रेल, 1990, एस. बी. डी. रॉय (सं.) टी गार्डन लेबरर्स ऑफ़ नॉर्थ ईस्ट इंडिया, शिलांगः वेंड्रामे मिसियोलॉजिकल इंस्टीट्यूट, पेज 131–142, पेज 214–226; वर्मा, नितिन एम। ए। 2011, प्रोड्यूसिंग टी कूलीज?ः वर्क, लाइफ एंड प्रोटेस्ट इन द कॉलोनियल टी प्लांटेशन ऑफ असम, डॉक्टरेट शोध प्रबंध, हम्बोल्ट विश्वविद्यालय, बर्लिन, पेज 125–127, महतो, निर्मल कुमार, पर्यावरण और प्रवासन, पुरुलिया, पश्चिम बंगाल, पेज 5, और द्वितीयक स्रोत प्रियंका दत्ता का वर्किंग पेपर– लोकेटिंग द हिस्टोरिकल पास्ट ऑफ़ द वीमेन टी वर्कर्स ऑफ़ नार्थ बंगाल, द इंस्टिट्यूट फॉर सोशल एंड इकनोमिक चेंज, बैंगलोर और नितिन वर्माः कुलीज ऑफ़ कैपिटलिज्मः असम टी एंड द मेकिंग ऑफ़ कुली लेबर, बर्लिन, डी ग्रुइटर ओल्डनबर्ग, 2017।
3. http://kavitakosh.org › कविताकोशः रेलिया बैरन पिया को लिये जाये रे/भोजपुरी।
4. भिखारी ठाकुर रचनावलीः वीरेंद्र नारायण यादवः (संपादन), पटना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, 2005।
5. विस्तार के लिए देखें नेशनल अर्काइव http://nationalarchives.nic.in/content/journey-girmitiya और अली अहमद की पुस्तक गिरमिटः इट्स सिग्निफिकेंस इन फिजी, कुमार प्रिंटर्स प्रा. लि. न्यू, नयी दिल्ली, 1979।
6. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'ः जूही की कली, परिमल, काव्य संग्रह, गंगा पुस्तक माला, चतुर्थावृत्ति, लखनऊ 1948 पेज 191।
7. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'ः राम की शक्तिपूजा, निराला रचनावली भाग–1 (स.) नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण, 1983, पेज 312।
8. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'ः जूही की कली, परिमल, काव्य संग्रह, गंगा पुस्तक माला, चतुर्थावृत्ति, लखनऊ 1948 पेज 191।
9. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'ः जूही की कली, परिमल, काव्य संग्रह, गंगा पुस्तक माला, चतुर्थावृत्ति, लखनऊ 1948 पेज 191।
10. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'ः सरोज स्मृति, निराला रचनावली भाग–1 (स.) नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण, 1983, पेज 301।
11. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'ः तोड़ती पत्थर, निराला रचनावली भाग–1 (स.) नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण, 1983, पेज 323।

धर्मांतरण, अंतर्जातीय प्रेम-विवाह और जाति का प्रश्न

डॉ. नितीन गायकवाड*

शोध–सारांश :– भारतीय समाज में जाति सारी समास्याओं की जड़ दिखाई देती है। जातिप्रथा हिंदू धर्म की मुख्य विशेषता है। यह विशेषता मनुष्य को असंवेदनशील और अमानवीय बनाती है। जाति से मुक्ति पाने के लिए डॉ. आंबेडकर ने धर्मांतरण और अंतर्जातीय प्रेम–विवाह को मान्यता देने की कोशिश की है। वर्ण और जातिवादी समाज में मानसिक स्तर पर बदलाव लाने की दृष्टि से डॉ. आंबेडकर की यह एक बेहतर कोशिश दिखाई देती है। लेकिन यह कोशिश कितनी सार्थक सिद्ध हुई है, यह एक बड़ा सवाल है? यह सवाल हिंदी के दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज के सामने विचार–विमर्श के लिए रखा है।

संकेताक्षर :– अस्मिता, शूद्र–अतिशूद्र, वंशवाद, लिंगवाद, सामंतवाद, स्त्री–विमर्श, वर्णाश्रम व्यवस्था, जातिगत भेदभाव, द्विज संस्कृति, आंबेडकरवाद, ब्राह्मणवाद, संविधान, मातृसत्ता, पितृसत्ता आदि।

धर्म परिवर्तन और अंतर्जातीय प्रेम–विवाह के पीछे बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर का उद्देश्य क्या रहा है, इससे दलित समाज किस दिशा में जा रहा है? आज के दौर में धर्म परिवर्तन और अंतर्जातीय प्रेम–विवाह के कारण समाज में दलितों की सोच और स्थितियाँ कैसी बन रही है? क्या धर्म परिवर्तन के बगैर दलितों का विकास संभव नहीं है? गुलामी, छुआछूत और जातिगत भेदभाव की समस्या की जड़ में वर्ण–व्यवस्था है। देश में जाति उन्मूलन का आंदोलन सबसे पहले तथागत गौतम बुद्ध के नेतृत्व में शुरू हुआ था। गौतम बुद्ध के बाद कबीर और ज्योतिबा फुले ने इसे आगे बढ़ाया और ज्योतिबा फुले के बाद इस प्रतिरोध की परंपरा को बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के आंदोलन ने नेतृत्व दिया था। जब बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने हिंदू धर्म और उसके शास्त्रों का सूक्ष्म अध्ययन किया, तब उन्हें इस धर्म में सुधार की अपेक्षा इसे सिरे से नकार देना उचित लगा।

बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर का हिंदू धर्म से अलग होना एक ऐतिहासिक निर्णय था। हिंदुत्व को नकार कर समता और मानवतावादी तथागत गौतम बुद्ध के धम्म को स्वीकार करने के प्रति उनका रुझान रहा। समूचे शोषित मनुष्य के उत्थान और उद्धार के लिए, जाति और धर्म के नाम पर होने वाले अमानवीय उत्पीड़न से मुक्ति पाने के लिए बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने धर्मांतरण और अंतर्जातीय प्रेम–विवाह को प्राथमिकता दी। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर को धर्मांतरण और अंतर्जातीय प्रेम–विवाह से समाज में मौजूद सकीर्ण सोच, गुलामी और छुआछूत के व्यवहार में परिवर्तन आने की संभावनाएँ दिखाई देती थीं। गौतम बुद्ध के धम्म की ओर मेरा झुकाव क्यों है? इस सवाल का तर्कसंगत विश्लेषण बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में–"मैं बुद्ध के धम्म को सबसे श्रेष्ठ मानता हूँ। किसी भी धर्म की तुलना इससे नहीं की जा सकती। यदि विज्ञान जानने वाले किसी आधुनिक व्यक्ति का कोई धर्म होना ही चाहिए, तो निश्चित रूप से वह धर्म बुद्ध धम्म ही हो सकता है। मेरी यह धारणा पैंतीस वर्षों तक सभी धर्मों का गहन अध्ययन करने के बाद बनी है।"[1] किसी भी व्यक्ति का विकास वैज्ञानिक सोच से ही संभव होता है। लेकिन हिंदू धर्म में वैज्ञानिक सोच की कोई जगह क्यों नहीं हैं? क्योंकि हिंदू धर्म में हर बात धर्म ग्रंथों के बेबुनियादी आधार से निश्चित होती है। इसलिए बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने हिंदुत्व का त्याग करके तथागत गौतम बुद्ध के धम्म को अपने समाज को साथ लेकर स्वीकार किया।

हिंदुओं ने 'मनुस्मृति' को पवित्र ग्रंथ क्यों घोषित किया है? क्योंकि 'मनुस्मृति' ने जाति के विभाजन का सर्मथन किया है। जातियों को तोड़ने के लिए अंतर्जातीय विवाह को अपनाने का बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने समर्थन किया है। लेकिन ब्राह्मणों ने जन्मतः जातियों के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए

***असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे–411 007 (महाराष्ट्र)।**

धार्मिकता की आड़ में 'मनुस्मृति' को संरक्षण देकर अंतर्जातीय विवाह का सख्त विरोध किया है। अंतर्जातीय विवाह का मनुस्मृति ने विरोध क्यों किया है? इसका विश्लेषण करते हुए बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर लिखते हैं–"मनु अंतर्जातीय विवाह का विरोधी है। उसका कहना है कि प्रत्येक वर्ण अपने वर्ण में ही विवाह करे। परंतु उसकी निश्चित वर्ण के बाहर के विवाह को मान्यता थी, फिर यहाँ भी वह इस बात के लिए विशेष रूप से सचेत था कि अंतर्जातीय विवाह से उसके वर्णों की असमानता के सिद्धांत को हानि न पहुँच सके। गुलामी के समान वह अंतर्जातीय विवाह को अनुमति देता है, परंतु उल्टे क्रम से नहीं। एक ब्राह्मण जब अपने वर्ण से बाहर विवाह करना चाहे, तब उसके नीचे के किसी वर्ण के साथ विवाह कर सकता है। एक क्षत्रिय उसके नीचे के दो वर्णों, वैश्य और शूद्र स्त्री के साथ विवाह कर सकता है, परंतु किसी ब्राह्मण स्त्री के साथ विवाह नहीं कर सकता, जो उससे ऊँचा वर्ण है। एक वैश्य किसी शूद्र वर्ण की स्त्री के साथ विवाह कर सकता है, जो उससे नीचे है, परंतु वह ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वर्ण की स्त्री के साथ विवाह नहीं कर सकता।"[2] जातिगत भेदभाव की सोच और मानसिकता को जड़ से मिटाने के लिए अंतर्जातीय विवाह को मान्यता देना बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर की प्राथमिकता रही है। लेकिन हिंदू धर्म में अंतर्जातीय विवाह का सख्त विरोध दिखाई देता है। इसके बावजूद हिंदू धर्म के अंतर्जातीय विवाह के विरोध को ध्वस्त करने के लिए दलित समाज ने उनके बताए मार्ग पर चलने का निश्चय किया है।

'अखिल मुंबई इलाका महार परिषद' यह ऐतिहासिक परिषद का आयोजन मुंबई में 30 मई, 1936 से 2 जून, 1936 तक, चार दिन के लिए हुआ। 'मुक्ति कोन पथे ?' यह बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर का भाषण चर्चित रहा है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने धर्म परिवर्तन के विषय पर सामाजिक और धार्मिक, इन दोनों स्तर पर विचार व्यक्त किए हैं। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के अनुसार–"सरकारी पाठशाला में बच्चों को दाखिला करने का अधिकार बताने पर स्पृश्य हिंदुओं द्वारा मार–पीट के उदाहरण निरंतर घटित होने से सभी परिचित हैं। लेकिन मार–पीट के कुछ कारण तो ऐसे हैं, जिनका उल्लेख करें तो हिंदुस्तान के बाहर रहने वाले लोग स्तंभित होंगे। ऊँची पोषाक पहनने पर मार–पीट हो जाने का उदाहरण ऐसा ही है। गहने पहनने पर मार–पीट की जाती है। पानी लाने के लिए ताँबा–पीतल के बर्तन इस्तेमाल करने पर मार–पीट की जाती है। जमीन की खरीदी करें तो बस्ती जलाई जाती है। जनेऊ पहना जाए तो भी मार–पीट सहनी पड़ती है। मरे जानवर न उठाएँ या उनका मांस न खाएँ तब भी मार–पीट की जाती है। पैरों में जूते–जुर्राबें पहनकर गाँव में जाने पर, स्पृश्य हिंदू को जोहार न करने पर, शौच को जाते समय लोटे में पानी ले जाने पर तक छल किया जाता है। हाल ही में पंचों की संगत में चपाती परोसने पर मार–पीट की गई। इस तरह के जुल्म और अमानवीय व्यवहार के कई उदाहरण आपने सुने होंगे। आपमें से कुछ लोगों को यह भुगतना भी पड़ा होगा। आप इससे भी अवगत हैं कि जहाँ मार–पीट करना असंभव होता है, वहाँ आपके खिलाफ बहिष्कार के शस्त्र का उपयोग किया जाता है। आपको मजदूरी नहीं मिलने देते, आपके जानवरों को खेत से गुजरने की पाबंदी लगाई जाती है, आपको गाँव में प्रवेश नहीं दिया जाता था। इस तरह आपकी नाकेबंदी कर स्पृश्य हिंदू लोगों द्वारा आपको परेशान करने का स्मरण आपमें से काफी लोगों को होगा। लेकिन ऐसा क्यों होता है? इसकी जड़ में क्या है?"[3] इन स्थितियों का विश्लेषण करते हुए बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने सवाल उठाया है कि अछूत जातियाँ हिंदू धर्म का ही एक हिस्सा होने के बावजूद हजारों सालों से लेकर आज तक अनगिनत अन्याय–अत्याचार सहने के लिए क्यों अभिशप्त रही है? बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर और दलित लोगों ने हिंदुत्व के इस अन्याय का विरोध किया। साथ ही हिंदुत्व से अलग होकर बौद्ध धम्म को स्वीकार किया।

दलितों को धर्मांतरण क्यों करना चाहिए? क्या धर्मांतरण के बगैर दलितों की मुक्ति संभव नहीं है? यह दोनों सवाल दलितों के अस्तित्व और उनकी अस्मिता से जुड़े हुए हैं। इन सवालों का विश्लेषण बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में–"जिस धर्म में आपकी मनुष्यता की कोई कीमत नहीं उसमें आप क्यों रहते हैं? जिस धर्म में आपको शिक्षा नहीं मिलती उसमें क्यों रहते हो? जो धर्म आपको मंदिर में प्रवेश नहीं देता, जो धर्म आपको पानी तक मुहैया नहीं कराता, जो धर्म आपको नौकरी मिलने में बाधा पहुँचाता है, जो धर्म पग–पग पर आपको अपमानित करता है, उसमें आप क्यों रहते हैं? जिस धर्म में मनुष्य के साथ मनुष्यता का

व्यवहार करने की पाबंदी है, वह धर्म न होकर धर्म की विडंबना है। जिस धर्म में मनुष्यता को अधर्म माना जाता है, वह धर्म न होकर रोग है। जिस धर्म में अमंगल पशु का स्पर्श स्वीकार्य है, लेकिन मनुष्य को अछूत माना जाता है, वह धर्म नहीं, पागलपन है। जो धर्म एक वर्ग को विद्यार्जन का अधिकार नहीं देता, धन संग्रह तथा शस्त्र ग्रहण करने को मनाही करता है, वह धर्म न होकर मनुष्य के जीवन की विडंबना है। जो धर्म अशिक्षितों को अशिक्षित रखता है, निर्धनों को निर्धन ही रहने की सीख देता है, वह धर्म नहीं, सजा है।"[4] बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने हिंदू समाज में धर्म के नाम पर होने वाले अमानवीय शोषण, उत्पीड़न और अन्याय–अत्याचार को उजागर किया है। हिंदुत्ववादियों से दलितों पर होने वाले अन्याय और अत्याचारों का जवाब माँगा है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने धर्मांतरण का निर्णय लेने के पीछे की पृष्ठभूमि स्पष्ट रूप से दलितों के सामने विचार–विमर्श के लिए रखी हुई थी। इस विषय पर उन्होंने लोगों के सुझावों की माँग भी की थी। यह धर्मांतरण का निर्णय किसी लालच या जल्दबाजी में नहीं लिया था, बल्कि गंभीरतापूर्वक विचार–विमर्श के पश्चात् ही यह तय किया कि दलितों को अपनी उन्नति और उत्थान के लिए हिंदू धर्म से मुक्त होना ही पड़ेगा। धर्मांतरण के अलावा दलितों के पास मुक्ति का कोई भी विकल्प नहीं था।

हिंदू धर्म में दलितों को अपनी जिंदगी में कोई भी परिवर्तन की उम्मीद दिखाई नहीं दे रही थी। लेकिन दलितों के हितों की दृष्टि से तथागत गौतम बुद्ध का धम्म कितना सार्थक होगा? दलितों के अस्तित्व और उनकी अस्मिता को जिंदा करने के लिए धम्म की भूमिका किस प्रकार की रहेगी? बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में–"क्या धर्म–परिवर्तन से उनकी हीन भावना दूर हो जाएगी? निश्चय ही हम इस बारे में कोई सिद्धांत नहीं बघार सकते। लेकिन हम इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में दे ही सकते हैं। अस्पृश्यों की हीन भावना उनके अलगाव से, उनके प्रति भेदभाव से और उनके प्रति समाज की बेरुखी से उपजी है। इन्हीं ने उनके भीतर लाचारी की भावना भरी है। इन्हीं के कारण हीन भावना पैदा हुई। हीन भावना से उनका आत्म–बल क्षीण हो गया। क्या धर्म अस्पृश्यों की इस मनोवृत्ति को बदल सकता है? मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि धर्म यह कर्म कर सकता है, यदि वह सही प्रकार का धर्म हो, यदि धर्म की दृष्टि में व्यक्ति पतित, निकम्मा और बहिष्कृत व्यक्ति न हो, बल्कि बांधव एवं मानव–प्राणी हो, यदि धर्म उसे ऐसा वातावरण प्रदान करे जिसमें उसे लगे कि वहाँ ऐसी संभावनाएँ हैं कि वह स्वयं को दूसरे हर मानव–प्राणी के बराबर समझ सके तो कोई कारण नहीं कि अस्पृश्य ऐसे धर्म को अंगीकार करके अपने युगों, पुराने उस निराशावाद को दूर न कर सके, जिसके कारण उनमें हीन भावना भर गई है।"[5] दलितों को स्वाभिमान और सम्मान से जीने के लिए गौतम बुद्ध के धम्म से मार्गदर्शन लेना ही उचित है। साथ ही दलितों को हिंदुओं के जुल्मों से मुक्ति भी मिल जाएगी। नई आशा–आकांक्षाओं और उम्मीदों को जिंदा करने के लिए बुद्ध की सोच स्वीकार करने की सलाह बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर दलित समाज को देते हैं।

किसी भी धर्म का विरोध और समर्थन किस आधार पर करना चाहिए? क्या मनुष्य को धर्म की आवश्यकता है? क्या बगैर धर्म के मनुष्य का अस्तित्व नहीं है? राजेन्द्र यादव के शब्दों में–"धर्म अफीम है–की मार्क्सवादी धारणा से प्रेरित मैं हर इतिहास और हर धर्म से छूट भागना चाहता हूँ। मैं धर्म–निरपेक्ष और सैक्युलर होने की कोशिश करता हूँ, मगर वहाँ पाता हूँ कि एक तरफ, मैं धर्म–प्राण भारतीय जनता के लिए अजनबी हो गया हूँ; तो दूसरी तरफ, धर्म से ऊपर उठने के नाम पर हर धार्मिक कठमुल्लेपन, जड़ता, अंधविश्वास और अमानवीयता का समर्थन कर रहा हूँ। 'सर्व धर्म समभाव' की धारणा हर सांप्रदायिक अवैज्ञानिकता को स्वीकार करने की कायरता नहीं तो क्या है?"[6] राजेन्द्र यादव ने इस बात की ओर संकेत दिया है कि धर्म को अफीम कहकर समाजवाद की आड़ में 'सर्व धर्म समभाव' का नारा देना कितना विचित्र और दोहरे चेहरे व चरित्र को दर्शाता है।

अंतर्जातीय प्रेम–विवाह में जाति की श्रेष्ठता के कारण हो रहे दलित उत्पीड़न के बारे में मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं–"आज भी यानी नयी शताब्दी में विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान में जाति के बाहर विवाह संभव नहीं है। जिन्होंने करने का प्रयास किया, उसे सवर्णों ने दोजख बख्श दी। इसलिए मैं बार–बार यही कहता हूँ कि न दलित लेखक चूकता है और न उसकी कहानियाँ आउट ऑफ डेट्स होती हैं। आप किसी भी सदी में भले ही प्रवेश कर लें, न सवर्णों की फितरत बदलेगी और न ही

दलित उत्पीड़न थमेगा।"[7] दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के द्वारा धर्मांतरण आवश्यकता को और अंतर्जातीय प्रेम–विवाह से दलितों और गैर–दलितों के संबंधों के प्रसंगों को अभिव्यक्त करने की कोशिशें की गई हैं।

जयप्रकाश कर्दम ने 'नो बार' कहानी में अंतर्जातीय विवाह के सच को अभिव्यक्त किया है। एक उच्च शिक्षित दलित युवक राजेश जिस अंतर्जातीय विवाह की खबर की तलाश में रहता है, उसी खबर से कहानी की शुरुआत होती है। वाण्टेड सूटेबल ग्रूम फॉर एम. ए., 25 ईयर्स, 158 सेण्टीमीटर, हावीटिस, स्लिम, शार्प फीचर्ड, ब्यूटीफुल गर्ल, एक्सपर्ट इन हाउस होल्ड, हाइली एजुकेटेड प्रोग्रेसिव फैमिली, कास्ट नो बा–'टाइम्स ऑफ इंडिया' के 'मैट्रिमोनियल्स कॉलम' 52 का विज्ञापन राजेश के लिए महत्त्वपूर्ण है। राजेश तुरंत अपनी और अपने परिवार की सारी जानकारी लड़की के घर डाक से भेज देता है। लेकिन इस जानकारी में अपनी जाति का उल्लेख कहीं पर भी नहीं करता है, क्योंकि लड़की की ओर से जाति की कोई शर्त नहीं है। वह सोचता है–"जब विज्ञापनदाता जाति की भावना से पहले ही मुक्त है तो उसके लिए अपनी जाति लिखने का क्या औचित्य है। ऐसे में अपनी ओर से जाति का उल्लेख करना हल्कापन होगा।"[8]

लड़की के घर बुलाने पर राजेश चला जाता है। लड़की के पिता कहते है–"देखिए राजेश जी, हम बड़े खुले विचारों के आदमी हैं। जाति–पाँति, धर्म–संप्रदाय किसी प्रकार के बंधन को हम नहीं मानते। ये सब बातें पिछड़ेपन का प्रतीक हैं। हमारे परिवार में जितनी भी शादियाँ हुई हैं, वे सब अंतर्जातीय हुई हैं। अब देखो मैं ब्राह्मण हूँ और मेरी पत्नी कायस्थ परिवार से है। हमारी बड़ी बेटी की शादी अग्रवाल लड़के के साथ हुई है और हमारे घर में जो बहू आई है, वह पंजाबी क्षत्री है।"[9] राजेश और लड़की दोनों इस मुलाकात की बातचीत के बीच औपचारिकता के आवरण से बाहर निकल अनौपचारिक हो रहे थे। दोनों एक–दूसरे को पसंद करते हुए भविष्य की योजनाओं के बारे में विचार भी कर रहे थे। राजेश एक दलित मजदूर का लड़का था। माँ–बाप ने मेहनत–मजदूरी करके उसे खूब पढ़ाया–लिखाया था। राजेश ने भी बड़ी मेहनत और शराफत से जिंदगी को संवारा था। राजेश अपनी शादी के बारे में अपने माँ–बाप से अनुमति ले लेता है। लेकिन लड़की के माँ–बाप को जैसे ही राजेश की जाति के बारे में पता चलता है, वैसे ही शादी के लिए विरोध होता है।

विपिन बिहारी की 'पत्थर की लकीर' कहानी में एक दलित लड़की सुनयना पढ़ाई पूरी करके नौकरी कर रही है। सुनयना और देवेन्द्र शर्मा एक ही कॉलेज और क्लास में पढ़ते हैं। दोनों की एक–दूसरे में दिलचस्पी रहती है। दोनों अपनी मित्रता को विवाह के रिश्ते में बदलने की सोचते हैं। लेकिन सुनयना अंतर्जातीय विवाह के प्रस्ताव को क्यों ठुकराती है? सुनयना के माता–पिता तेतर और सहोदरा को उनकी लड़की किसी गैर–दलित लड़के के साथ विवाह करे क्यों बर्दाश्त नहीं? इस कहानी ने इन सवालों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। जाति पत्थर की लकीर है, लेकिन इस लकीर को मिटाने के लिए जाति के भीतर ही सिमटते जाना कहाँ तक सही है? लेकिन सुनयना के इस विरोध के पीछे की सोच है–"युगों से भले ही हमारी जाति अवर्ण मानी जाती रही हो, लेकिन हमारे वर्ग की औरतें भोगी जाती रहीं सवर्णों द्वारा। ग्रंथों में भी इसका प्रावधान किया हुआ है। मैं भी एक अवर्ण कन्या हूँ और मेरा भी एक ब्राह्मण द्वारा ही भोग लगाया जाएगा। कल और आज में फर्क क्या हुआ? कल सहमति नहीं थी आज सहमति होगी, फिर मैं इतनी पढ़ी–लिखी क्यों? उपेक्षा, दुर्व्यवहार मैं बचपन से सहती आई हूँ। सहा ही क्यों? मेरी पढ़ाई–लिखाई ही कुछ प्रचलित मान्यताओं के खिलाफ एक मुहिम बनी। मेरी मुहिम जीवित रहे और मान्यताएँ खत्म हों, लेकिन देवेन्द्र के साथ ब्याह के बाद मान्यताएँ खत्म नहीं होंगी। खत्म तभी होगी, जब आपकी लड़कियाँ हमारे घर में एक सहमति के साथ आए, लेकिन ऐसा नहीं होगा तो फिर मैं...ये सच है कि मेरी उम्र का मेरे बराबर पड़ा–लिखा कोई कुंआरा नहीं मिलेगा मेरी जात में। मैं कम पढ़े–लिखे से ब्याह कर लूँगी, लेकिन देवेन्द्र से नहीं करूँगी। हमारा वर्ग काफी निर्धन, पिछड़ा, अशिक्षित है। मैं एक पढ़ी–लिखी, ब्याह होने पर मैं अपने वर्ग से कट ही जाऊँगी न, तो मेरे पढ़ने–लिखने का फायदा किसे मिलेगा?"[10] बेशक सुनयना को गाँव के स्कूल से लेकर कॉलेज तक की यात्रा में जातिगत भेदभाव की पीड़ा, उपेक्षा और दुर्व्यवहार को सहना पड़ा है।

सुनयना को पिता ने बचपन में ही समझाया था–"हम छोटे लोग हैं बेटा, कुछ भी कर जाएँ हमारी जात नहीं बदल सकेगी, समाज का व्यवहार नहीं बदलेगा। हम लोग बेशी कूद–फांद भी नहीं कर सकते। हमारे पास कोई धरोहर नहीं है। उन लोगों के पास ऊँची जात है, धन–संपत्ति है, संस्कार है। मैं चाहता हूँ कि तुम भी ऊँचा बनो। वे नहीं मानेंगे, न माने तो मैं तुम में अपनी जात का गौरव देख रहा हूँ।"[11] सुनयना के माता–पिता की दिमाग में जाति के कारण घर किए हुए हीनता–बोध को समझा जा सकता है। लेकिन सुनयना शिक्षित है और सामाजिक सरोकारों की बड़ी बातें कर रही है, तब भी वह जाति की संकीर्ण मानसिकता से बाहर क्यों नहीं निकल सकी है? जाति का सच पत्थर की लकीर है, लेकिन इस लकीर को पीटने का संकेत इस कहानी की नायिका सुनयना के बातों से स्पष्ट झलकता है, जो दलित समाज और आंदोलन को नकारात्मक दिशा देने की कोशिश दिखाई देती है।

दलितों को धर्मांतरण के बाद जिन सामाजिक स्थितियों से संघर्ष करना पड़ा है, उन स्थितियों की बेहद बारीक पर्तों का खुलासा किया है। गाँव का सवर्ण समाज दलितों का बहिष्कार करता है। गाँव में घुसने नहीं दिया जाता है। घरों–खेतों में रोजगार देना बंद। दुकान से खाने की चीजें देना बंद। खेतों में जानवरों को घुसने देना बंद। दलित बस्ती को आग के हवाले किया जाता है। उन्हें डराया–धमकाया जाता है। जान से मारने की कोशिश की जाती है। आदि अनेक तरह की पाबंदियों के बीच दलित जीने के लिए मजबूर हो जाते हैं। लेकिन इस सामाजिक बहिष्कार से मुक्ति दिलाने के लिए बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने दैवी व पवित्र कही जाने वाली सनातन द्विजों की मानव विरोधी वर्ण–व्यवस्था और जातिप्रथा का जड़ से उन्मूलन करने के लिए वैचारिक आंदोलन शुरू किया था। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर का यह वैचारिक आंदोलन तर्क और विवेक–बुद्धि पर आधारित है। द्विजों के विचित्र कुतर्कों के खिलाफ इस विरोध, विद्रोह, नकार और प्रतिरोध के आंदोलन का मकसद एकदम स्पष्ट था, शूद्रों, अतिशूद्रों और स्त्रियों को मानवीय गरिमा, सम्मान और अधिकार दिलाना। भारत में इन मनुष्यों का अतीत और वर्तमान बेहद कष्टमय था। जिनका अतीत और वर्तमान बेहद कष्टमय हो उनका भविष्य कैसा होगा? इस कष्टमय जीवन को स्वयं बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने जीया–सहा था, जिसके कारण उन्होंने एक बेहतर भविष्य की उम्मीद से तथागत गौतम बुद्ध की राह पर चलने का संकल्प और साहस किया। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने बौद्ध धम्म को स्वीकार करने का ऐतिहासिक निर्णय लिया। लेकिन इस ऐतिहासिक निर्णय का दलित समाज पर कैसा प्रभाव रहा है? आज यह जानना आवश्यक है कि क्या धर्मांतरण और अंतर्जातीय विवाह दलितों के लिए पुर्नजीवन के रूप में उभरा है? क्या यह दलितों की नई अस्मिता का संरक्षक साबित हुआ है? दलितों को धर्मांतर से किन नई चुनौतियों को झेलना पड़ा है।

हिंदी दलित कहानियों में धम्म दीक्षा और अंतर्जातीय प्रेम–विवाह के संबंधों के कारण दलितों में हो रहे परिवर्तन के कुछ संकेत इस प्रकार दिखाई देते हैं–बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने दलितों के भीतर पनप रही जातीयहीनता के बोध से मुक्त करने की कोशिश की है। छुआछूत और जातिगत भेदभाव की जड़ वर्ण–व्यवस्था को पहचानकर उसका विरोध किया। गाँव–शहारों में बेगारी और बंधुआ मजदूरी करना छोड़कर सम्मानजनक व्यवसायों में हस्तक्षेप करना शुरू किया है। हिंदुओं के मंदिरों और ग्रंथों का बहिष्कार, देवी–देवताओं के प्रति आस्था और विश्वास को अपने घरों और दिलो–दिमाग से निकालकर गौतम बुद्ध के विचारों को मार्गदाता के रूप में स्वीकार किया है। हिंदू संस्कृति, देवी–देवता, धार्मिक ग्रंथों, धार्मिक पाखंडता और अंधविश्वास का तर्क, बुद्धि और विवेक के आधार पर विरोध किया है। सामाजिक अन्याय, अत्याचार और बहिष्कार की स्थितियों के विरोध में संगठित होकर संघर्ष करना शुरू किया है। ब्राह्मणवादी संस्कृति और शिक्षाओं को नकार कर बौद्ध धम्म की सोच, संस्कृति और शिक्षाओं का स्वीकार किया है। गाँव की संरचना मूलतः जातिगत भेदभाव, छुआछूत, गुलामी, बेगारी और अमानवीय जुल्मों की नींव पर टिकी है, इस कारण दलितों ने शहरों की ओर पलायन शुरू किया है। लेकिन शहरों में भी जाति के राक्षस ने उनका पीछा नहीं छोड़ा है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में– "जातिप्रथा को तोड़ने का वास्तविक तरीका अंतर्जातीय भोज और अंतर्जातीय विवाह नहीं है, बल्कि उन धार्मिक धारणाओं को नष्ट करना है, जिन पर जातिप्रथा की नींव रखी गई है।"[12]

संक्षेप में, जयप्रकाश कर्दम की 'नो बार' और विपिन बिहारी की 'पत्थर की लकीर' आदि हिंदी की दलित कहानियों में धम्म दीक्षा और अंतर्जातीय प्रेम–विवाह से जुड़े सवालों को उठाया गया है। धम्म दीक्षा और अंतर्जातीय प्रेम–विवाह को लेकर आज भी समाज में समझदारी की कमी दिखाई देती है। समाज में छुआछूत का व्यवहार भले ही क्यों न खत्म हो रहा हो, लेकिन जाति और धर्म के आधार पर सोच–विचार में आज भी ऊँच–नीच और भेदभाव की भावना घर कर गई है। इस भावना को दिमाग से हटाने की कोशिश निरंतर जारी है। लेकिन कहीं–न–कहीं यह लोगों के दिलो–दिमाग पर हावी होती हुई दिखाई देती है। धम्म दीक्षा दलित समाज के सम्मान और स्वाभिमान का मामला है। सम्मान और स्वाभिमान से जीने के लिए दलितों ने हिंदू धर्म की सामाजिक–सांस्कृतिक और धार्मिक गुलामी को नकार दिया है। गौतम बुद्ध का धम्म दलितों के लिए प्रेरक रहा है।

संदर्भ–सूची :–

1. रत्तू नानक चंद (संपादक)–बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर : संस्मरण और स्मृतियाँ, समयक प्रकाशन, 32/3, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली–110063, द्वितीय संस्करण, 2002, पृ. 124।
2. डॉ. आंबेडकर बाबा साहेब–हिंदुत्व का दर्शन, संपूर्ण वाड्मय, खंड–6, प्रकाशक : डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली–110001, चौथा संस्करण–2013, पृ. 45–46।
3. लिंबाले, शरणकुमार (संपादक)–दलित साहित्य : वेदना और विद्रोह, वाणी प्रकाशन, 21–ए, नयी दिल्ली–110 002, संस्करण–2010, पृ. 92।
4. वही, पृ. 69
5. डॉ. आंबेडकर बाबा साहेब–अस्पृश्यों का विद्रोह, गाँधी और उनका अनशन पूना पैक्ट, संपूर्ण वाड्मय, खंड–10, प्रकाशक : डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली–110 001, चौथा संस्करण–2013, पृ. 350।
6. यादव, राजेन्द्र–प्रेत मुक्ति, खंड–10, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002, प्रथम संस्करण–1998, पृ. 53।
7. लिंबाले, शरणकुमार (हिंदी अनुवाद : निशिकांत ठकार)–छुआछूत, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002, प्रथम संस्करण–2008, पृ. 13।
8. कर्दम जयप्रकाश–तलाश, विक्रम प्रकाशन, ई–11/5, कृष्णनगर, दिल्ली–110 051, प्रथम संस्करण–2005, पृ. 52।
9. वही, पृ. 53।
10. बिहारी, विपिन–आधे पर अंत, कुमार पब्लिकेशन हाउस, 52/11, ज्वाला नगर, शाहदरा, दिल्ली–110 032, प्रथम संस्करण–2006, पृ. 58।
11. वही, पृ. 47।
12. डॉ. आंबेडकर बाबा साहेब–भारत में जातिप्रथा एवं जातिप्रथा उन्मूलन : भाषायी प्रांतों पर विचार, रानडे, गाँधी और जिन्ना आदि, संपूर्ण वाड्मय, खंड–1, प्रकाशक डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली–110 001, चौथा संस्करण–2013, पृ. 47।

रघुवीर सहाय की काव्य-संवेदना

सचिन शुक्ला*

क्या सच में एक दिन
स्वच्छ जल रह जाएगा केवल नारियल में
और ख़ाली बाँस के खोल में साँस की हवा
        क्या बस जुगनुओं में रह जाएगी सच की लौ
        और उर्वर मिट्टी केंचुओं के बिल में
श्यामपट इतना बड़ा कोरा फैला हुआ
और जरा–सी खड़िया नहीं होगी
'छुट्टी' लिखने के लिए भी
        क्या सच में एक दिन
        झींगुरों के पास ही रह जाएगी पुकार
        और चिड़ियों को भी
        सुबह होने का पता नहीं चलेगा ? **–प्रेमरंजन अनिमेष**

शुरु में ही एक प्रश्नवाचक कविता इसलिए क्योंकि अपने अब–तक के साहित्यिक अध्ययन में मैंने पाया है कि साहित्य बुनियादी तौर पर एक प्रश्न है। साहित्य द्वारा पूछे गए सवालों में उसकी परिवर्तन की आकांक्षा है और इन्ही सवालों के माध्यम से एक नए समाज की परिकल्पना। 'रघुवीर सहाय की काव्य–संवेदना' समझने के संदर्भ में यह प्रश्नाकुलता और इसके माध्यम से समाज परिवर्तन की आकांक्षा सबसे मूल बिंदु बनकर उभरती है।

रघुवीर सहाय की इस लगातार प्रश्न पूछने की बेहद जरुरी खूबी के बारे में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं– "रघुवीर सहाय कविता में सूचनाएं भी देते हैं।... लेकिन वे कविता में सूचनाएं देकर संतुष्ट नहीं हो जाते। उनकी कविताएँ अपने समय और समाज की खबर देती हुई बार–बार सवाल पूछती हैं और पाठकों को नए सवाल करने के लिए उकसाती है। वे सवाल पाठक को सजग बनाते हैं, उसकी चेतना नई संभावनाओं की तलाश में सक्रिय होती है।"[1]

नई संभावनाएँ हमारे देश में आजादी के समय जगी थीं। लेकिन कुछ ही वर्षों में सारी आशाएं धूमिल हो गयीं। रघुवीर सहाय की पूरी मनोभूमि का निर्माण आजादी के बाद हुए इसी मोहभंग से हुआ। उनका रचना–संसार आजादी के बाद के भारत के यथार्थ से निर्मित हुआ है। आजादी के बाद विकसित सोच, शुरू में आशावादी लेकिन बाद में धीरे–धीरे यथास्थितिवादी परिवेश से खीझ कर आक्रोश में बदलती गई। स्वतंत्रता के बाद जो लोकतंत्र हमें मिला उसके बारे में रघुवीर सहाय लिखते हैं– "मोटे, बहुत मोटे तौर पर लोकतंत्र ने हमें इनसान की शानदार जिंदगी और कुत्ते के मौत के बीच चाँप लिया है।"[2] वे इस तथाकथित लोकतंत्र की विसंगतियों के विरुद्ध और जनता के पक्ष में कविता लिखते रहे। इस लोकतंत्र की विसंगति और विडंबना पर वे व्यंग्य करते हैं–

"संसद एक मंदिर जहाँ किसी को द्रोही
कहा नहीं जा सकता
....
हर मंत्री बेईमान है और कोई अपराध सिद्ध नहीं
काल रोग का फल है और अकाल अनावृष्टि का
यह भारत एक महागद्दा है प्रेम का।"[3]

कई–कई फलोंवाले चाकू की तरह सहाय जी का व्यंग्य है। जब वह लिखते हैं कि 'यह भारत एक महानद्दा है प्रेम का' तो यहाँ उनका व्यंग्य स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ कहीं भी प्रेम नहीं है, चारों ओर भ्रष्टाचार, अन्याय, घृणा ही घृणा है।

***शोधार्थी, हिंदी विभाग, पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय, बठिंडा।**

रघुवीर सहाय प्रतिबद्ध और यथार्थवादी रचनाकार हैं। अपनी प्रतिबद्धता को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं– "विचार वस्तु का कविता में खून की तरह दौड़ते रहना कविता को जीवन और शक्ति देता है और यह तभी सम्भव है, जब हमारी कविता की जड़े यथार्थ में हो।"[4] लोकतंत्र इस धारणा को लेकर चलता है कि शासन में जनता की हिस्सेदारी, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, आर्थिक समानता आदि हो, जो वर्तमान व्यवस्था में लगभग अनुपस्थित है। चुनाव में जनप्रतिनिधि के रूप में तो पूँजीपतियों के ही प्रतिनिधि चुने जाते हैं या बना लिए जाते हैं। ये प्रतिनिधिगण समाज को सुधारने के बजाए उसे तोड़ने में लगे हैं–

'मुझे शक है
टूटते हुए समाज का रोना जो रोते हैं
उनके कल परसों के आँसुओं का
प्रमाण मेरे पास लाओ
मुझे शक है ये टूटते समाज में
हिस्सा लेने आए हैं, उसे टूटने से रोकने के लिए नहीं।'

वे जनता के कवि हैं। इसलिए उनकी राजनीतिक कविताओं के पार्श्व में साधारण जन ही खड़ा है। उनकी कविता 'अधिनायक' भारतीय राजनीति द्वारा थोपे गए खोखले और जर्जर राष्ट्रवाद की पोल खोल देती है और बताती है कि भारत का वंचित वर्ग किस तरह आशावादी चाशनी में डूबकर भोला बना हुआ है। वे फिर से प्रश्न उठाते हैं–

"राष्ट्रगीत में भला कौन वह, भारत– भाग्य – विधाता है
फटा सुथन्ना पहने जिसका, गुन हर चरना गाता है।"[5]

'हरचरना' हर वह व्यक्ति है, जिसका भाग्य भारत के भाग्य से जुड़ा है। लेकिन अफसोस यह है कि भारत का भाग्य कुछ मुट्ठी भर लोगों के सपनों से जुड़ा है, जिनमें नेतृत्व का पाखण्ड है, खोखलापन है। वे अपनी कविताओं में बार–बार नामों का उल्लेख करते हैं। प्रश्न उठता है कि क्या इन नामों का कोई सामाजिक संदर्भ भी है? कवि केदारनाथ सिंह कहते हैं– "मैं स्वीकार करूँ तो उनके नामों को पढ़कर मेरे मन में एक लम्बी परम्परा जागती है। जिए समाज से मैं आता हूँ उससे जुड़े चरित्र मेरे सामने आते हैं। मुस द्दीलाल तो साक्षात् मेरे सामने बैठे हुए हैं। मैं रघुवीर सहाय को गहरे अर्थों में अवध का कवि मानता हूँ... ये जो पात्र बार–बार लौटकर रघुवीर सहाय की कविताओं में आते हैं, वे ज्यादातर उस भू–भाग से निकलकर आते हैं जिस समाज में सहाय का आरंभिक जीवन गुजरा।"[6]

समाज में सामान्यतः मनुष्य और उसके जीवन का अवमूल्यन होता रहता है। आदमी की अहमियत इतिहास की विकास प्रक्रिया में निरंतर टूटती रही है। धर्म में भी आदमी की बहुत ज्यादा इज्जत नहीं है। वहाँ यह संसार और जीवन पानी के बुलबुले की तरह है। आधुनिक सभ्यता की तमाम उपलब्धियों और चकाचौध के बावजूद जिस चीज़ की कीमत सबसे नीचे गिरी है वह आदमी है। आज की जिंदगी और राजनीति में अगर देखे तो आदमी क्या है? आदमी रैली में झण्डा उठाए हुए एक हाथ है, मेट्रो और रेलवे स्टेशनों पर भीड़ का रेला है, किसी बाज़ार में खरीददार है, सड़क पर ट्रैफिक है या फिर एक ऐसा इंसान जिसकी दिन दहाड़े हत्या हो जाती है और किसी को कोई फर्क ही नहीं पड़ता –

"भीड़ ठेलकर चला गया वह
मरा पड़ा है रामदास यह
देखो देखो बार बार कह
लोग निडर उस जगह खड़े रह
लगे बुलाने उन्हें जिन्हें संशय था हत्या होगी"[7]

यहाँ आकर रघुवीर सहाय की कविता दो धारी तलवार हो जाती है। पहली बात तो यह कि आदमी की कीमत इतनी गिर गई है कि उसकी दिन दहाड़े हत्या हो जा रही है और किसी को फर्क नहीं पड़ रहा है। दूसरी तरफ उन्होंने इन फर्क न पड़ने वाले लोगों के लिए 'निडर' शब्द का प्रयोग करके तीखा व्यंग्य किया है। वरिष्ठ आलोचक मैनेजर पांडेय ने इसपर लिखा, "कविता की अंतिम दो पंक्तियां पूरी कविता को

नया अर्थ देती हैं। अकेला एक शब्द 'निडर' प्रत्येक पाठक को डराने के लिए काफी है। जिस समाज में ऐसे 'निडर' होंगे, उसमें हर मामूली व्यक्ति कितना डरा हुआ होगा– यह अलग से कहने की जरूरत नहीं है।"[8]

जनता से रघुवीर सहाय को गहरा प्यार है लेकिन वे उसकी कमजोरियों के लिए उसे बख्शते नहीं। 'आपकी हंसी' शीर्षक कविता के प्रतीक पुरुष की हँसी क्या कहती है? सत्ता शोषण के अबाध सिलसिले, लोकतंत्र की निष्क्रियता, भ्रष्टाचार के व्यापक प्रसार और जनता की विवशता से प्रसन्न और अत्यंत संतुष्ट है क्योंकि समाज शोषण का सार्थक ढंग से प्रतिरोध करने के लिए संगठित नहीं है। इस कविता की अंतिम चार पंक्तियाँ बहुत ही अर्थगर्भित हैं। प्रतीक पुरुष अपने सामने बैठे विरोधी को अकेला पाकर हँसता है। अकेला विरोधी क्या कर लेगा ? वह चीख–चीखकर स्वयं हास्यास्पद बन जाएगा। इसलिए "सहसा मुझे अकेला पाकर ऐसी पंक्ति है, जिसके दोनों तरफ धार है। यह प्रतीक–पुरुष को भी काटती है और सामने बैठे विरोधी को भी, जिसने अपने को 'अकेला' बना रखा है।"[9]

हमने एक ऐसा लोकतंत्र बनाया है जिसमें ऊपर के मुठ्ठी भर लोगों को छोड़कर सभी उद्देश्यहीनता की जिंदगी जीते हैं। वे जीते हैं सिर्फ जीने के लिए, लड़का बड़ा होता है सिर्फ बड़ा होने के लिए–

'बड़ा हो रहा लड़का
उन औजारों के बिना
जिससे वह बनाता और तोड़ता हुआ बड़ा होता
वह सिर्फ बड़ा हो रहा है।'

लड़के के पास भले प्रतिरोध के औजार न हो पर कवि रघुवीर सहाय के पास है। उन्होंने बदलते यथार्थ को पहचानने और उसका प्रतिरोध करने के औजार स्वयं गढ़े हैं। वह जानते हैं कि यह व्यवस्था कमजोर आदमी पैदा करती है, जिससे कोई अन्याय के खिलाफ आवाज न उठा सके। देश की जनता ने जब आजादी की लड़ाई लड़ी थी तब उसने सोचा था कि देश में आजादी के बाद आर्थिक एवं सामाजिक समानता होगी, शोषण और अन्याय से मुक्ति मिलेगी। लेक्ति भ्रष्ट राजनेताओं की स्वार्थ–वृत्ति ने जनता के सभी सपनों को दूर कर दिया। इस स्वप्न भंग पर रघुवीर लिखते हैं–

'बीस वर्ष / खो गए भरम में उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी जनमी पलीपुसी क्लेश में
बेमानी हो गई अपने ही देश में।'

अगर हम अपनी जिंदगी को मोटे तौर पर देखें तो वह कुल मिला–जुला कर एक बहुत छोटी सी दिनचर्या में बंधी हुई है। हम सब कॉलेज आते–जाते हैं, थोड़ी बहुत अगल–बगल की गतिविधियाँ हैं। लेकिन हमारी जिंदगी का एक बहुत छोटा और निश्चित 'पैटर्न' है। लेकिन मनुष्य होने के नाते हमारे कुछ सपने हैं, बड़े सपने। और बड़े सपने का अर्थ होता है कि इस दुनिया में सभी लोग सुखी रहे, हंस सके, बराबरी हो। ऐसा न हो कि एक बच्चा बुनियादी दवाइयों के अभाव में मर जाए और दूसरे किसी आदमी को खांसी हो तो वह किसी बड़े अस्पताल में चेक–अप के लिए डेढ़ लाख खर्च कर दे।

रघुवीर राहाय की कविता ऐसी दुनिया नहीं चाहती जहाँ चीजें चमक रही हो और आदमी के मन में अंधेरा घिर रहा हो। उनकी कविता एक ऐसी दुनिया चाहती है जिसमें पूर्णिमा का चाँद आकाश में भी खिले और मनुष्य के मन में भी। इसलिए साधारण मनुष्य ने जो स्वप्न देखे हैं, उनकी जो आशाएँ हैं, हक है वह सब पूरा होना चाहिए–

'हमको तो अपना सब हक़ मिलना चाहिए
हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन
कम से कम वाली बात न हमसे कहिए।'

रघुवीर सहाय की रचनाओं की प्रतिबद्धता है जनता और इस जनता में स्त्री भी शामिल है। उनकी कविताओं का एक बड़ा हिस्सा स्त्रियों पर लिखी कविताओं का है। उनकी स्त्री विषयक कविताएँ पढ़ते हुए भारतीय परिवेश में रहने वाली स्त्रियों की छवि बिलकुल साफ दिखाई देती है। साथ ही साहित्य में अब तक चित्रित स्त्री को रघुवीर सहाय ने 'पढ़िए गीता' कविता में चित्रित किया है। इस में वे नारी की कल्पित

मर्यादा को ढहा कर एक 'विडम्बना' पैदा करते हुए निम्न मध्यमवर्गीय नारी की पूरी जीवन–गाथा और उसकी विडम्बना प्रस्तुत करते हैं।

रघुवीर सहाय की स्त्री विषयक कविताएँ पुरुषों के मन में प्रश्न और हलचल पैदा करती है। साथ ही साथ वे स्त्रियाँ को संघर्ष के लिए प्रेरित करते हुए उनकी सहनशीलता का विरोध भी करते हैं–

'नारी बिचारी है/ पुरुष की मारी है
तन से क्षुधित है/ मन से मुदित है
लपक झपक कर/ अन्त में चित है।'

उनकी स्त्री विषयक कविताओं के संदर्भ में परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं, "अधिकतर स्त्री विषयक कविताएँ जटिल विडंबना के साथ उलझन में भी डालती हैं। करुणा ही करुणा नहीं है। कुछेक कविताओं में क्रूर और सुंदर की परस्पर अतिव्याप्ति भी मुश्किल पैदा करती है। करुणा को संदेह से देखने–जाँचने का विवेक भी रघुवीर सहाय की कविता को अर्थवान बनाता है।"[10]

श्रम करने वाली स्त्रियों के प्रति रघुवीर सहाय का भाव समानता से लबालब भरा दिखाई देता है। स्त्री–पुरुष की समानता और सहधार्मिता के आदर्श को कवि ने अपनी कविता में स्थान दिया है।

"बंधु हम दोनों थके हैं
और थकते ही रहे तो साथ चलते भी रहेंगे
वह नहीं है साथ जिसमें तुम थको तो हम तुम्हें लादें फिरें
और हम थकें तो दम तुम्हारा फूल जाए– हाय।"[11]

रघुवीर सहाय की कविता में केवल शोषित, भ्रष्ट समाज और उससे हताश–निराश लोग ही नहीं दिखाई देते, बल्कि उन्हें उस समाज में बदलाव की एक उम्मीद भी दिखाई देती है। वे यह जानते हैं कि जीना लाचारी और बेबसी का नाम नहीं है, यह संघर्ष और विकल्प के सृजन का नाम है–

'शक्ति दो, बल दो हे पिता !
जब दुःख के भार से मन थकने आए
पैरों में कुली–की–सी चाल छटपटाए
इतना सौजन्य दो कि दूसरों के बक्स–बिस्तर घर तक पहुंचा आएँ'

उनका संघर्ष केवल जीने भर के लिए नहीं, उनका एक संघर्ष भाषा को लेकर भी है। हम जानते हैं कि मनुष्य को परिभाषित करने के कई पैरामीटर में से एक यह भी है कि मनुष्य वह है जो भाषा में रहता है। साहित्य का एक बड़ा काम मनुष्य की भाषिक दुनिया की रक्षा करना है। भाषा पर सबसे बड़ा संकट दो क्षेत्रों से आ रहा है – राजनीति और बाजार। "भाषा के अनेक प्रकारों पर व्यावसायिक और राजनीतिक कब्जे ने भाषा की रचनात्मकता को अनेक प्रकार से विकृत और कुंठित किया है।"[12]

रघुवीर सहायता के भाषा प्रयोग को लेकर आलोचक नंदकिशोर नवल ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास' में बड़ी सार्थक टिप्पणी की है, "सहायजी का विश्वास तोड़ने में है, इसलिए उन्होंने नई कविता की प्रचलित और स्वीकृत भाषा को तोड़ा है। यह काम उन्होंने भिन्न प्रकार की शब्दावली और उसके प्रयोग कौशल के द्वारा तो किया ही है, वाक्य विन्यास को भी बदलकर भी किया है।... लेकिन यह नई भाषा सिर्फ कहने के लिए नई भाषा नहीं है। इसमें एक वाक्य का 'करेंट' दूसरे वाक्य में भी प्रवाहित होता है।"[13]

रघुवीर सहाय ने 'भाषा' में कई प्रयोग किए हैं। एक तरफ तो वे ऐसी भाषा चाहते हैं जिसमें एक शब्द का एक ही अर्थ हो ताकि कोई, खासकर सत्ता उसे अपने पक्ष में इस्तेमाल न कर सके–

"इसलिए कहूंगा / मगर मुझे पाने दो
पहले ऐसी भाषा / जिसका दो अर्थ न हो।"[14]

इसीलिए अशोक वाजपेयी ने कहा, "रघुवीर सहाय अपने शब्दों को, अर्थ को इतना निश्चित करना चाहते हैं कि उनके दो अर्थ न हो। .. रघुवीर सहाय का आग्रह इस बात पर है कि उनके शब्दों का कोई

मनोनुकूल या मनमाना अर्थ न निकाला जाए। वे नहीं चाहते कि उनके शब्दों का दुरुपयोग किया जाए।"[15] संभवतः यही कारण है कि रघुवीर सहाय सीधी और सपाट भाषा का प्रयोग करते हैं।

नामवर सिंह ने इसी सीधी और सपाट बयानी को कविता के नये प्रतिमान के रूप में स्थापित किया है। सत्ता के विरोध, उसका पर्दाफाश करने के लिए जिस भाषा की जरूरत है वह कवि को बखूबी मालूम है–

"मुझे मालूम था मगर इस तरह नहीं की
जो खतरे मैंने देखे थे वे जब सच होंगे
तो किस तरह उनकी चेतावनी देने की भाषा
बेकार हो चुकी होगी।
एक नयी भाषा की दरकार होगी।"[16]

लेकिन उनकी कई कविताएँ ऐसी हैं जिनकी भाषा बिल्कुल सरल, सीधी, सपाट है। परंतु अर्थ प्राप्ति के लिए गहरी डुबकी लगानी ही पड़ती है। मसलन उनकी कविता 'आपकी हँसी' में इस हँसी का खास महत्व है। इस कविता में हँसी कई रूपों में आती है, अपने भीतर कई तरह के अर्थ छिपाए हुए–

निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हँसे
लोकतंत्र का अंतिम क्षण है
कहकर आप हँसे
———
कितने आप सुरक्षित होंगे मैं सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर
फिर से आप हंसे'

इस कविता में लोग ही नहीं हँसते, तानाशाह भी हँसता है, जो उसके मानव–विरोधी रूप को उजागर कर देता है। इसी कविता और प्रकारांतर से रघुवीर सहाय की भाषा पर नंदकिशोर नवल टिप्पणी करते हैं– "उनकी कविताओं की भाषा सरल होती है, लेकिन उनका शिल्प कुछ ऐसा है कि उनकी कुछ ही कविताएँ नागार्जुन की कविताओं की तरह पाठकों तक संप्रेषित होती हैं। 'आपकी हँसी' एक ऐसी कविता है जो रघुवीर सहाय के शब्दगत और अर्थगत सारे पेचोखम को अपने भीतर समाए हुए है।... यह एक साथ एक सरल और जटिल कविता है।"

हम जानते हैं कि रघुवीर सहाय एक पत्रकार भी रहे। इसलिए उनकी कविता ख़बर भी देती है। वह जिंदगी की वास्तविकताओं और सचाइयों के अनुभवों की ख़बर देती है। जाहिर है, कविता की ख़बर अखबार जैसी नहीं होती। अखबार की ख़बर जहाँ से शुरू होती है, उसके पहले की और जहाँ खत्म होती है, उसके बाद की ख़बर होती है रघुवीर सहाय की कविता। उनकी कविता में पत्रकार की दृष्टि और कवि की दृष्टि का द्वन्द्वात्मक रिश्ता है–

"मुझसे कहा कि मृत्यु की खबर लिखो
मुर्दे के घर नहीं जाओ, मरघट जाओ
लाश को भुगताने के नियम, खर्च और कुप्रबंध
खोज–ख़बर लिख लाओ
यह तुमने क्या लिखा, 'झुर्रियां,
उनके भीतर छिपे उनके प्रकट होने के आसार,
आंखों में उदासी सी एक चीज दिखती है–'
यह तुमने मरने के पहले का वृत्तांत क्यों लिखा?"19

रघुवीर सहाय जानते हैं कि संप्रेषण के माध्यमों पर बाज़ार का कब्जा है जिसे मनुष्य, मानवीय अनुभव, सच–झूठ, प्रामाणिकता–अप्रामाणिकता से कोई सरोकार नहीं। बाजार की भाषा का कोई अर्थ नहीं

है। वहाँ लगातार नकली वक्तव्य धड़ल्ले से दिया जा रहा है। मसलन विज्ञापनों में हम देखते हैं कि यह क्रीम पाँच दिन लगाइए अगर पाँच दिन में चेहरा गोरा न हो जाए तो पैसे वापस। यह तो साफ 'फ्रॉड' है। बाजार और राजनीति ने भाषा की पूरी विश्वसनीयता को नष्ट कर दिया है। भाषा की विश्वसनीयता को कायम रखा जाए। क्योंकि भाषा अगर अप्रामाणिक हो गई और भाषा से मनुष्य का विश्वास अगर उठा लो हमारी स्थिति जंगल में रहने वाले जानवरों से भी बद्तर होगी। इसलिए भाषा की प्रामाणिकता और पवित्रता को बचाए रखना भी कविता का एक काम है जो रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में बखूबी किया है।

रघुवीर सहाय ने उस दौर में कविता लिखनी शुरू की थी जब हिंदी कविता अहम् केन्द्रित होने लगी थी और लघुता का चित्रण करने के बावजूद, उसका सरोकार उस आम आदमी से टूट गया था जिसकी जिंदगी को परिवेश असुरक्षित बना रहा था। रघुवीर सहाय ने साधारण जन की रोजमर्रा की जिंदगी को साधारण भाषा में कहना शुरु किया। "हिंदी में कई कवि इस भ्रम में प्रसन्न रहते हैं कि विषय जितना महान होगा, कविता भी उतनी महत्वपूर्ण होगी। रघुवीर सहाय ऐसे कवि नहीं हैं। वे समाज और व्यक्ति के जीवन की छोटी–सी–छोटी बातों, घटनाओं स्थितियों और समस्याओं के बीच भूली–भटकी हुई जिंदगी की सचाइयों की कविता लिखते है।"[20] यथार्थ के बेमानी प्रयोग पर उन्होंने एतराज किया। रघुवीर सहाय की कविता अखबार के निकट पहुंच जाती है, लेकिन अखबारी न होकर उसका रूप सृजनात्मक रहता है। कविता में जिस सपाटबयानी को निकृष्ट माना जाता था, उसे उन्होंन युग का काव्यादर्श बना दिया।

रघुवीर सहाय की कविता इसलिए जरूरी है ताकि आदमी बने रहे हम, हमारी भाषा प्रामाणिक बनी रहे और सुख का जनतंत्रीकरण हो। जब तक ऐसा नहीं होगा रघुवीर सहाय आएंगे और कहेंगे– "मैं जानता हूँ कि मुझे अपनी कविताओं और नाटकों में क्या कहना है। गुलामी और गरीबी, युद्ध और बेकारी के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। गरीबी और गुलामी, युद्ध और बेकारी लेखक के दुश्मन हैं। उनसे ऐसा ही व्यवहार कीजिए जैसा दुश्मन, दुश्मन के साथ करता है।"[21]

संदर्भ–सूची :–

1. पांडेय, मैनेजर. संकलित निबंध. दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2011, पृ०179–180।
2. साहु, अमिय कुमार. रघुवीर सहाय और श्रीकांत वर्मा की कविता. संजय प्रकाशन, संस्करण 2005, पृ०3।
3. वहीं, ५०।
4. अज्ञेय (संपा.) दूसरा सप्तक. दिली, प्रगति प्रकाशन, वर्ष 1951, पृ० 139।
5. शर्मा, सुरेश (संपा.). प्रतिनिधि कविताएँ 'रघुवीर सहाय'. दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2009, पृ० 46।
6. पूर्वग्रह, अंक : 102, पृ० 89।
7. शर्मा, सुरेश (संपा.). प्रतिनिधि कविताएँ 'रघुवीर सहाय'. दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2009, पृ० 51।
8. पांडेय, मैनेजर. संकलित निबंध. दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2011, पृ०183–184।
9. नवल, नंदकिशोर. कविता के आर–पार. दिल्ली, स्वराज प्रकाशन, 2003, पृ० 206।
10. श्रीवास्तव, परमानन्द. कविता का अर्थात्. दिल्ली, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2008, पृ०127।
11. शर्मा, सुरेश. (संपा.) रघुवीर सहाय रचनावली –1. दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण दृ 2000, पृ० 17।
12. पांडेय, मैनेजर. संकलित निबंध. दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2011, पृ०173।
13. नवल, नंदकिशोर. आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास. दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण–2012. पुस्तक के निवेदन से।
14. शर्मा, सुरेश. (संपा.) रघुवीर सहाय रचनावली –1. दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण दृ 2000, पृ० 156।
15. वाजपेयी, अशोक. कवि कह गया. दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, वर्ष 2000, पृ० 101।
16. सहाय, रघुवीर. आत्महत्या के विरुद्ध. दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2009, पृष्ठ 78–79।
17. नवल, नंदकिशोर. कविता के आर–पार. दिल्ली, स्वराज प्रकाशन, 2003, पृ० 203।
18. पांडेय, मैनेजर. संकलित निबंध. दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2011, पृ०176।
19. वही, 176–177।
20. वही, 180।
21. सहाय, रघुवीर. सीढ़ियों पर धूप में. दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृ० 220।

'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी' का सांस्कृतिक दृष्टिकोण एवं भाषिक औचित्य

किरन असवाल*
डॉ. अजीत सिंह तोमर**

शोध सारांश :– आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी आधुनिक हिंदी साहित्य के उन युग प्रवर्तक निर्माताओं में अग्रगण्य हैं, जिन्होंने न केवल भाषा और साहित्य का परिष्कार किया, अपितु उन्हें सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक पुनरुत्थान एवं नैतिक उत्तरदायित्व के सशक्त माध्यम में परिणत किया। द्विवेदी जी ने भाषा को भावों के संप्रेषण हेतु अर्थगर्भित तक सीमित न रखकर उसे नैतिक–क्रांति, सामाजिक संस्कार तथा राष्ट्र–निर्माण की संकल्पना के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनके साहित्यिक संपादन कौशल में भाषा की स्पष्टता, शुद्धता एवं उद्देश्यपरकता विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने साहित्य को जीवन–साधना, आत्मशोधन एवं नैतिक अनुशासन का संवाहक बनाया। सरस्वती संपादक के रूप में उन्होंने हिंदी को लोकमानस की अभिव्यक्ति की सशक्त संवाहिका के रूप में प्रतिष्ठित किया तथा नवोदित साहित्यकारों को भाषिक–शुद्धता, संप्रेषणीयता एवं साहित्यिक मर्यादा का सदैव मार्गदर्शन प्रदान किया। उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण भारतीय परंपरा से अनुप्राणित एवं उदात्त मूल्यों से समन्वित है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने नारी–शिक्षा, सामाजिक सुधार, स्वदेशी चेतना तथा नैतिक जीवन–मूल्यों को साहित्य के अनिवार्य अंग के रूप में प्रतिपादित किया। उनका समग्र दृष्टिकोण हिंदी साहित्य को केवल भाव–विलास अथवा मनोरंजन का साधन न मानकर, उसे सामाजिक उत्तरदायित्व एवं सांस्कृतिक जागरण की सार्थक भूमि पर प्रतिष्ठित करता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, जब भाषिक विमर्श दिशाहीनता की ओर उन्मुख होता हुआ प्रतीत हो रहा है, तब आचार्य द्विवेदी की भाषिक औचित्य–दृष्टि एवं विचारशील दृष्टिकोण अनुकरणीय आदर्श के रूप में स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आते हैं।

मूल शब्द :– भाषिक औचित्य, सांस्कृतिक दृष्टिकोण, सामाजिक उद्देश्य, नवजागरण, भाषा और संस्कृति, विचारधारा, नैतिक मूल्य, बौद्धिक उत्तरदायित्व, औचित्य–दृष्टि।

हिंदी भाषा और साहित्य के इतिहास में बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक कालखंड ने जिस साहित्यिक चेतना, भाषिक अनुशासन और सामाजिक जागरण का समवेत रूप प्रस्तुत किया, उसका मूलाधार जिन महान साहित्यसेवियों में निहित है, उनमें आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का विशिष्ट स्थान और आकांक्षित भूमिका रही है। उन्होंने हिंदी गद्य को केवल अभिव्यक्ति का माध्यम न मानते हुए उसे बौद्धिक अनुशासन, सामाजिक उत्तरदायित्व, विचारोन्मुख दिशा और सांस्कृतिक मूल्यबोध का दिग्दर्शक रूप प्रदान किया।

उनका गद्य केवल एक साहित्यिक नवचेतना का संवाहक नहीं, अपितु भाषा की शुद्धता, अनुशासन एवं सुबोधता के रूप में महत्त्वपूर्ण है। आचार्य द्विवेदी की संपादकीय दृष्टि, लेखन–कला एवं भाषिक–सजग दृष्टिकोण उन्हें उस कालखण्ड के गंभीर मर्मज्ञ चिंतक के रूप में प्रतिष्ठित करती है। भाषिक स्तर पर उन्होंने न केवल अनावश्यक आडंबर को स्थान दिया और न ही अति अलंकारिक ललितता को स्वीकार किया। उनके कृतित्व में विषय की गंभीरता और अनुशासन की भाषा का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है, जहाँ शब्द–विन्यास, वाक्य–गठन एवं शैली–संरचना में औचित्य का निर्वाह न केवल कलात्मक है, अपितु वैचारिक दृष्टि से भी संतुलित प्रतीत होता है।

आचार्य द्विवेदी की सांस्कृतिक संवेदना हिंदी साहित्य को राष्ट्रीय विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में प्रतिष्ठित करती है। उन्होंने सामाजिक प्रश्नों, पारिवारिक संरचना, नारी–शिक्षा, नैतिक जीवन–मूल्य तथा भारतीय

***शोधार्थी, हिंदी विभाग, गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार (उत्तराखण्ड)**
****शोध निर्देशक, हिंदी विभाग, गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार (उत्तराखण्ड)**

परंपरा की मूल प्रवृत्तियों को न केवल समाहित किया, अपितु उन्हें भाषिक सजगता, सांस्कृतिक सुसंवेदना और साहित्यिक सृजनता के साथ औचित्यबद्ध भी किया।

यह शोध–पत्र आचार्य द्विवेदी की भाषिक औचित्य–दृष्टि एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें उनके रचनात्मक अवदान के माध्यम से उस विचार–पद्धति को उद्घाटित किया गया है, जो वर्तमान में भी हिंदी साहित्य की वैचारिक दृष्टि निर्धारण में सहायक सिद्ध हो सकती है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का भाषिक औचित्य :– आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य के युगप्रर्वतक शिल्पी थे, जिन्होंने न केवल भाषा का परिष्कार किया, अपितु उसे राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का सशक्त माध्यम भी बनाया। उनका भाषिक दृष्टिकोण व्याकरण या शैली तक सीमित नहीं था, वरन् वह साहित्यिक औचित्य पर आधारित था, जिसमें भाषा को प्रसंग, भाव और उद्देश्य के अनुरूप ढालने की क्षमता अपेक्षित थी।

आचार्य द्विवेदी ने भाषा को केवल विचार–प्रदर्शन का माध्यम नहीं माना, बल्कि उसे सांस्कृतिक जागरण, सामाजिक नवोन्मेष और राष्ट्रीय चेतना के प्रसार का सशक्त उपकरण भी स्वीकार किया। 'सरस्वती' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका के संपादन के माध्यम से उन्होंने लेखकों, निबंधकारों और कवियों को भाषिक औचित्य, व्याकरण–शुद्धता, शैलीगत अनुशासन तथा भावों की स्पष्टता के प्रति सतत जागरूक किया। उनका स्पष्ट निर्देश था कि रचनाकार भाषा–प्रयोग में प्रसंगानुकूलता, अर्थगम्यता और सुसंरचना को प्राथमिकता दें। उनके अनुसार भाषा का कार्य केवल सौंदर्य प्रदर्शन नहीं, बल्कि समाजोपयोगी संवाद की स्थापना भी है। उन्होंने व्यवहारिक भाषा और साहित्यिक भाषा के संतुलन को साधने का जो आग्रह किया, वह आज भी प्रासंगिक और प्रेरणादायक है।

इस संदर्भ में डॉ. लक्ष्मीनारायण सुंधाशु का कथन उल्लेखनीय है– "द्विवेदी जी ने भाषा–संबंधी एक नया प्रतिमान प्रस्तुत किया। भाव और भाषा, विषयवस्तु और उपादान, छन्द और रूप, गति और परंपरा की दृष्टि से साहित्य के क्षेत्र में अनेकमुखिता के कारण जो अव्यवस्था और अस्थिरता आई, उनके समग्र जीवन की तपस्या उसी को व्यवस्थित और सुचारू रूप देने में समर्पित हुई है।"[1]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी भाषा को जीवंत विचार–प्रवाह का सशक्त साधन मानते थे। उनका विचार था कि साहित्य की प्रत्येक विधा की अपनी विशिष्ट प्रकृति होती है, जिसके अनुरूप भाषा का चयन एवं विन्यास किया जाना चाहिए। कविता में जहाँ भावप्रवणता, कल्पनाशीलता एवं लयात्मकता की अपेक्षा की जाती है, वहीं गद्य में तथ्यात्मकता, स्पष्टता एवं संप्रेषणीयता को महत्व दिया जाता है। अतः आचार्य द्विवेदी भाषा की स्थूलता अथवा अलंकारप्रियता के नहीं, अपितु उसकी प्रसंगानुकूलता एवं सार्थकता के पक्षधर थे। उनके अनुसार भाषा का रूप, विषयवस्तु, भावभूमि, उद्देश्य तथा पाठक–वर्ग के अनुरूप परिवर्तित होता है – और यही उसकी जीवंतता का प्रमाण है। आचार्य द्विवेदी के नेतृत्व और युग दृष्टि को उद्घाटित करते हुए डॉ० मधु गौतम अपने प्राक्कथन में लिखती हैं– "हिन्दी भाषा तथा साहित्य के इतिहास में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का स्थान एक युग निर्माता के रूप में है। बीसवीं शती के प्रारम्भ में साहित्य में भाषागत अराजकता, विश्रृंखलन, अस्थिरता व्याप्त थी। ऐसे समय में हिन्दी साहित्य संसार में अवतरित होकर द्विवेदी जी ने हिन्दी भाषा में सुव्यवस्था, स्थिरता एवं एकरूपता लाकर साहित्यिक भाषा को एक समृद्ध रूप प्रदान किया।"[2]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने भाषिक चिंतन में 'औचित्य' को भाषा की सार्थकता एवं प्रभावशीलता का मूलाधार माना। उनके मतानुसार, साहित्यिक भाषा केवल शुद्धता तक सीमित नहीं होनी चाहिए अपितु वह प्रसंग, विधा एवं उद्देश्य के अनुरूप भी उपयुक्त होनी चाहिए। इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने शुद्ध, औचित्यपूर्ण तथा साहित्य–सम्मत भाषा के व्यवहार हेतु स्पष्ट, निर्देशात्मक सिद्धान्त भी प्रतिपादित किए, जिन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं में निरूपित किया जा सकता है–

- **शब्द चयन में प्रसंगानुकूलता –** भाषा में प्रयुक्त शब्द प्रसंग एवं विषयवस्तु के अनुसार उपयुक्त होने चाहिए।
- **वाक्य रचना में स्पष्टता और अर्थगर्भिता –** वाक्य विन्यास ऐसा हो जो विचारों को स्पष्ट एवं गरिमामय रूप से प्रस्तुत कर सके।
- **अनावश्यक अलंकरणों से विरति –** भाषा को असंगत, कृत्रिम एवं अनावश्यक अलंकारों से विरति रखनी चाहिए।
- **व्याकरणिक शुद्धता एवं शैली की सुसंगता –** भाषा व्याकरण के मानकों के अनुसार होनी चाहिए तथा उसमें एक विशिष्ट साहित्यिक शैली का अनुशासन होना चाहिए।

आचार्य द्विवेदी ने लेखकों का मार्गदर्शन करते हुए स्पष्ट रूप से यह मत अभिव्यक्त किया कि साहित्यिक भाषा न तो केवल संस्कृतनिष्ठ शब्दों से बोझिल होनी चाहिए और न ही अत्यधिक बोलचाल की अनौपचारिक भाषा से उसकी गरिमा को आघात पहुँचना चाहिए। उनके भाषिक सुधारों का प्रभाव निम्न रूपों में परिलक्षित होता है–

- हिन्दी गद्य लेखन में अभिव्यक्ति की स्पष्टता एवं विचारों की तार्किकता का सशक्त समावेश हुआ।
- लेखकों में भाषिक अनुशासन की भावना जाग्रत हुई।
- पाठकों के लिए साहित्य और अधिक बोधगम्य बना।

डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में, "द्विवेदी जी ने हिंदी गद्य को उसके अमूर्त, असंलग्न और स्वच्छंद रूप से निकाल कर एक अनुशासित, बौद्धिक और उद्देश्यपूर्ण रूप दिया।"[3]

द्विवेदी युगीन काव्य–चेतना एवं उसका भाषिक परिष्कार :– आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जिस युग का निर्माण किया, वह केवल भाषिक परिष्कार का काल नहीं, अपितु हिन्दी कविता के नवजागरण को आधारशिला देने वाला युग भी था। उन्होंने हिन्दी कविता को भावात्मक संवेगों एवं कलात्मक सौंदर्य के साथ–साथ भाषा की शुद्धता एवं शैली की समन्वित दिशा में भी विकसित किया। उनके इन प्रयासों से हिंदी कविता सामाजिक चेतना, राष्ट्रीय और भाषिक अनुशासन से सम्पन्न हुई। द्विवेदी युग का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक नैतिकता तथा जीवन–मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा करना था, साथ ही समाज में व्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों और कुरीतियों का उन्मूलनकर एक जागरूक, तार्किक एवं नैतिक दृष्टि–सम्पन्न समाज की स्थापना करना था। राष्ट्र हित एवं जनहित के लिए आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य को साधन बनाया। काव्य–चेतना तत्कालीन भारतीय समाज की आवश्यकताओं से अनुकूलित थी।

समकालीन लेखकों एवं कवियों को उचित मार्गदर्शन प्रदान करते हुए आचार्य द्विवेदी ने 'सरस्वती' के जुलाई 1901 ई० के अंक में 'दिशा–निर्देशक' लेख प्रकाशित किया– "कवियों को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज ही समझ सके और अर्थ को हृदयंगम कर सके। जो काव्य सर्वसाधारण की समझ के बाहर होता है, वह बहुत कम लोकमान्य होता है।"[4] यह कथन आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाषिक दृष्टि का स्पष्ट अद्घोष है, जिसमें उन्होंने काव्य की सम्प्रेषणीयता, सरलता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व को एक साथ प्रतिष्ठित किया। उनके अनुसार, काव्य केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति मात्र न होकर जनसामान्य के हृदय तक सीधे संवाद का सशक्त माध्यम होना चाहिए। अतः काव्य–भाषा में लाक्षणिकता होनी चाहिए, किन्तु उनमें न तो व्यक्तिगत जटिलता हो, न ही कृत्रिमता और न ही अनावश्यक ा बोझिलता। इसलिए उन्होंने अनुकूल भाषा में द्विवेदी युगीन काव्य की भाषा को परिष्कृत किया। उस काल की काव्य–भाषा प्रायः संस्कृतनिष्ठ एवं अव्यवस्थित शैली में होती थी। द्विवेदी जी ने उसका संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। उनका काव्य संबंधी भाषिक परिष्कार तीन स्तरों पर परिलक्षित होता है–

1. **शब्द चयन में अनुशासन** – तत्सम शब्दों का नियंत्रित प्रयोग, लोक प्रचलित शब्दों का संयमित उपयोग।
2. **वाक्य संरचना में स्पष्टता** – अनावश्यक जटिलतायुक्त शब्दों के प्रयोग से परहेज़, भाव की सहज अभिव्यक्ति।
3. **शैली में उद्देश्यपरकता** – कविता की शैली में प्रवाह, गेयता एवं भावानुकूलता।

आचार्य द्विवेदी द्वारा संपादित सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' एवं अन्य कवियों की रचनाएँ तत्कालीन काव्य–चेतना की प्रतीक बन गई। इन रचनाओं में आचार्य द्विवेदी का भाषिक संस्कार एवं औचित्यवादी दृष्टिकोण प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होता है। वे भाषिक अनुशासन और काव्य की सामाजिक भूमिका को 'कवि कर्त्तव्य' नामक लेख में इन शब्दों में परिभाषित करते हैं– "विषय के अनुकूल शब्द–स्थापना करनी चाहिए। कविता एक अपूर्व रसायन है। उसके रस की सिद्धि के लिए बड़ी सावधानी, बड़ी मनोयोगिता और बड़ी चतुराई आवश्यक होती है। रसायन सिद्ध करने में आँच के न्यूनाधिक होने से जैसे रस बिगड़ जाता है, वैसे ही यथोचित शब्दों का उपयोग न करने से काव्य रूपी रस भी बिगड़ जाता है। किसी–किसी स्थल पर विशेष रूक्षाक्षर वाले शब्द अच्छे लगते हैं, परंतु और सर्वत्र ललित और मधुर शब्दों का ही प्रयोग करना उचित है। शब्द चुनने में अक्षर–मैत्री का विशेष विचार रखना चाहिए।"[5] यह उद्धरण द्विवेदी जी की भाषिक दृष्टि और काव्य–दृष्टिकोण को भली–भाँति उजागर करता है। कविता में रस की सृष्टि तभी संभव है जब शब्द संयमित, सटीक और भावों के अनुकूल हो – यही द्विवेदी युगीन काव्य–दृष्टि का मूल है। उनके संपादन में प्रकाशित काव्य रचनाओं में यह भाषिक चेतना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का सांस्कृतिक दृष्टिकोण :– आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी न केवल साहित्यकार, संपादक एवं भाषा–शुद्धिकर्ता थे, बल्कि एक दूरदर्शी सांस्कृतिक चिंतक भी थे। उनका समग्र साहित्यिक योगदान एक गहन सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अनुप्राणित था, जो भारतीय परंपरा, नैतिक मूल्यों तथा राष्ट्रीय चेतना के समन्वय पर आधारित था।

उनके विचारों में संस्कृति का स्वरूप केवल धार्मिक आचार या परंपरा तक सीमित न होकर, नैतिक उन्नयन, सामाजिक सुधार, स्त्री–शिक्षा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, राष्ट्र–प्रेम एवं लोक–कल्याण जैसे व्यापक विषयों तक विस्तृत था। वे भारतीय संस्कृति को जीवन–मूल्यों के साथ वैज्ञानिक तथा जागरूक बनाने के पक्षधर थे। उनना मत था कि– "संस्कृति वह शक्ति है जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को संयम, मर्यादा और विवेक के साथ दिशा देती है।"[6] द्विवेदी जी के सांस्कृतिक दृष्टिकोण के प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं–

1. **नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा** – आचार्य द्विवेदी के लेखों और कविताओं में चरित्र, आत्मसंयम, ईमानदारी एवं दायित्वबोध जैसे मूल्यों के प्रवर्तन का प्रबल आग्रह दिखाई देता है।
2. **स्त्री शिक्षा और जागरण** – द्विवेदी जी ने स्त्री को समाज का मेरुदण्ड मानते हुए उसके शिक्षित, सशक्त एवं स्वाभिमानी होने की आवश्यकता पर विशेष बल दिया। सरस्वती पत्रिका में उन्होंने नारी विषयक अनेक लेख प्रकाशित किए।
3. **धार्मिक सहिष्णुता** – आचार्य द्विवेदी धार्मिक कट्टरता के घोर विरोधी एवं सभी पंथों में समन्वय की भावना के पक्षधर थे। उनका यह विचार आधुनिक भारतीय धर्मनिरपेक्षता की पूर्वपीठिका से सम्बन्धित है।
4. **राष्ट्रबोध और आत्मगौरव** – आचार्य द्विवेदी ने हिंदी भाषा को भारतीय संस्कृति की जीवंत वाहिका मानते हुए, उसे राष्ट्रीय चेतना के जागरण का सशक्त माध्यम बनाया। उनके अनुसार हिंदी केवल संपर्क की भाषा नहीं अपितु भारतवर्ष की सांस्कृतिक आत्मा की अभिव्यक्ति है। उनका विचार था कि भारतीय संस्कृति की आत्मा को सुरक्षित रखते हुए उसमें सुधार एवं नवाचार किया जाना चाहिए।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सांस्कृतिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हुए डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं– "द्विवेदी जी भारतीयता को पश्चिमी दृष्टिकोण से देखने के विरुद्ध थे। उनका आग्रह था कि भारतीय संस्कृति की पहचान उसकी आत्मा से की जानी चाहिए, न कि बाह्य रूप से।"[7] आचार्य द्विवेदी के निबंधों में भारतीय समाज की विभिन्न समस्याओं का संक्षिप्त परंतु गहन विश्लेषण दृष्टिगोचर होता है। वे सामाजिक कुरीतियों के कारणों एवं उनके समाधान के लिए नैतिक तथा शैक्षिक विकास को प्रमुख आधार मानते हैं। उनकी प्रसिद्ध काव्यकृति 'सुंतपंचाशिका' जो 8 जनवरी 1900 ई० को 'भारत मित्र' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी उसमें उन्होंने कठोर व्रतों, आडम्बरपूर्ण अनुष्ठानों एवं धन–लोललुप पंडितों के स्वार्थपरायणता से ग्रसित दिग्भ्रमित नारी की अंतरवेदना को इस प्रकार निरूपित किया है–

''मैं और बहुत व्रत किए अनेक;

उपवास न जानहुं धौ कितके।
सुरध्यान धरो; बहु करो दान;
सनमाने भूसुर, बुध महान।।"
.....
"बरसों संतान–गोपाल मंत्र जप भयो,
बाधाएं विविध यंत्र।
हरिवंश पुराणहु बार सात, उन सुन्यो;
न तउ कँछु कहूं दिखाता।"[8]

निष्कर्ष :– आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का भाषिक अवदान केवल व्याकरण शुद्धता या शैलीगत तक सीमित नहीं था, अपितु उन्होंने हिंदी साहित्य को एक सशक्त सांस्कृतिक, बौद्धिक एवं नैतिक विमर्श का वहन करने वाला माध्यम भी बनाया। द्विवेदी जी ने हिंदी भाषा को न केवल औपचारिक अनुशासन और व्याकरणिक मर्यादा प्रदान की, बल्कि उसे आधुनिक चिंतन, राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक मूल्यों के संवाहक रूप में प्रतिष्ठित किया। उनका भाषिक औचित्य केवल भाषा विन्यास तक सीमित नहीं था, वह अभिव्यक्ति की संदर्भानुकूल प्रयोगशीलता एवं विचारों के प्रभावी संप्रेषण का अनुशासित विधान भी था। उन्होंने भाषा को किसी रूढ़ परंपरा का अनुगामी न बनाकर, उसे भारतीय मनीषा, नैतिक उत्तरदायित्व एवं जनसरोकारों से अनुप्राणित किया।

वर्तमान समय में जब भाषा उपभोक्तावाद की आकांक्षाओं के बंधन में जकड़ी हुई प्रतीत होती है, तब आचार्य द्विवेदी की भाषिक दृष्टि हमें स्मरण कराती है कि भाषा की सार्थकता उसकी शुद्धता, संरचना या आडंबर में न होकर वैचारिक प्रखरता एवं सांस्कृतिक संलग्नता में निहित है। अतः उनका भाषिक योगदान किसी कालखंड–विशेष की उपलब्धि नहीं, अपितु एक चिरंतन सांस्कृतिक दृष्टि–संपन्नता का प्रतीक है, जो हिंदी साहित्य को विमर्शशील एवं मूल्याभिमुख बनाता है।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु, हिन्दी–साहित्य का वृहत् इतिहास (भाग : 13), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1965 ई०, पृष्ठ 20।
2. डॉ. मधु गौतम, हिन्दी भाषा और महावीर प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, प्रथम संस्करण : 2020, पृष्ठ 7।
3. रामविलास शर्मा, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977, पृष्ठ 112।
4. महावीर प्रसाद द्विवेदी, कवि–कर्तव्य, सरस्वती, अंक : जुलाई 1901, भारतीय नागरी प्रचारिणी सभा, प्रयाग, पृष्ठ 15।
5. भारत यायावर (संपा०), महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली (खण्ड : दो), प्रथम संस्करण : 1995, प्रकाशक : किताबघर, नई दिल्ली, पृष्ठ 47।
6. महावीर प्रसाद द्विवेदी, साहित्य–चर्चा, भारतीय भवन, प्रयागराज, 1918, पृष्ठ 34।
7. रामविलास शर्मा, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी जाति की चेतना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1994, पृष्ठ 112।
8. भारत यायावर (संपा०), महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली (खण्ड : 13), प्रथम संस्करण : 1995, प्रकाशक : किताबघर, नई दिल्ली, पृष्ठ 801।

अनूप वशिष्ठ की ग़ज़लों का भाषाई वैशिष्ट्य

शैलेन्द्र गुप्ता*

साहित्य में भाव एवं शिल्प पक्ष दोनों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। किसी रचना की महानता इन दोनों पक्षों पर टिकी होती है। भावाभिव्यक्ति के लिए लेखक को भाषा की समझ होना अत्यन्त जरूरी है। ग़ज़ल की भाषा मुहावरों, प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से अर्थों के विस्तृत संसार को उद्घाटित करती है। शब्दमैत्री, पदबंधों की कसावट और प्रवाहमयता ग़ज़ल की भाषा को विशिष्ट बनाते हैं। कौन से भाव के लिए किस प्रकार की भाषा का चपन उपयुक्त रहेगा। यह समझदारी जिस साहित्यकार में जितनी अधिक होती है वह उतना ही बड़ा साहित्यकार होता है साथ ही उसका रचा हुआ भी अन्य किसी दूसरे की अपेक्षा ख़ास और विशिष्ट होता है। इस नजरिए से जब हम समकालीन ग़ज़लों की दुनिया को देखते हैं तो पाते हैं कि समकालीन ग़ज़लों की दुनिया में अनूप वशिष्ठ भी एक ऐसे ही ग़ज़लकार हैं जिनको इस बात की बखूबी परख है कि किस भाव के लिए किस प्रकार की भाषा जरूरी है। भाषा के सम्बंध में जरूरी और गैरजरूरी के फ़र्क को अनूप वशिष्ठ भली–भाँति जानते हैं। 'परंपरा और व्यक्तिगत प्रतिभा' नामक लेख में पाश्चात्य आलोचक टी एस एलियट ने कहा कि लेखक को परंपरा का ज्ञान होना चाहिए। अनूप वशिष्ठ के बारे में यह बात कही जा सकती है कि उनको ग़ज़ल परंपरा की मार्मिक समझ है और उसको उन्होंने अपनाया है पर वह परंपरा उनके लिए बोझ नहीं बनी। इस संदर्भ में 'अलाव' पत्रिका' में प्रकाशित आलेख– 'आलोचना की समस्याएँ और कुछ गजलकार' में पंकज गौतम ने लिखा है– "परंपरा की गहरी समझ और उसे आत्मसात कर गजल के रचना–संसार में प्रवेश करने वालों में वशिष्ठ अनूप का नाम महत्वपूर्ण है।"[1] स्वयं को तुलसी, जायसी, रसखान आदि का वारिस कहते हुए वे इसी परम्परा से जुड़े होने और उसके ज्ञान होने का प्रमाण 'छन्द तेरी हँसी का' नामक ग़ज़ल संग्रह की एक ग़ज़ल के जरिए देते हैं:

"तुलसी के, जायसी के, रसखान के वारिस हैं,
कविता में हम कबीर के ऐलान के वारिस हैं।
हम सीकरी के आगे माथा नहीं झुकाते,
कुम्भन की फ़कीरी के, अभिमान के वारिस हैं।"[2]

अनूप वशिष्ठ ने परंपरा से बहुत कुछ सीखा है। उससे बहुत कुछ आत्मसात किया है। इस सीखने और आत्मसात करने की प्रकिया ने उन्हें एक तरफ दुष्यंत की परंपरा से जोड़े रखा तो दूसरी तरफ उन्हें अपने समकालीनों में अलग और विशिष्ट बनाए रखा। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बलराज पाण्डेय ने 'रोशनी की कोपलें' नामक ग़ज़ल संग्रह के आरंभ में 6 पृष्ठीय समालोचनात्मक टिप्पणी लिखी है जिसमें बलराज पाण्डेय लिखते हैं कि "अपनी रचनात्मक क्षमता के बल पर वशिष्ठ अनूप ने हिन्दी गजल के क्षेत्र में एक विशिष्ट पहचान बनाई हैं। हम सभी जानते हैं कि दुष्यंत कुमार ने हिन्दी गजल को नयी भाषा दी, नया तेवर दिया, उसे नया आयाम दिया। दुष्यंत कुमार की उस परंपरा को जिन लोगों ने विकसित किया, उनमें वशिष्ठ अनूप का नाम अग्रणी है। वे अपनी जमीन से जुड़े हुए रचनाकार हैं।"[3]

परंपरा की समझ और जमीन से जुड़े होने के कारण अनूप वशिष्ठ की भाषिक संरचना दूर देश की प्रतीत नहीं होती है। भाषा को लेकर उनका मानना है कि आदमी जब गैर की भाषा में अपने को व्यक्त करता है तो हकलाता है। वह स्वयं को अपनी भाषा में बेहतरीन ढंग से अभिव्यक्त कर सकता है। यही बात वे गजल की भाषा के संदर्भ में भी मानते हैं। वे कहते हैं कि अपनी भाषा घी शक्कर की तरह होती है अर्थात् उसमें मिठास भी होती है और ताकत भी।

"अपनी भाषा घी शक्कर सी होती है
गैर की भाषा बोलेगा हकलाएगा।"[4]

***शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

अनूप वशिष्ठ शब्दचयन में कोई परहेज़ नहीं करते हैं। उनकी शब्द सम्पदा व्यापक एवं भावानुकाल है। उनके किसी भी भाषा के शब्दों के प्रति उनका कोई पूर्वाग्रह नहीं है। अनूप जी अपनी गजलों में देशज, विदेशज, तद्भव, तत्सम आदि सभी प्रकार के शब्दों का रचनात्मक प्रयोग करते हैं। डॉ रामकुमार सिंह लिखते हैं कि "शब्द चयन का जैसा वैविध्य वशिष्ठ जी की गजलों में दिखाई पड़ता है वह अन्यत्र कम ही है।" अपनी गजलों में वे अंग्रेजी भाषा के शब्दों का चयन इस प्रकार करते हैं कि उससे गजल की धार और चमक बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए

"जहाँ बिजली नहीं, कापी किताबें भी नहीं मिलती
हमारे रहनुमा कम्प्यूटरों की बात करते हैं।"[5]

प्रस्तुत उदाहरण में कॉपी, कंप्यूटर अंग्रेजी भाषा के शब्द हैं इसी प्रकार टेलीफोन, मोबाइल, ट्रैक्टरजैसे शब्द भी उनके गजलो में प्रयोग हुए हैं और भी अनेक शब्दों का प्रयोग अनूप जी ने अपनी गजलों में किया है।

अक्सर कहा जाता रहा है और अभी भी कुछ लोग को भ्रम है कि गजल उर्दू प्रधान शब्दावली में होती हैं। लेकिन दुष्यंत के बाद की जो परंपरा हिंदी गजल की दिखाई देती है उसमें यह भ्रम भ्रामक ही साबित होगा क्योंकि उसमें ऐसा कुछ है नहीं। अनूप वशिष्ठ जी अपनी गजलों के लिए उर्दू की जिस शब्दावली का प्रयोग करते हैं वह ऐसी शब्दावली जो आम जनमानस का खूब प्रयोग की जाती है और इस शब्दावली के कारण उनकी गजलों की पहुंच आम जानता में और बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए

"कल गुफ्तगू थी हुस्न और इश्क़ की
भूखी जमात की पुकार आज है गज़ल
....
जुल्म जो सदियों से दरिंदो ने किया है
उस जुल्म के खिलाफ़ अब ऐतराज है गज़ल।"[6]

उपयुक्त पंक्तियों में गुफ्तगू, हुस्न, इश्क़, जुल्म आदि सब उर्दू के शब्द है पर फिर भी गजल के अर्थ को समझने में कोई शब्द बाधा नहीं बन रहा है। इन शब्दों के अलावा वफा, ईमानदार, कोशिश, किस्मत, इज्ज़त, हसीन, कुदरत, आदि लोकजनमानस के उर्दू शब्द हैं।

अनूप जी की अपनी मातृभाषा भोजपुरी है और उनकी कार्यशाला काशी है। काशी का भाषाई फक्कड़पन और भोजपुरी की मिठास से भरे शब्द भी उनकी गजलों में हमें प्रयोग होते हुए दिखाई देते हैं। ये दोनों चीजे उनकी गजल की भाषा को बहुत उनके समय के दूसरी गजलों से भिन्न और उम्दा बनाती हैं। भोजपुरी माटी के शब्द उनकी गजलों में चार चांद लग रहे होते हैं। आलोचक बलभद्र इस सन्दर्भ में लिखते हैं कि "भोजपुरी भाषा से उनका जुड़ाव गज़लों को वह देसीयता प्रदान करता है जो अन्यत्र कम ही दिखाई पड़ता है।"[7]

खेल खिलौने दूध–भात का आंगन कहां गया?
सुबह शाम की धमा–चौकड़ी, गोली, गुल्ली–डंडा कहां गया
डाल डाल पर ओला– पाती मधुबन कहां गया?

इसके अलावा तत्सम भाषा के शब्दों का प्रयोग अनूप जी अपनी गजलों में खुलकर करते हैं। यह प्रयोग अपना पांडित्य प्रदर्शन के लिए वे नहीं करते हैं। बल्कि इस प्रयोग जो भाषा निर्मित होती है वह भी शानदार होती है।एक गजल के एक शेर नमूने के रूप में आप देख सकते हैं

स्वाभिमान से जो जीते थे, आज भिखारी जैसे हैं,
संकट में भी क्रूर सियासत, थू ढोंगी हत्यारों पर।

अनूप वशिष्ठ भाषा की एक विशेषता होती है उसकी बिंबात्मकत्ता। गजलों पर भी यह बात लागू होती है। अनूप जी अपनी भाषा में इस शैली का प्रयोग बहुत ही शानदार तरीके से करते हैं। और उनके गजलों को पढ़ते वक्त ऐसा लगता है उसके चित्र आखों पर बन रहे हैं। उदाहरण के लिए

"सर पर भारी बोझ लिये बैदेही पैदल भटक रही,
टूटी चप्पल, दूर है मंज़िल, चलना है तलवारों पर।"

इस गजल में हम अपनी आंखों के सामने दृश्य को बनते हुए देख पा रहे हैं। इस प्रकार के दृश्य उनकी गजलों में भरे हुए हैं। अनूप जी की भाषा की विशेषता यह भी है कि वे गजलों के लिए कहावत और मुहावरों का प्रयोग करते हैं। जिससे उसमें जान आ जाती है। वह एकदम लोग से जुड़ जाती है और उसका जुड़ाव उनकी गजलों को लोकप्रियता प्रदान करता है और उसका प्रभाव भी कहीं ज्यादा होगा।

शहर के होटलों में रोटियों के दाम जब पढ़ता,
मुझे ममता–भरी वो घर की थाली याद आती है।

भाषा में मिथक का प्रयोग जब अनूप जी करते है तब वह कुछ गहरा और विशेष नज़र आता है। इस संदर्भ में अनूप जी और ज्यादा विशिष्ट है क्योंकि वे जिस मिथक को लाते है उससे भाव का शानदार प्रदर्शन होता है। द्रौपदी जैसे मिथक का आज नारी शक्ति को जोड़ने के लिए अचूक उदाहरण हैं.

ज़रूरी हैं कि द्रौपदियाँ स्वयं बाँधे कमर क्योंकि
दुशासन छोड़ दे तो कृष्ण पट ले भाग जायेंगे।

अनूप जी युगानुरूप भाषा का प्रयोग करते हैं। वे उनकी भाषा भाव पर हावी नहीं होती है। वह केवल उसकी वर्धक बनकर ही आती है। क्योंकि अपनी भाषा में जिस प्रकार भी कहावतों, मुहावरों, मिथक, बिंबो और शब्द चयन का प्रयोग करते हैं वह अपने आप में अनुपम और अद्वितीय है।इस प्रकार निष्कर्ष रूप में अगर हम कहें तो अनूप जी की भाषा बड़ी ही विशिष्ट और अदिति है उसमें वह सभी गुण विद्यमान है जो ग़ज़ल की भाषा में होनी चाहिए यह होते हैं। समकालीन गजलकारों की भाषा के सामने अनूप जी की क्ष भाषा उन्नीस नहीं बीस ही होगी। यह कहने में यह कहने में अतिश्योक्ति नहीं होगी कि आने वाली पीढ़ी के लिए अनूप जी की क भाषा पथप्रदर्शक का काम करेगी और हमारी नई पीढ़ी को एक गति दिशा प्रदान करेगी जिससे हिंदी गजल परंपरा सशक्त और संपन्न बनेगी।

संदर्भ सूची :–

1. रामकुमार कृषक, अलाव,(सं–रामकुमार कृषक), ग़ज़ल आलोचना विशेषांक,मई–अगस्त, 2015, पृ–143।
2. https://padhegaindia.in/product/chhand-teri-hansi-ka/
3. अनूप वशिष्ठ, रोशनी की कोपलें (गजल–संग्रह), उद्भावना प्रकाशन पृष्ठ संख्या 2।
4. https://c.pomento.in/poetry/%E0%A4%B5%E0%A4%B6%E0%A4%BF%E0%A4%B7%E0%A5%8D%E0%A4%A0-%E0%A4%85%E0%A4%A8%E0%A5%82%E0%A4%AA-%E0%A4%95%E0%A5%80-%E0%A4%B0%E0%A4%9A%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%8F%E0%A4%81/
5. मसाले फिर जालने का समय है, अनूप वशिष्ठ पृ. 22।
6. बंजारे नयन, अनूप वशिष्ठ पृष्ठ 1 उद्भावना प्रकाशन।
7. https://pahleebar.blogspot.com/2020/05/blog-post_18.html?m=1.

❧★☙

भारतीय संस्कृति में गोदान की प्रासंगिकता

डॉ. पराक्रम सिंह*

आज जब देश को देखते हैं तो ग्रामीण समाज और उनमें चली आती हुई संस्कृति, परम्परा के साथ कुरीतियों, समस्याओं को देखा जाना महत्त्वपूर्ण हैं। इसी क्रम में वाराणसी के निकट लमही में जन्में मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखी हुई गोदान (1936) की ओर हमारा ध्यान चला जाता है। भारतीय हिंदू संस्कृति में गोदान का क्या महत्व है। गोदान हिंदू धर्माचारियों एक का शब्द है। गोदान की कथा को मुख्य रूप से किसान की जीवन गाथा, किसान के शहरी संर्पक की गाथा तथा किसान और उसके ग्रम्य जीवन एवं नागर पात्रों के जीवन की गाथा कही जा सकती है।कृषि प्रधान देश में गाय का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व रहा है गो के माध्यम से मृत व्यक्ति या मरणासंन व्यक्ति आसानी से जीवन मरण के बंधन से मुक्त इस असाध्य वैतरणी नदी को पार करके स्वर्ग लोक पहुॅंच जानें की चाह रखता है। यह लगभग प्रत्येक हिंदू की साध रहती है। यह हिंदू समाज का कर्मकाण्डी रूप इस समय जो कि अमीर, गरीब, ऊॅंच–नीच कुछ भी नहीं देखता। इन सब विधान के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति अपने परलोक को सुखी बनाना चाहता है। 'गोदान' में होरी के माध्यम से इसी कर्मकाण्डी रूप को मुंशी प्रेमचन्द द्वारा चिव्रित किया गया है। पूरा जीवन गाय पाने की साध संजोए रखे होरी जब साठ साल से कम उम्र में मर जाता है तो उसके मरणोपरान्त गाय के एवज में परिवार की एकमात्र संचित सम्पत्ति सवा रूपया होरी की पत्नी धनिया के द्वारा ब्राह्मण को यह कहकर दान कर देना– महाराज घर में न गाय है न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं यही उनका गोदान है। यह व्यंग और करूणा से एक आर्थिक शोषण, कर्मकाण्डी समाज का पूरा चित्र उभरकर सामने आ जाता है।जिसे शायद रामविलास शर्मा नें कुछ इस तरह कहा है –किसान को धीमी नदी का बहाव कहा है, जिसमें डूबनें के बाद आदमी की लाश बाहर आती है।

गोदान में भारत की संस्कृति, गॉव शहर और समाज सभी का चित्रण किया गया है। कृषि प्रधान इस देश में गाय को पालने की साध हर किसान की रहती है। गाय घर के दरवाजे की शोभा ही नहीं बल्कि वह उसका आर्थिक धन भी होती है वह दूध, ईधन के साथ बैल से ढुलाई, खेती करता है। गोदान का मुख्य नायक होरी है जो गाय की अभिलाषा रखता है और इसी अभिलाषा से होरी पर आने वाली विपत्तियों का सफर और गोदान की पटकथा समाज, परिवार, सरकारी तंत्र को उद्घाटित करती हुई गॉव एवं शहर, महानगर के चरित्रीय रूप एवं उनकी मनोदशाओं को उकेरती हुई धीरे–धीरे परत दर परत आगे बढ़ती जाती है। होरी पर आने वाली विपत्तियों पर होरी कहता है– कितना चाहता हूं किसी से एक पैसा कर्ज न लें लेकिन, हर तरह का कष्ट उठानें पर भी गला नहीं छूटता। उसक बैल का खुलना, उसके बेटे गोबर का झुनिया नाम की विधवा से सम्बन्ध होने से होरी को जाति से बाहर किया जाना। जिसके कारण शत प्रतिशत तीस मन अनाज का दण्ड लगाना, खेती बाड़ी का चौपट होना, किसान से मज़दूर बनना और जमींदार, साहूकार, पुलिस, पुरोहित सभी के द्वारा शोषित ठगा जाता होरी, पारिवारिक सामाजिक रूप से हारा होरी, धीरे–धीरे मृत्यु का आलिंगन करता चला जाता है।होरी एक जगह कहता है –खेती छोड़ दे, तो और करे क्या ? नौकरी कहीं मिलती है? उन पर मरजाद भी तो पालना भी पड़ता है खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं। वह अपना अन्त समय भॉप सा जाता है अपनी पत्नी धनिया से याचना भी करता है –'कहा सुना माफ करना धनिया अब जाता हूॅं' गाय की लालसा मन में ही रह गई।

प्रेमचन्द ने गोदान में तत्कालीन जिस सामाजिक परिवेश एवं उसमें व्याप्त समस्याओं का चित्रण किया है आज आजादी के अमृत महोत्सव मना लेने के बाद भी उसे कमोवेश ज्यों का त्यों ही पाते है।

***प्रधान संपादक के सहायक, हिंदी विश्वकोश परियोजना, केन्द्रीय हिंदी संसथान, बी–26 ए, शहीद जीत सिंह मार्ग, कुतुबसंस्थागत एरिया, नई दिल्ली –110016।**

किसान, मजदूर, महाजन, सामंतवाद, प्रशासन, उद्योगपति, जजमानी, रागद्वेष, धर्म भेद, ऊॅच–नीच, आने वाली कुरीतियों उसी प्रकार से आज भी हमारे सामने उपस्थित हैं। प्रेमचन्द ने उसी समय गोदान के माध्यम से इन समस्याओं को उकेरा ही नहीं बल्कि इसका निवारण भी किया। गोदान के माध्यम से उन्होंने एक गॉव की त्रासदी ही दिखाने की कोशिश नहीं की बल्कि भारत के लाखों गॉवों को एक साथ प्रतिबिम्बित किया। कल्पना के स्थान पर भोगे हुए अनुभूत को महत्व देने वाले यथार्थवादी कथाकार प्रेमचन्द ने गोदान में उस किसान की बात कहीं जो देश की रीढ़ हुआ करती थी जिसकी सोना उगलने वाली मिट्टी अब पथरीली ज़मीन बन गई है जो विकास के तेज कदम के अन्धी दौड़ में पीछे छूटता चला जा रहा। आजादी के बाद किसानों के लिए दिए गए – जय जवान, जय किसान और हरित क्रान्ति के नारे ने आज एक छ्दम रूप धारण कर लिया है। आज जब हम यह देखते हैं तो पाते है कि प्रेमचन्द ने तो कृषि संस्कृति के विनाश की रूपरेखा तो पहले ही खींच देते हैं। किसान बनाम मज़दूर पर भी प्रकाश डाला आज भी प्रकृति पर निर्भर एवं बाढ़,. सूखा और अकाल से जुझते हुए किसान दिहाड़ी पर मज़दूरी कर रहे हैं। गोबर के माध्यम से उन्होंने उस युवक का चित्रण किया है जो आर्थिक परेशानियों से बचने के लिए दूसरी बार शहर की ओर पलायन करता है तो होरी भावुक हो उठता लेकिन जरूरतें और मजबूरी उसे रोक नहीं सकी। गोबर को शहरी महॅगाई, बेरोजगारी, आवास की समस्या उसे हर क्षण प्रवासी होने का एहसास दिलाती रहती है। गोदान में प्रेमचंद धनिया के माध्यम से पंडित मातादीन को जातिगत अत्याचार के विरूद्ध आवाज खोलने पर भी मजबूर करते हैं– क्या जरा भी दम न लेने दोगे महराज। हम भी तो आदमी है, तुम्हारी मजदूरी करने से बैल नहीं हो गए। जर मूंड पर एक गठ्ठा लादकर लाओ तो मालूम हो। आज भी रिक्शा, मज़दूरी, रेहड़ी, रासायनिक कारखानों में नौकरी इनकी विडंबना बनी हुई है। आज के इस वैश्वीकरण ने सड़कों, बिजली, शिक्षा, स्वास्थ्य नें गॉवों का रूप थोड़ा बहुत बदला जरूर है लेकिन आर्थिक स्थिति और विकास की दर वैसे है। किसान से मज़दूर बना किसान आज भी यथार्थ है।

प्रेमचन्द ने सामाजिक सरोकारों को भी अपनी लेखनी में महत्त्वपूर्ण जगह दिया है। उन्होंने देश सेवा का राजनैतिक मुखौटा लगाकर अपनी महत्वाकांक्षाओं और स्वार्थों की सिद्धि में लगे चरित्र को बखूबी पहचाना की। वे कहते हैं–खन्ना की चीनी मिल कृषकों के सहयोग और शोषण के बिना अस्तित्व में ही नहीं आ सकती थी। यह किसान आज भी लूटने वाली महाजनी, जमींनदारी, पटवारी, पंच, पुलिस अधिकारी और मिल मालिक, सभ्यता, कर्ज की पूॅजीवादी अर्थनीति, उपनिवेशवादी राजनीति के पंजो में जकड़ा हुआ धीरे–धीरे अस्तित्व को खो देता है। प्रो.मेहता रायसाहब, अमरपाल को कहते हैं –यदि आप कृषकों के शुभेच्छु हैं तो कृषकों के साथ रियायत होनी चाहिए, काश्तकारों को बगैर नजरानें लिए पढ़े लिखें, बेगार बंद करें, लगान इजाफा को तिलांजलि दें, चरवार जमींन छोंड़ दें। नास्तिक मूल्यों के पोषक– ब्राह्मण के रूढ़िवादी विचारों पर हंसना और प्रहार करना, समाज के रूढ़ियों का विरोध, आधुनिक नारी पात्र मालती और मेहता के प्रेम प्रसंग से ऊपर मालती द्वारा की गई ग्रमीण सेवा दो बार से लगातार निर्वाचित रायसाहब तीसरी बार चुनाव में वोट खरीदनें जैसे उस निर्वाचन का विरोध करवाना, जिसका आधार केवल धन है, चुनाव प्रणाली, लोकतंत्र, सामंती संस्कृति, पूंजीवादी विकास, साम्राज्यवाद विस्तार, किसान मज़दूर की त्रासद स्थिति पर क्रान्तिकारी एवं प्रगतिशील विचार व्यक्त किया है।

प्रेमचन्द ने गोदान में जाति पाति का ऊॅंच–नीच का खोखलापन ही दिखाने की चेष्टा नहीं की बल्कि उसके लिए विद्रोह भी दिखाया और समाज के विचार को तार्किक ढंग से बदलने की भी चेष्टा की– सिलिया मातादीन के प्रेम प्रसंग में– सिलिया कन्या जात है, किसी न किसी के घर जाएगी ही उसे जो कोई रखे हमारा होकर रहे तुम हमें ब्राहमण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते है। यह बड़ी जाति की ओर किया गया प्रहार और छोटी जाति की वेदना तथा समाज परिर्वतन की ओर देता संकेत ही तो है। प्रेमचन्द अपने पात्र से कहवाते हैं–'उसके साथ सोवाओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पिओगे'। यही वर्गभेद अहंकार और दम्भ जो समाज में पैदा करता है इसे हमें तिलांजलि देना चाहिए। क्योंकि प्रेमचन्द गोदान में जाति, धर्म को अस्वीकार करते हुए मानवता को प्रधानता देते हैं। सामाजिक दृष्टि से अमान्य विधवा विवाह को सर्वमान्य बनाने की चेष्टा की। दहेज जैसी सामाजिक कुरीति का विरोध 'सोना' के माध्यम से कराया– दो तीन सौ कोई भारी रकम नहीं है और होरी महतो इतने में बिक न जाऐंगे, न तुम्हीं धनवान हो जाओगे, वह सब धन नाच तमासे में ही उड़ जाएगा। हॉ ऐसी बहु नहीं पाओगे। इस तरह दहेज जैसी कुरीतियों के बहिष्कार का संदेश प्रेमचन्द ने गोदान में पहले दे दिया था लेकिन र्दुभाग्य की हम उससे

छुटकारा नहीं पा सके इसकी आग आज भी बढ़ती ही जा रही हैं। आज भी आधुनिकता का दम्भ भरने वाला समाज दहेज के दानव से मुक्त नहीं हो पा रहा है। प्रेमचन्द ने गोदान के माध्यम से उस सामंती युवा वर्ग को भी दिखाया है जो सामंतवादी शान को ठुकराते हुए समय के साथ चलनें का प्रयास करते हुए दिखाई देते है जैसे राय साहब के बेटे राजा सूर्यप्रताप सिंह की बेटी के विवाह प्रस्ताव की अस्वीकृत करते हुए पिता की इच्छा के विरूद्ध शादी करना। राय साहब की बेटी मीनाक्षी द्वारा अपने सामंत पति को प्रताड़ित करना। प्रेमचन्द ने इन सारे प्रसंगों द्वारा पुरानी पीढ़ी के जीवन विचार मूल्यों तथा नवीन पीढ़ी के विचार मूल्यों को दिखाने की भर पूर कोशिश करतें हैं।

इस प्रकार प्रेमचन्द के समय के सामाजिक ढ़ाँचे में और आज के सामाजिक ढ़ाँचे में परिवर्तन तो आया है लेकिन कितना?, क्या आज का किसान गॉव के साहूकार, पटवारी के चंगुल से पूर्ण रूप से मुक्त हो पाया है? औद्योगिकरण की आड़ में आज की आम जनता के साथ पूंजीपतियों, राजनेताओं द्वारा क्या—क्या खिलवाड़ नहीं हो रहा है। जिसका एक ताजा उदाहरण हाल में देश में संपन्न लोकतांत्रिक चुनाव में, वादे, जातिगत, धर्मगत टिप्पणियॅा और उसके परिणाम सामनें आ रहें हैं। लगभग हर मॉग पर जगह—जगह होने वाले आन्दोलन मुख्य धारा सी हो चली हैं। गोदान में मिशन से व्यवसाय की ओर उन्मुख होती हुई पत्रकारिता क्या आज समाज का दोहन करती नहीं दिख रही है? ऐसे बहुत सारे विचारणीय विषय है जिसे हम गोदान में देखतें हैं। समय के साथ ऐसा लगता है कि इसमें पूरा भारत समाहित है। उसके सारे विषय प्रसंगानुकूल बन कर इस तरह हमारे सामने उपस्थित हो जाते है जैसे कि ये आज के ही विषय है लेकिन यह स्वतन्त्रता पूर्व का यथार्थ था जो अतीत से गुजरते आज और कल का युग—युगान्तर यथार्थ बनता जा रहा है। कृषि संस्कृति की अनेक विशेषता भूमिगौ—सेवा, व्यक्ति, परिवार, आस्था, धर्म, वर्ग—विशेष, बिरादरी और सामाजिक सरंचना को होरी के माध्यम से उसके व्यकितत्व को मूर्तमान करते हुए वर्तमान और भविष्य के एक समन्वय पर रख कर सामाजिक विसंगतियों के साथ महत्त्वाकांक्षा से भरे स्वप्न महल का निर्माण ही गोदान की र्वतमान प्रासंगिकता है।

संदर्भ ग्रंथ—सूची :—

1. मुंशी प्रेमचंद, गोदान, सरस्वती प्रेस इलाहबाद संस्करण 1960।
2. डॉ. कमल किशोर गोयनका, (संक) गो—दान, सस्ता साहित्य मंडल दिल्ली, सं 2001।
3. लमही पत्रिका, जून 2021 वाराणसी।
4. डॉ. कमल किशोर गोयनका, प्रेमचंद : अनछुए प्रसंग— मानसी प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2012।
5. विजयगुप्त (संपा) प्रेमचंद और प्रगतिशील लेखन, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहबाद, 1980।

नागार्जुन : कल और आज
(नागार्जुन की प्रमुख कविताएँ के संदर्भ में)

डॉ. वसीम आलम*

जनता मुझसे पूछ रही है, क्या बतलाऊं? / जनकवि हूं, मैं साफ कहूंगा क्यों हकलाऊं।

हिंदी साहित्य के अंतर्गत जब भी बाबा नागार्जुन पर चर्चा होती है तो उनके प्रगतिशील पक्ष के साथ ही साथ उनके जनवादी पक्ष को प्रमुख रूप से देखा जाता है। उनका यह पक्ष उनकी कविताओं में हमेशा वर्तमान रहा है। एक जनकवि के रूप में नागार्जुन ने सत्ता से बेखौफ होकर जन–साधारण का साथ दिया। जनकवि को परिभाषित करने के अनेकों आयाम हैं। एक जनकवि चाहे वह जिस युग का हो, वह किसी भी राजनीतिक विचारधारा से अलग रहता है तथा वह हमेशा जन सामान्य का पक्षधर होता है। उनके सुख– दुख को अपनी लेखनी द्वारा अभिव्यक्त करता है। साधारण जन उनकी लेखनी का प्राण तत्त्व है साथ ही उनकी सर्जनात्मकता के केंद्र एवं प्रेरणाश्रोत हैं। इस संदर्भ में नागार्जुन एक जनकवि की कसौटी पर खरे उतरते हैं। वे अपने कर्म एवं वचन से जनकवि हैं। अन्य की पीड़ा से पूरित नागार्जुन का मन पीड़ित मनुष्यता के लिए हमेशा समर्पित रहा है।

बाबा नागार्जुन की कविताओं को जब हम कल और आज के संदर्भ में देखते हैं तो यह ज्ञात होता है कि उनकी एवं उनकी कविताओं की प्रासंगिकता कल जितनी महत्वपूर्ण थी उतनी आज भी है, कह सकते हैं कि कहीं और अधिक। उनकी कविता में जन संवेदना का अलग पहलू सामने आता है। इसी संदर्भ में उनकी एक प्रसिद्ध कविता है जिसका शीर्षक है–" प्रतिबद्ध हूँ, संबद्ध हूँ, आबद्ध हूं"।

प्रस्तुत कविता में बाबा नागार्जुन ने अपनी प्रतिबद्धता समाज के उन लोगों के प्रति व्यक्त की है जो सत्ता द्वारा प्रताड़ित है, शोषित हैं। उस बहुजन समाज की प्रगति के प्रति प्रतिबद्ध हैं। प्रस्तुत कविता की कुछ पंक्तियां यहां उल्लेखित हैं–

"प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ–
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के, निमित्त
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ..
अविवेकी भीड़ की भेड़या– धसान के खिलाफ..
अंध–बधिर व्यक्तियों को सही राह बतलाने के लिए
अपने आप को भी व्यामोह से बारंबार उबारने की खातिर
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ"।

डॉ. अनिल पारीक का यह कहना सटीक है कि– "नागार्जुन एक प्रगतिशील साहित्यकार रहे हैं। वे केवल सामान्यजन की गरीबी, बेकारी, शोषण आदि का ही यथार्थ चित्रण नहीं करते, बल्कि ग्रामीणों के उत्थान और उनके आर्थिक विकास के पक्षधर भी रहे हैं"।[1] इन पंक्तियों को अगर हम ध्यानपूर्वक देखे तो स्पष्ट होता है कि कवि ने अपनी प्रतिबद्धता उन असंख्य लोगों के लिए व्यक्त की है जो हर स्तर पर पिछड़े हैं। वर्तमान समय में रचनाकार की प्रतिबद्धता कहीं न कहीं अवरुद्ध गई है। ऐसे में बाबा नागार्जुन और उनकी कविता प्रासंगिक हो उठती है। आज हर स्तर पर चाहे वह सामाजिक हो या आर्थिक अथवा चाहे राजनैतिक सभी स्तर पर जन सामान्य को उनके संवैधानिक अधिकारों से वंचित रखा जा रहा है। व्यासमणि त्रिपाठी लिखते हैं कि "उन्होंने पाने सुख–दुख को जनता में और जनता के सुख–दुख को अपने में देखा, भोगा और महसूस किया है।"[2] जनता के हमदर्द के नाम पर छलावा हो रहा है। ऐसी परिस्थिति में हमें एक ऐसे जनकवि की कमी खलती है। कवि के लिए कोई भी चीज अछूता नहीं होता है। एक जनकवि वह होता

***सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, त्रिवेणीदेवी भलोटिया कॉलेज, रानीगंज, पश्चिम बंगाल।**

है, जिसके लिए चल–अचल सभी चीजें सभी उसकी अपनी होती है। यह अपनापन इंसानियत के स्तर पर है। यही इंसानियत कवि को जनकवि बना देता है। जहां उसके प्रत्येक चिंतन, सोच–विचार में जनता तथा उससे जुड़े उनके हित सर्वपरि होते हैं। अपनी रचना के द्वारा रचनाकार समाज एवं अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करता है। डॉ अनिल पारीक के अनुसार "साहित्य के माध्यम से साहित्यकार अपनी एवं समाज की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार साहित्यकार की संवेदना ही साहित्य का रूप धरकर सामाजिक में संप्रेषित होती है। साहित्यकार का व्यक्तित्व इसलिए विशिष्ट माना गया है कि उसमें संवेदना को ग्रहण करने की क्षमता कहीं अधिक हुआ करती है। हालांकि साहित्यकार की संवेदना युग–विशेष की परिस्थितियों का ही प्रतिनिधित्व करती है किंतु फिर भी अलग–अलग साहित्यकारों के व्यक्तित्व में अंतर पाया जाता है। ऐसा उनके अनुभव ग्रहण करने की प्रक्रिया एवं अभिव्यक्ति की विशिष्ट प्रक्रिया के अंतर के कारण होता है। अतः समान संवेदनशीलता रखते हुए भी वह भिन्न होता है"।[3] बाबा नागार्जुन की कविताओं में जन के प्रति यह संवेदना प्रमुखता से देखते को मिलती है। इस संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन सटिक जान पड़ता है। वे कहते हैं कि मनुष्य ही मुख्य है, बाकी सब बातें गौण है। इतिहास, साहित्य, दर्शन, राजनीति आदि मनुष्य के लिए ही बनते हैं। इस संदर्भ में अगर हम बाबा की कविता की देखें तो स्पष्ट होता है कि उनकी कविताओं के केंद्र में मनुष्य (बहुजन) ही मुख्य है। भगवान सिंह के अनुसार "वैसे देखा जाए तो नागार्जुन का मिजाज़ बहुत कुछ राहुल सांकृत्यायन जैसा था। राहुल जी के साथ रहते हुए उनकी तरह वे भी चिरवधारी बौद्ध भिक्षु, मार्क्सवादी, दलीय साम्यवादी के रूप में कायातंरित होते रहे, किंतु उनका कवि मन सदैव अपने देश समाज की विविध वास्तविकताओं से जुड़े रहकर उनकी काव्य चेतना को संवारता–निखरता रहा है, जिनके प्रमाण हैं उनकी 'युग–धारा', 'सतरंगे पंखोंवाली', 'हजार–हजार बांहोवाली', ' खिचड़ी विप्लव देखा हमनें', जैसे कविता संग्रह की कविताएं।"[4]

इसी तरह 'घिन तो नहीं आती है, कविता में कवि ने एक ऐसी सच्चाई की व्यक्त किया है जो बहुत मार्मिक है। आज भी हमारे समाज में अधिकांश लोग ऐसे हैं जो मजदूरों, मेहनतकश लोगों से आये दिन सार्वजनिक स्थलों, बस, ट्रेन ट्राम आदि जगहों पर अछूत जैसा व्यवहार करते हैं। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के प्रति यह घृणा भाव कवि को विचलित कर देता है। स्वतः उसके मुख से निकल पड़ता है, घिन तो नहीं आती है। व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति यह नफ़रत, घृणा भाव अत्यन्त ही मार्मिक, पीड़ादायक तथा सोचनीय है। बाबा नागार्जुन अपनी कविता' घिन तो नहीं आती है में इसी दारुण स्थिति का चित्रण अत्यन्त मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है। यथा–

"कुली मजदूर हैं। बोझा ढ़ोते हैं, खींचते हैं ठेला/ धूल धुआं भाप से पड़ता है सबका/ थके मांदे जहाँ तहाँ हो जाते हैं ढेर/ सपने में भी सुनते हैं धरती की धड़कन/ आकर ट्राम के अन्दर पिछले डब्बे में/ बैठ गए हैं इधर उधर तुमसे सट कर / आपस में उनकी बतकही / सच सच बतलाओ। जी तो नहीं कढ़ता है? घिन तो नहीं आती है?"

यदि हम देश की वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों पर चर्चा करें तो पाएंगे कि वर्तमान शासन व्यवस्था निरंकुश हो गई है। निरंकुशता के नशे में चूर होकर अराजकता के चरम पर पहुंच चुकी है। जनता की आवाज़ को दबाने, उनके प्रतिवादी स्वर को कुचलने में कोई कमी नहीं छोड़ते हैं। जब–जब जनता लामबंद होकर निरंकुश सत्ता का प्रतिवाद करती है, सत्ता व्यवस्था और अधिक निर्मम होकर जनता का दमन शोषण आरंभ कर देती है। बाबा नागार्जुन की कविता ' शासन की बंदूक', इस बात की गवाह है। ऐसी स्थिति में एक जनकवि निरंकुश सत्ता को खुली चुनौति देती है। 'शासन की बंदूक' कविता में कवि ने निरंकुश सत्ता का तीखी विरोध किया है।

"सत्य स्वंय घायल हुआ, गई अहिंसा चुक/ जहाँ–तहाँ दगने लगी शासन की बंदूक/ जली ठूंठ पर बैठकर गई कोकिला कूक/ बाल न बांका कर सकी शासन की बंदूक"

वर्तमान समय को बाबा नागार्जुन जैसे जनकवि की अत्यधिक आवश्यकता है जो वर्तमान अराजक शासन व्यवस्था की खबर ले तो दूसरी तरफ जन–साधारण के जीवन को मुखर वाणी दे। निरपेक्ष आलोचना

पक्ष के साथ खड़ा होना ही लोकतंत्र एवं लोकतांत्रिक मूल्यों को जीवित रखता है और उसे मजबूती प्रदान करता है। रचनाकार को चाहिए कि वह अपनी लेखनी का प्रयोग अत्याचारी, दमनकारी, भ्रष्टाचारी शासन व्यवस्था के विरुद्ध तथा पीड़ित, शोषित, दमित, वंचित जनता के पक्ष में करे। आज संकुचित स्वार्थ की आपाधापी में व्यक्ति अंध–बधीर होकर अपनी स्वतंत्र सत्ता को बेच देने से नहीं हिचकता है। ऐसा व्यक्ति जो खुद की आवाज सुनने में व्यर्थ हो, असमर्थ हो चुका है। वह जनता की आवाज क्या बनेगा। जन की आवाज बनने के लिए कवि को अपने नफा–नुकसान, मान– अपमान से ऊपर उठना होगा। उसे अपने विवेक, अपने आत्म–सम्मान को जीवित रखना होगा, तभी जाकर रचनाकार जनता का पक्ष ले पाएगा। एक जनकवि की सबसे बड़ी चुनौति होती है तटस्थ रहना। यह तटस्थता ही उसे निर्भीकता प्रदान करती है और यह निर्भीकता ही उसे सही–गलत में अन्तर करना सिखाती है। बाबा नागार्जुन में यह तटस्थता थी, तभी वे निर्भीक होकर अराजक सत्ता का विरोध तथा उत्पीड़ित जनता का समर्थन अपनी रचनाओं में किए हैं।

जनकवि कहने का तात्पर्य ही यह है कि जो कवि जनता के सुख–दुख, आशा–आकांक्षा, आस्था–भ्रांति, जय–पराजय, आक्रमण पलायन आदि प्रत्येक स्थिति में रक्षा कवच की भांति जन की सेवा करे।" प्रतिबद्ध हूँ' कविता में कवि इस बात का उल्लेख करते हैं– "निश्चय–अनिश्चय से, संशय–भ्रम से, क्रम से, व्यतिक्रम से/ निष्ठा अनिष्ठा से, आस्था–अनास्था से, संकल्प–विकल्प से/जीवन से, मृत्यु से, नाश–निर्माण से, शाप–वरदान से/ उत्थान से, पतन से, प्रकाश से, तिमिर से"

जनकवि केवल जनता का रक्षा कवच ही नहीं बनता है, अपितु वह बदलते वक्त एवं परिस्थितियों पर पैनी नजर रखता है तथा समय–समय पर वह विकल्प भी प्रस्तुत करता रहता है। बदलाव सच है एवं बदलाव के अनुरूप जन–जीवन को विकल्प देना ही जनकवि का मुख्य कर्तव्य है। बाबा नागार्जुन इन बातों में अद्वितीय हैं। नागार्जुन का एक जनकवि के रूप में उभरकर सामने आना एवं मजबूती के साथ प्रतिष्ठित होने के पीछे जो कारण है, वह यह है कि नागार्जुन स्वंय उस जन–साधारण के बीच से निकले हैं, अतः उनमें जन सामान्य से संबद्धता है। वे अपनी लेखनी के द्वारा जनता में एक अदम शक्ति का संचार कर उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों से मुकाबला करने के लिए तैयार करते रहते हैं।

बाबा नागार्जुन जनकवि होने के साथ ही साथ एक प्रगतिशील कवि भी हैं। प्रगतिशील कवि होने के नाते वे कल्पना की तुलना में यथार्थ से अधिक जुड़े हैं। यथार्थ को अधिक महत्त्व देने के कारण नागार्जुन का समस्त रचना कर्म मानवीय संवेदनाओं से बहुत गहरे में जुड़ा हुआ है। मानवीय संवेदनाओं पर आधारित रचनाएं वस्तुतः जन–सामान्य की सच्ची एवं निर्मल भावनाओं पर केंद्रित रहती है। डॉ. पारीक के अनुसार– "नागार्जुन ने जमींदारों द्वारा भूमिहीन किसानों से बेगार लेना, काम न करने पर उनकी पिटाई करना, किसान–मजदूरों की बहू–बेटियों को जबरन अपनी वासना का शिकार बनाना इत्यादि अत्याचारों की पोल खोली है। नागार्जुन की लगभग सभी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ उभरकर आया है। कहीं वे उच्च वर्ग के लोगों पर चोट करते हैं, तो कहीं समाज में व्याप्त कुरीतियों पर तीक्ष्ण प्रहार करते हैं, तो कहीं धर्म के नाम पर ढोंग करने वाले लोगों पर व्यंग्य बाण छोड़ते हैं। कहीं समाज में स्त्रियों की शोचनीय दशा पर विचार करते हैं तो कहीं विधवा विवाह का समर्थन करते दिखाई पड़ते हैं। कहने का अर्थ यही है कि नागार्जुन भारतीय समाज के प्रत्येक पहलू का अपनी कृतियों में यथार्थ रूप में समाहार करने का प्रयास करते हैं"।[5] बाबा नागार्जुन की कविता में जनता के हर पक्ष, हर पहलू को बहुत ही वास्तविकता के साथ चित्रित किया गया है। कवि जन–साधारण की छोटी–बड़ी, गम्भीर हर तरह की समस्याओं समाधान के प्रति प्रतिबद्ध है तथा समाज के प्रति गहरी संवेदना से युक्त। वे साधारण जनता से अपनी रचनाओं के माध्यम से सीधे तौर पर जुड़े दिखाई देते हैं। इस संदर्भ में डॉ. अनिल पारीक जी का कहना है कि नागार्जुन के लेखन का समाजवादी–यथार्थवादी दृष्टिकोण रहा है। अतः उनके जैसे संवेदनशील लेखक ने भारतीय ग्रामीण अथवा आंचलिक समाज से जुड़कर उनकी संवेदनाओं को अनुभव किया है और साहित्य के माध्यम से जन–जन तक पहुंचाया है। नागार्जुन की मूल संवेदना जनजीवन के साथ और उनकी सक्रिय हमदर्दी के साथ जुड़ी है। वे सामाजिक उत्पीड़न,शोषण की स्थिति को बदलकर न्याय एवं समता पर आधारित समाज की रचना करने वाली श्रमिक जनता से नाता जोड़ते हैं। जो कमजोर हैं और शोषकों के हैं– नागार्जुन उनके पक्षधर हैं,

क्योंकि उन्हें ही हर जगह छला गया है"।[6] बाबा नागार्जुन ने 'अन्न पचीसी के दोहे' में लिखते हैं।" कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ/ बंदा क्या घबराएगा, जनता देगी साथ/ छीन सके तो छीन ले, लूट सके तो लूट/ मिल सकती कैसे भला, अन्न चोर को छूट"।

कवि नागार्जुन प्रगतिशील एवं जनवादी विचारधारा से पूर्ण हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। मध्यकाल में कबीर तथा आधुनिक काल में निराला के बाद बाबा नागार्जुन मूलतः एकमात्र ऐसे कवि हैं, जिन्होंने जीते जी अत्याचारी शासन व्यवस्था के सामने न गिड़गिड़ाये और न ही नतमस्तक हुए। उनके इस अदम ऊर्जा, शक्ति, एवं साहस का मूल था जनता। वे अपने रचना कर्म के द्वारा जनता से अपने जीवन के अंतिम क्षण तक जुड़े रहे। हम देख सकते हैं कि बाबा नागार्जुन तत्कालीन समय में जितने प्रासंगिक थे, उतने आज भी हैं। उनकी यह प्रासंगिकता कल भी थी और आज भी है। जनता का उत्पीड़न शोषण, दमन सत्तालोलुपों द्वारा जबतक होता रहेगा तबतक बाबा नागार्जुन एवं उनकी कविताएं प्रासंगिक रहेंगी।

संदर्भ सूची

1. पारीक, डॉ. अनिल, नागार्जुन का गद्य साहित्य अंतर्वस्तु, संवेदना, दृष्टि और शिल्प, प्रथम संस्करण : 2007, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 27।
2. आजकल, जून, 2011, पृष्ठ संख्या– 32।
3. पारीक, डॉ. अनिल, नागार्जुन का गद्य साहित्य अंतर्वस्तु, संवेदना, दृष्टि और शिल्प, प्रथम संस्करण : 2007, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 95–96।
4. नया ज्ञानोदय, मई, 2010, पृष्ठ संख्या– 82।
5. पारीक, डॉ. अनिल, नागार्जुन का गद्य साहित्य अंतर्वस्तु, संवेदना, दृष्टि और शिल्प, प्रथम संस्करण : 2007, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–25।
6. वही, पृष्ठ संख्या – 96।

❀★❀

हिन्दी शोध : परिभाषा और स्वरूप

खुशबू कुमारी*
प्रो. (डॉ.) रामनरेश पंडित**

सारांश :–हिन्दी शोध, हिन्दी भाषा और साहित्य में ज्ञान की खोज और अनुसंधान की प्रक्रिया है। इसका स्वरूप वैज्ञानिक, व्यवस्थित और क्रमबद्ध होता है, जिसमें समस्याओं के समाधान के लिए तथ्यों का संकलन, विश्लेषण और व्याख्या की जाती है। हिन्दी शोध को ''किसी समस्या या विषय पर व्यवस्थित, क्रमबद्ध और वैज्ञानिक तरीके से जानकारी एकत्र करना, उसका विश्लेषण करना और नए ज्ञान या निष्कर्षों तक पहुंचना'' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, जो ज्ञान के क्षेत्र में वृद्धि करती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी शोध एक व्यवस्थित, क्रमबद्ध और वैज्ञानिक प्रक्रिया है जो ज्ञान के क्षेत्र में नए दृष्टिकोणों, निष्कर्षों और समाधानों को विकसित करने में मदद करती है।

बीज शब्दः–अनुसंधान, विश्लेषण, अन्वेषण, खोज, गवेषण, सर्वेक्षण, परिपृच्छा, तथ्यान्वेषण, सन्दर्भान्वेषण।

परिचय :– शोध क्या है? ''अनुसंधान क्या है? हमारे सामने अनन्त काल का प्रवाह बह रहा है, बह गया है। हम उसी अनन्त प्रवाह से एक लोटा पानी निकालकर अपने ज्ञान की तृष्णा बुझाना चाहते हैं। इसे ही प्रकारान्तर से अनुसन्धान कार्य करना कहा जाता है। पर शर्त यह है कि जो जल हम लोटे में भरते हैं उसमें बैक्टीरिया के असंख्य कीटाणु हैं। यदि हम उन्हें ज्यों–का–त्यों पी लेते हैं तौ प्राणों को खतरे में डालते हैं। शुद्ध जल से ही हमारी तृष्णा बुझ सकती है। अतः हम जल नदी के तटस्थ प्रवाह से नहीं लेंगे, कोशिश करेंगे कि जल वहीं से लिया जाय जहाँ नदी की धारा स्वच्छ तीव्र प्रवाह से बहती है। यदि फिर भी उसमें विजातीय द्रव्य के मिश्रण की आशंका हुई तो तरह–तरह के उपचार से उसे निर्मल बनायेंगे, उबालेंगे, छानकर शुद्ध करेंगे इत्यादि।''[1]

मुख्य भाग :– शोध के पर्यायः 'शोध' शब्द के लिए हिन्दी में 'अनुसन्धान', 'अन्वेषण', 'खोज', 'गवेषण', 'पर्येषण', 'संवीक्षण' आदि पर्याय हैं। इसका अंग्रेजी पर्याय 'रिसर्च' है। डॉ. रघुवीर ने अपने अंग्रेजी–हिन्दी–कोश में 'रिसर्च' के लिए 'गवेषणा' शब्द का प्रयोग किया है। डॉ. नगेन्द्र ने 'अनुसन्धान' शब्द को ही पारिभाषिक रूप दिये जाने पर बल दिया है ''हिन्दी में 'रिसर्च' के लिए 'अनुसन्धान', 'अन्वेषण', 'शोध' तथा खोज आदि अनेक शब्दों का प्रयोग होता है। यहाँ स्थूलतः सभी शब्द प्रायः पर्याय ही माने जाते हैं, परन्तु संस्कृत में इन अर्थों में सूक्ष्म अन्तर है। अनुसन्धान का अर्थ है परिपृच्छा, परीक्षण, समीक्षण आदि। 'सन्धान' का अर्थ है दिशा विशेष में प्रवृत्त करना या होना और 'अनु' का अर्थ है पीछे इस प्रकार अनुसन्धान का अर्थ हुआ किसी लक्ष्य को सामने रखकर दिशा–विशेष में बढ़ना–पश्चाद्गमन अर्थात् किसी तथ्य की प्राप्ति के लिए परिपृच्छा, परीक्षण आदि करना।''[2]

'अनुसन्धान' शब्द अनुपूर्वक तृतीयगण की 'संधा' धातु से व्युत्पन्न हुआ है। अनुपूर्वक संधा घातु उस अर्थ समुच्चय की बोधिका है जो आधुनिक शोध–व्यापार का प्राणभूत तत्त्व है। डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने 'रिसर्च' के विभिन्न स्तरों की चर्चा करते हुए यह दिखाया है कि 'अनुसन्धान' में हमें उन सारे स्तरों की प्राप्ति हो जाती है। रिसर्च का प्रथम स्तर नूतन तथ्यों या तथ्याख्यानों की शोध है; पूछताछ करना रिसर्च–प्रक्रिया का दूसरा स्तर है तथ्यान्वेषण या सन्दर्भान्वेषण तीसरा स्तर है; संवीक्षण, परीक्षण आदि इसका चौथा स्तर है; Ascertain की व्यंजना इसका पाँचवाँ स्तर है। इन्होंने अनुसन्धान की व्याख्या करते हुए लिखा है ''अंग्रेजी के कोश–ग्रन्थों में Research शब्द के पर्याय के रूप में Search, Enquire, Investigate, Euamine, Ascertain आदि शब्द उल्लिखित मिलते हैं। यद्यपि यह सभी शब्द साधारणतया समानार्थक हैं, किन्तु इनमें से प्रत्येक एक विशिष्ट अर्थ की व्यंजना भी करता है; जो दूसरों में नहीं पाया जाता। यह बात

***शोध–छात्रा, विश्वविद्यालय हिन्दी–विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।**
**** प्राचार्य, श्रीराम कृष्ण गोयनका महाविद्यालय, सीतामढ़ी।**

उनके हिन्दी अर्थो से जो क्रमशः शोध करना, पूछताछ करना, छानबीन या अच्छी तरह से खोज करना या गवेषणा करना तथा निर्णय करना आदि हैं, से पूर्णतया स्पष्ट है। उपर्युक्त शब्दों में से प्रत्येक रिसर्च प्रक्रिया के एक–एकस्तर मात्र का वाचक है। उसके समूचे स्वरूप का स्पष्टीकरण उनके समन्वय से ही सम्भव है।''[3]

डॉ. उदयभानु सिह ने भी 'अनुसंधान' शब्द को ही उपयुक्ततम माना हैः ''हिन्दी की आधुनिक अनुसन्धान–भावना का स्रोत अंग्रेजी 'रिसर्च' है। 'रिसर्च' की अर्थ–व्यंजना के लिए प्रायः पाँच शब्दों का व्यवहार होता है– खोज, गवेषणा, शोध, अनुशीलन और अनुसंधान। शब्दार्थ की दृष्टि से अज्ञात अथवा विस्मृत वस्तु की जानकारी के लिए किया गया प्रयत्न, उस प्रयत्न का फल तथा उस प्रयत्न और फल का प्रकाशन– यह सब वाच्य या लक्ष्य रूप में 'गवेषणा' अथवा खोज है। 'शोध' का एक प्रचलित अर्थ है– अशुद्धियों को दूर करना। इस अर्थ में, अनुसन्धान के क्षेत्र में किसी ग्रन्थ के क्षेपकों आदि का अपोहन करके उसका मूल शुद्ध पाठ निर्धारित करना 'शोध' है। दूसरा अर्थ है–विचार करना (जैसे 'सोधि सुपूति सब वेद पुराना।' 'सोधि सुदिन कल केकन छोटे' आदि) अथवा छान–बीन करके समझना (जैसे, 'तात धरम मतु तुम्ह सब सोधा')। अर्थ के वास्तविक स्वरूप का निर्धारण भी 'शोध' है। वेदान्त में की गई 'तत्त्वपदार्थशोधन' की चर्चा इस विषय में प्रमाण है। 'अनुशीलन' और 'अनुसन्धान' बारम्बार चिन्तन के द्योतक हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि खोज तथा चिन्ता का तत्त्व पाँचों का ही सामान्य धर्म है। यद्यपि उपर्युक्त किसी भी शब्द से 'रिसर्च' का अर्थ ग्रहण कर लिया जाता है, 'रिसर्च' की अध्ययन रूपता ज्ञानपरता और वैज्ञानिकता की प्रतीति हो जाती है, तथापि 'रिसर्च' के समशील अर्थ में 'अनुसन्धान' शब्द उपयुक्ततम है; क्योंकि यह शब्द 'रिसर्च' की सभी विशेषताओं का सर्वाधिक व्यंजक है।''[4]

अंग्रेजी के 'रिसर्च' शब्द के पर्यायवाची शब्दों पर तनिक विचार कर लेना भी उचित होगा। खोज, अन्वेषण, गवेषण, शोध, अनुसन्धान, अनुशीलन आदि 'रिसर्च' के प्रमुख हिन्दी पर्याय हैं।

खोज :– 'खोज' शब्द प्राकृत 'खोज्य' से निष्पन्न है। इसका अर्थ चिह्न या निशान होता है।[5] इसका दूसरा अर्थ तलाशना, गवेषणा करना तथा शोध करना होता है।[6] खोज से निष्पन्न 'खोजी', 'खोजक', 'खोजप्रबन्ध' आदि शब्द बहुत खटकते हैं। अतः 'अनुसन्धान' के पर्याय रूप में 'खोज' का प्रयोग संमान्य नहीं है।[7] शोध के स्वरूप की सम्यक् प्रतीति के लिए रिसर्च, थीसिस और डाक्टर– इन तीन शब्दों के अर्थ की स्पष्ट व्यंजना अपेक्षित है। डॉ. उदयभानु सिंह ने Webster's Third New International Dictionary of the English Langnage के आधार पर इसे निम्न रूप में अभिव्यंजित किया हैः ''रिसर्च' शब्द का सामान्य अर्थ है– अवधानपूर्वक अथवा श्रमपूर्वक की गयी सूक्ष्म खोज। 'थीसिस' और 'डॉक्टरेट' के प्रसंग में उसका अर्थ है– अध्ययनपूर्ण खोज–बीन अथवा परीक्षण, विशेषतः आलोचनात्मक और व्यापक अन्वेषण अथवा प्रयोग– परीक्षण जिसका उद्देश्य है नवीन तथ्यों का उद्घाटन और उनका समीचीन आख्यान स्वीकृत निष्कर्षों, सिद्धान्तों या विधियों का पुनरीक्षण। किसी लेख या पुस्तक आदि के रूप में किया गया वह उपस्थापन भी 'रिसर्च' ही है जिसमें इस प्रकार के रिसर्च की जाँच–पड़ताल एवं उसके परिणामों की निबंधना की गयी हो।''[8]

'डाक्टरेट' के प्रसंग में उसका अर्थ है – वह पक्ष या प्रतिज्ञा जिसे कोई व्यक्ति (जैसे किसी सारस्वत संमान का अभ्यर्थी) प्रस्तुत और प्रतिपादित करता है अथवा तर्क के द्वारा प्रतिपादित करने का प्रस्ताव या प्रयत्न करता है। किसी विद्यार्थी द्वारा किसी उपाधि के लिए प्रणीत वह प्रबन्ध भी 'थीसिस' है जिसमें इस प्रकार का प्रतिपादन किया गया हो। 'डाक्टर' शब्द का पहला अर्थ है– वह धार्मिक व्यक्ति जो अध्यात्म शास्त्रीय पांडित्य एवं व्यक्तिगत पवित्रता में श्रेष्ठ हो और जो सामान्यतः प्रतिष्ठित मत का व्याख्याता तथा प्रतिरक्षक हो।

''रिसर्च' और 'थीसिस' के सम्बन्ध से 'डाक्टर' शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए किया जाता है जिसने अनेक वर्षों तक किसी विशिष्ट विषय का तत्त्वामिनिवेशी अध्ययन करके, कोई संस्तुत्य प्रबंध लिख करके, और बहुत सी कठिन परीक्षाएँ पास करके किसी विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त कोई उच्चतम सारस्वत उपाधि (जैसे, पी–एच.डी.) अर्जित की हो।''[9] ज्ञान–क्षेत्र में उठी हुई शंकाएं ही शोध की तरफ प्रवृत्त करती हैं। शंकाएं जानबूझकर नहीं होतीं, वे स्वयं हो जाती हैं और उसी को प्रमाणित करने के लिए हम विभिन्न परस्पर तथ्यों को जुटाकर उसे विशुद्ध तर्क से परिष्कृत करते हैं। यही परिष्कृति शोध है। इस परिष्कृति से सत्य का एक नवीन वातायन खुलता है जिससे विशुद्ध वायु आने–जाने लगती है। शोध–कर्ता बड़ी सावधानी से अपने कदम आगे बढ़ाता है। हर कदम पर शंका सामने आती है और शोधार्थी उस शंका को निर्मूल करता हुआ बढ़ता है, इस तरह शंकालु होना शोधार्थी की प्रवृत्ति हो जाती है। ज्ञान–क्षेत्र में कहीं एक जगह शंका पैदा होती है और

तत्पश्चात् शंकाओं का अम्बार लग जाता है। शोधार्थी सारी शंकाओं के बीच अदम्य उत्साह, लगन के साथ चलता है; शंकाओं के बीच निश्शंक होकर चलना ही तो शोधार्थी की सफलता का सूचक है; जैसे शेर जंगल में निश्शंक और निर्भीक होकर चलता है, फिर भी उसका हर कदम शंकाओं को समूल नष्ट करती हुई उसकी विश्वास–आस्था से ही उठता है। ''एक अच्छे शोधकर्ता के लिए पूर्णरूपेण शंकालु होना चाहिए। मानव मात्र के सत्योपलब्धि क्षमत्व तथा तथ्य–संरक्षण–क्षमत्व के बारे में यहाँ तक अपने सम्बन्ध में भी उसे तुच्छ सम्मति लेकर ही चलना चाहिए। ऐसा सोचना चाहिए कि मनुष्य में सत्य से दूर हो जाने की प्रवृत्ति है। दूसरों के साथ पारस्परिक व्यवहार में, दैनिक मानवीय आचार–विचार में भले ही वह अधिक–से–अधिक विश्वासी हो। लोगों की बातों में विश्वास करे पर शोध–क्षेत्र में आते ही उसे अपना पुराना चोला उतारकर नया रूप धारण करना पड़ेगा। अपनी पुरानी छवि त्यागकर संशय का धनुष–बाण हाथ में लेना पड़ेगा! उसे थोड़ा परम्परावादी भी होना चाहिए। किसी ग्रन्थ लेखन–सम्बन्धी परम्परागत मान्यताओं में परिवर्तन को स्वीकार करने के पूर्व हजारों बार सोचना चाहिए।''[10] अनुसन्धान के स्वरूप का वैशिष्ट्य यह है कि वह सर्वथा एकनिष्ठ होता है, विषय विशेष के प्रति अनुसन्धाता की एकनिष्टता ही उसकी सीमाओं का निर्धारण करती है। प्रतिपाद्य विषय वह धुरी है जिसको केन्द्र मानकर उसी के आस–पास अनुसन्धाता को चक्कर काटना होता है और उसकी सारी भागदौड़ की एक निश्चित परिधि होती है। सत्य है कि किसी एक प्रतिपाद्य विषय के पूर्ण एवं सन्मक् बोध के लिए उससे सम्बन्धित जाने कितने सन्दर्भों का परिचय अपेक्षित होता है, पर यह सारा परिचय अनुसन्धान के मूल विषय से सीधा सम्बद्ध होता है, स्वच्छन्द संचरण की गुंजाइश नहीं होती। इसीलिए सृजनात्मक कृतियों में अथवा आलोचनात्मक ग्रन्थों में विषयान्तर में जाने की जो छूट रहती है उसके लिए अनुसन्धान में कोई स्थान नहीं। इस प्रकार अमुसन्धान कार्य में शैली का कसाव, दृष्टि की एकतानता और विषय के निरन्तर अनुधावन की तत्परता अपेक्षित है।

अनुसन्धान की प्रवृत्ति तथ्यपरक होती है। जिस प्रकार कथाकार को पात्रों एवं घटनाओं के पीछे भागना पड़ता है, उसी प्रकार अनुसन्धाता को तथ्यों के पीछे दौड़ना पड़ता है और जहाँ तक उसके प्रतिपाद्य विषय की सीमा होती है वहाँ तक पहुँचकर वह रुक कर सारी दौड़–धूप और छान–बीन के उपरान्त लौट– कर, अबतक अज्ञात एक नवीन दिशा अथवा ज्ञात दिशा थी अब तक अदृष्ट वस्तु की प्रामाणिक एवं निश्चयात्मक प्रतिष्ठा करता है। ''अनुसन्धान प्रतिपाद्य विषय के विचार से सर्वथा निर्वैयक्तिक कार्य–व्यापार है जिसमें व्यक्तिगत मान्यताओं के आरोप को कोई स्थान नहीं। साथ ही प्रतिपादन पद्धति के विचार से अनुसन्धान निजी उपलब्धि भी है जिसमें सारा निर्वैयक्तिक कार्य– व्यापार एक व्यक्ति विशेष की अन्तदृष्टि तथा उसके निरीक्षण–परीक्षण, तथ्याकलन एवं निष्कर्ष–स्थापन की क्षमता का द्योतक होती है।''[11]

निष्कर्ष :– निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि शोध कई नामों से जाना जाता है। सभी एक–दूसरे का पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार मुख्य रूप से शोध का परिभाषा खोज करना अथवा खोज किया हुआ सामग्री को पुर्नस्थापित करना होता है। कई विद्वानों के अपने–अपने मत हैं किन्तु सभी विद्वानों के मत का निष्कर्ष एक ही निकलता है– खोज करना। अंग्रेजी के रिसर्च शब्द के पर्यायवाची शब्दों पर विचार करना उचित है– खोज, अन्वेषण, गवेषणा, शोध, अनुसंधान, अनुशीलन आदि 'रिसर्च' के प्रमुख हिन्दी पर्याय है।

संदर्भ–सूचीः–

1. सं. डॉ. देवराज उपाध्याय और डॉ. रामगोपाल शर्मा, साहित्यिक अनुसंधान के प्रतिमान, पृ. 12।
2. डॉ. भागीरथ मिश्र, अनुसंधान का स्वरूप, पृ. 70–71।
3. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य–सन्देश, भाग–22, अंक–1–2, पृ. 5, (जुलाई–अगस्त, 1960 : शोध–विशेषांक)।
4. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य सन्देश, भाग–22, अंक–1–2, पृ. 6।
5. खोज मारि रथ हांकहु बाता।। (रामचरितमानस 2/85/4) रथ कर खोज कतहुं नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुं दिसि धावहिं।। (रामचरितमानस 2/86/1)
6. रामचरितमानस 4/4/2।
7. डॉ. उदयभानु सिंह, अनुसन्धान का विवेचन, पृ. 21।
8. वही, पृ. 9।
9. वही, पृ. 10।
10. साहित्यिक अनुसंधान के प्रतिमान, पृ. 25।
11. नागरी प्रचारिणी पत्रिका; वर्ष 77 अंक 1–4 देवकीनन्दन श्रीवास्तव, पृ. 12।

हिंदी बाल कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ : एक अध्ययन

दर्शना*

प्रो. कविता त्यागी*

सारांश :— हिंदी बाल कविताएं केवल बालकों का मनोरंजन ही नहीं करती है अपितु वह भविष्य के सुयोग्य नागरिक भी तैयार करती है। बाल कविताएं मनोरंजन के साथ—साथ बालकों में नैतिकता एवं मानवता का भी प्रसार करती हैं आज की बाल कविताओं से जहां बालकों का मनोरंजन हो रहा है वहीं उनमें राष्ट्रभक्ति, ईमानदारी, सदाचार, सहानुभूति, प्रकृति प्रेम, परोपकार, बंधुत्व, धर्मनिरपेक्षता, समाज सुधार, स्वाभिमान की भावना, शिक्षा चेतना, मानवतावाद जैसे मूल्यों का भी समावेश होता है। बालकों के सतत विकास के लिए हिंदी बाल कविताएं मनोवैज्ञानिक रूप से आवश्यक है। आज के तकनीकी युग में बालकों को मोबाइल के दुष्प्रभाव से बचाने के लिए भी बाल कविताएं कारगर सिद्ध हो रही है। अनीता रानी ने इस संदर्भ में लिखा है— "आधुनिक हिंदी बाल साहित्यकारों का ध्यान देश और समाज में फैली हुई विकृतियों और भ्रष्टाचारों की ओर जा चुका है, अतः हिंदी के बाल साहित्यकारों ने बालक के केवल मनोरंजन को ही अपना लेखन धर्म न मानकर कर धर्म, दर्शन, नीति, सदाचार, कर्तव्य परायण, विज्ञान, तकनीकी, कला तथा संस्कृति आदि विषयों को भी बाल साहित्य के माध्यम से रेखांकित किया है।"[1]

मूल शब्द :— पर्यावरण, देशभक्ति, राष्ट्रवाद, मनोरंजन, संप्रदायिक, भ्रष्टाचार, मनोविज्ञान, सांस्कृतिक, मोबाइल, केलकुलेटर, इंटरनेट।

हिंदी बाल कविताओं में बाल साहित्यकारों ने बालकों को युग एवं समाज के प्रति जागरूक करने का स्तुत्य प्रयास किया है। वे अपनी कविताओं में सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, शिक्षा— चेतना, पर्यावरण चेतना, विज्ञान का महत्व, देशभक्ति, दलित चेतना आदि प्रवृत्तियों को भी यथास्थान देते हैं। यह ऐसी प्रवृत्तियां हैं जो बालक के कोमल मन को समाज सापेक्ष बनाती है एवं समय को समझने में सहायता प्रदान करती है। आज का बालक मोबाइल युग के कारण साहित्य से दूर होता ही नहीं जा रहा है अपितु वह अकेला और चिड़चिड़ा हो गया है। अर्थ में व्यस्त होने के कारण मां—बाप बालकों को समय नहीं दे पा रहे हैं। बालकों का बचपन तकनीकी की भेंट चढ़ रहा है। ऐसे में डॉक्टर वसंत कुमार गणपत माली कहते हैं— "बाल साहित्य को अलग करके हम बच्चों की शिक्षा की परिकल्पना भी नहीं कर सकते हैं। परंतु आज हमारे सामने प्रश्न यह है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में जब बच्चों के हाथ में रिमोट है, मोबाइल और अन्य नवीन संसाधन है तब वह राजा रानी की कहानियों, परीकथाओं, जंगली पशु—पक्षियों से संबंधित सामग्री में अपना ध्यान क्यों लगाएंगे। यहां हमें यह समझने की आवश्यकता है कि इंटरनेट और मोबाइल के युग में बचपन खोता जा रहा है और चिंताएं बढ़ती जा रही हैं। एकांकी परिवार में बच्चा अकेला हो गया है कामकाजी माता—पिता और बच्चों के बीच संवाद हिनता पनप रही है। बच्चे अपने अकेलेपन से जूझ रहे हैं या अकेलेपन को दूर करने के लिए मोबाइल या टीवी का सहारा ले रहे हैं, जिससे उनमें चिड़चिड़ापन पनप रहा है।"[2]

बाल कविताओं की मुख्य प्रवृत्ति मनोरंजन की रही है क्योंकि बालक का मन कोमल होता है। वह खेलना एवं अपना मनोरंजन करना ही मुख्य ध्येय मानता है। बालकों को बाल मनोरंजन के साथ—साथ देशभक्ति, राष्ट्रीय एकता, और राष्ट्र विकास के प्रति प्रेरणा दी जाती है। बाल साहित्य में राष्ट्र के इतिहास, संस्कृति, धरोहर, महान नेताओं और योद्धाओं के बारे में लिखा जाता है। इससे बच्चों में गर्व और आत्मविश्वास का भाव जागृत होता है। वे देश के प्रति अपने दायित्वों और कर्तव्यों को समझने लगते हैं। कई बाल साहित्य कृतियों में स्वतंत्रता संग्राम, राष्ट्रीय आंदोलन और उनके नायकों का चित्रण किया जाता है। जिससे बच्चों में देशभक्ति और राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना जागृत होती है और वह देश के विकास और सुरक्षा के लिए प्रेरित होते हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान की देशभक्तिपरक कविता 'झांसी की रानी' भी ऐसी ही बालोंपयोगी कविता है—

"चमक उठी सन् सत्तावन में

***शोधार्थी, मेरठ कॉलेज, मेरठ।**

*** (शोध निर्देशिका) हिंदी विभागाध्यक्ष, मेरठ कॉलेज, मेरठ।**

वह तलवार पुरानी थी।
बुंदेले हरबोलों के मुंह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झांसी वाली रानी थी।"[3]

छुट्टी का दिन बालकों के मनोरंजन का दिन होता है। इस दिन प्रत्येक बालक धमा–चौकड़ी करता है, शोर मचाता है। वह छुट्टी के दिन का इंतजार भी बड़ी बेसब्री से करता है। बालक की इस प्रवृत्ति को इस प्रकार चित्रित किया गया है–

"छुट्टी का दिन आया है,
सबके मन को भाया है।
आज न पढ़ने जाएंगे,
दिन भर शोर मचाएंगे।"[4]

बालकों में राष्ट्रवाद की भावना का प्रसार करने के लिए साहित्यकारों ने विपुल मात्रा में राष्ट्रवादी एवं मानवतावादी साहित्य की रचना की है। राष्ट्रवादी कविताएं बालकों में राष्ट्रप्रेम की भावना जाग्रत करती हैं। नवजागरण काल से ही राष्ट्रवादी प्रवृत्ति इस साहित्य की रही है। सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति विशेष रूप से हुई है–

"सभा–सभा का खेल आज हम,
खेलेंगे जीजी आओ,
मैं गांधी जी छोटे नेहरू,
तुम सरोजिनी बन जाओ।
छोड़ो सभी विदेशी चीजें,
लो देसी सुई धागा,।
इतने में आए काका जी,
नेहरू सीट छोड़कर भागा।"[5]

बाल साहित्य में मानवता को एक मुख्य उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। मानवता का गुण शिक्षा के रूप में भी काम करता है। बाल कवियों ने मानवता का पाठ पढ़ाने पर विशेष जोर दिया है। गौरीशंकर उपाध्याय 'सरल' की 'एक बात' कविता में मानवता एवं राष्ट्रीय प्रवृत्ति इस प्रकार व्यक्त हुई हैं–

"संगठन में बड़ी शक्ति है,
कहते उत्तम यही युक्ति हैं
हिल मिलकर सब रहना सीखें।
बिना बात के कभी न चीखें।
देख एकता शत्रु डरेंगे
बूंद–बूंद से सिंधु भरेंगे
सुख–दुख आपस में बंट जाते।
दुख के बादल झट छंट जाते।।"[6]

बच्चों में प्रकृति एक कौतूहल का विषय होती है। वह प्रकृति को बड़ी गौर से देखता है। आसमान, तारे, चंद्रमा, पेड़–पौधे, जीव–जंतु आदि उसके लिए जिज्ञासा का कार्य करते हैं। वह जैसे–जैसे बड़ा होता जाता है प्रकृति के प्रति उसका मोह भी बढ़ता जाता है। कोमल मन जब प्रकृति के विविध दृश्यों को देखता है तो उसके साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। बालकों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए साहित्यकारों ने प्रकृति एवं पर्यावरण संबंधी कविताएं भी खूब लिखी है। "स्वातंत्र्योत्तर भारत में प्रगति के नाम पर प्रकृति का धुआंधार विनाश हुआ है। जंगलों में खड़े वर्षों की अवैध कटाई, पहाड़ों से पत्थर और खनिजों की खुदाई, नदियों से रेत का अवैध उत्खनन, गलत तरीके से नदियों पर बांधों का बंधान, स्वतंत्रतापूर्वक प्राकृतिक क्षेत्रों में कारखानों से प्रदूषण आदि के कारण प्रकृति का स्वरूप विकृत हुआ है। अतः जो बाल साहित्यकार प्रकृति के वर्तमान विकृत स्वरूप के साक्षी है, उनके द्वारा लिखे गए बाल साहित्य में प्राकृतिक निरूपण का संकेत अवश्य ही किया गया।"[7]

डॉ परशुराम शुक्ल ने बच्चों के लिए प्रकृति–दोहे लिखे हैं उन्होंने पर्यावरण एवं प्रकृति का शुद्ध विवेचन कर बच्चों को सही शिक्षा दी हैं। शुक्ल के दोहों में प्रकृति चित्रण इस प्रकार है–

"प्रकृति प्रभावित सभी पर बच्चों की क्या बात ?

जीवन इनका प्राकृतिक, दिन हो चाहे रात।।
प्रकृति और पर्यावरण, दोनों पर दो ध्यान।
इनसे बच्चों को मिले, जीवन का वरदान।।"[8]

पर्यावरण को शुद्ध करने का कार्य वृक्ष करते हैं। वृक्ष छाया, फल और स्वच्छ जीवन देते हैं। कवि इस बात को स्पष्ट रूप से जानते हैं कि अगर बच्चों को बचपन से ही वृक्षारोपण एवं प्रकृति का ज्ञान करवाया जाए तो वह भविष्य में प्रदूषण को कम करने में सहायक सिद्ध होते हैं। डॉक्टर श्याम सुंदर श्रीवास्तव कोमल के बाल गीत में प्रकृति एवं पर्यावरण की एक छटा देखिए–

"पेड़ संत है दयावंत है,
इनकी महिमा न्यारी।
पेड़ तुम्हारे जग में
और नहीं हितकारी।
वृक्षारोपण को अपना कर
हम सब वृक्ष लगावें।
आओ परहित में श्रम करके,
जीवन सफल बनाएं।।"[9]

वर्तमान समय में जल प्रदूषण भी चिंता का विषय है। इसके प्रति हमें अपने बच्चों को जागरूक अवश्य करना चाहिए, जिससे वह अभी से शुद्ध जल के लिए जागरूक हो जाए। आजकल बहुत से उद्योगों का कचरा, अस्पतालों का कचरा एवं अन्य गंदे नालों का गंदा पानी भी नदियों में बहा दिया जाता है जिससे संपूर्ण नदी का जल दूषित हो जाता है तथा वही जल जब गांवों एवं शहरों में पीने के लिए पहुंचता है तो बीमारियों का कारण बनता है। इस गंभीर समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए उषा यादव बच्चों के माध्यम से लिखती हैं–

"इठलाती–मुस्काती नदियां। मीठे गीत सुनाती नदियां
अपनी धुन में बहती होगी, कभी यही बलखाती नदियां।"

परंतु वर्तमान में इन्हीं नदियों की स्थिति को बयां करते हुए–

पर हर बीती बात हो गई, आंसू आज बहाती नदियां।
गंदा नाला भर लगती है, यह करुणा उपजाति नदियां।"[10]

बाल कविताओं में वात्सल्य का विवेचन स्नेह, संवेदना एवं प्रेम के स्वरूप में होता है। बालक प्रेम की भाषा समझते हैं। वे अपने माता–पिता, दादा–दादी, नाना–नानी आदि में वात्सल्य ग्रहण करते हैं। इससे मानव प्रेम तो बढ़ता ही है साथ में सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति भी बड़े पैमाने पर होती हैं। वात्सल्य बच्चों के प्रति परिवार में सभी सदस्यों में होता है। बाल कवियों ने मां और बेटे की बाल सुलभ क्रियाओं को संवाद रूप में भी प्रस्तुत किया है। निरंकार देव सेवक के बाल गीत में वात्सल्य की प्रवृत्ति इस प्रकार चित्रित हुई है–

"माँ मैं पढ़ने जाऊंगा।
लौट देर में आऊंगा। ।
तब मैं खाना खाऊंगा।
खा पीकर सो जाऊंगा।
चिड़िया कहती टी टुक–टुक।
मुझको भी दे दो बिस्कुट।।"[11]

आज अर्थ सत्ता महत्वपूर्ण होने के कारण अभिभावक अपने बच्चों को समय नहीं दे पा रहे हैं। ऐसे में बालक अकेलेपन से जूझ रहे हैं। नौकरी पेशा की तरफ भागते माता–पिता अपने बच्चों की तोतली बोली और किलकारियों से ही वंचित नहीं हो रहे हैं वरन् बालक भी वात्सल्यहीन हो रहे हैं। उषा यादव की कविता आज के युग के वात्सल्य पर प्रश्न चिन्ह लगती हैं। एक छोटी बच्ची जो वात्सल्य चाहती है, मां–बाप का स्नेह चाहती है, प्यार चाहती है, मर्म स्पर्शी भाषा में अपनी मम्मी से कहती है–

"बहुत बुरा लगता है मम्मी,
मुझे तुम्हारा ऑफिस जाना।
घर पर लौटूं और उस समय,
दरवाजे पर ताला पाना।

जाने कितनी बातें उस पल,
चाहा करती तुमसे कहना,
मां तुम कल घर पर ही रहना।"[12]

बालकों को पशु–पक्षियों से विशेष प्रेम होता है। वे जानवरों एवं पक्षियों का सह संबंध भी चाहते हैं। बालकों की अभिरुचि के अनुसार साहित्यकारों ने ऐसी कविताएं भी लिखी है जिनमें पशु–पक्षी मानव क्रियाएं करते हैं। बालक जब ऐसी कविताएं पढ़ते या सुनते हैं तो वह आनंद से भर जाते हैं। सीताराम गुप्त की बाल मन को आनंदित करने वाली पंक्तियां इस प्रकार है–

"पास नहीं आती,
क्यों मुझसे शर्माती हो तितली।
मुझको अपना दोस्त बना लो
प्यारी प्यारी तितली।
मनमोहक है रंग–बिरंगे
सुंदर पंख तुम्हारे।
पंख अगर मेरे भी होते
उड़ता साथ तुम्हारे।।"[13]

डॉ० परशुराम शुक्ल की कविताओं में भी बाल मन को आह्लादित करने की शक्ति है। वे बालकों को उन जानवरों से अवगत करवाते हैं जो प्रायः हमारे परिवारों में पाए जाते हैं। उनकी कविता में चूहे–बिल्ली का विश्लेषण बच्चों की जिज्ञासा वृत्ति को बढ़ाने वाला है–

"चूहिया रानी बड़ी सयानी,
श्याम ढले घर आती है।
कॉपी, बस्ता, कपड़े, कागज,
कुतर–कुतर कर खाती हैं,
चाहे जितना पीछे भागो,
नहीं पकड़ में आती है।
लेकिन बिल्ली के डर से वह
झट बिल में घुस जाती है।"[14]

आज की बाल कविता में बाजारवादी एवं वैश्वीकृत प्रवृत्ति को भी स्पष्ट देखा जा सकता है। इस युग ने बच्चों के हाथों में सीधा मोबाइल पकड़वा दिया है, जिससे बच्चों का बचपन मर रहा है। मनोवैज्ञानिक रूप से वह बच्चों की मानसिकता में आमूल–चूल परिवर्तन कर रहा है, यह ठीक नहीं है। इस तकनीकी युग में हमें बच्चों को बचाना चाहिए। नागेश पांडे की कविता में वर्तमान युग की तकनीकी मशीनों एवं उसके सस्ते होने का चित्रण यथार्थ रूप में हुआ है–

"मोबाइल जी, तुम हो सचमुच,
बड़े काम की चीज।
गेम, कैमरा, केलकुलेटर,
एफ. एम., इंटरनेट।
कंप्यूटर भी इसमें आया,
फिर भी सस्ता रेट।"[15]

बाल साहित्य बालकों में सदाचार एवं सद्गुणों की प्रेरणा जगाता है। वह बच्चों को समाज में बुरे कार्यों को करने से रोकता है। आज समाज में भ्रष्टाचार एवं रिश्वतखोरी निरंतर बढ़ती जा रही है। धन कमाने की लिप्सा ने मानव के मूल्यों का पतन कर दिया है। बाल साहित्यकार बालकों को उचित–अनुचित का ज्ञान करवा कर उसे सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा भी देता है–

"गांधी बाबा बहुत बड़े,
आजादी के लिए लड़े।
सत्य अहिंसा इनका शास्त्र।
खादी का है इनका वस्त्र
सादा जीवन उच्च विचार।

प्रेम दया इनका व्यवहार।।"[16]

अवध किशोर सक्सेना जैसे कवि बालकों में मानवता जागृत करने का कार्य करते हैं। वे बालकों को जाति–धर्म, भेदभाव की शिक्षा न देकर मानवतावाद को पोषित करते हैं। आज के युग में बालकों को ऐसी शिक्षा देनी आवश्यक है जिससे समाज में सांप्रदायिक सद्भाव उत्पन्न हो सके–

"हम नवयुग के हैं रखवारे,
देश जाति पर तन मन वारे।।
मानवता है जाति हमारी,
भारत मां हम सब की प्यारी।।"[17]

परशुराम शुक्ल की कविताओं में बाल मन को देशभक्ति की तरफ मोड़ती हैं। उन्हें भविष्य में अन्याय मिटाने वाले नागरिक के रूप में प्रस्तुत करती है। बालक जब मानवतावादी कविताएं पढ़ता है तो नैतिक कार्यों की तरफ स्वतः ही अग्रसर हो जाता है। शुक्ल जी ने एक कविता में बच्चों के मुंह से परिवर्तन लाने की बात की कही है–

"हम बच्चे हैं छोटे फिर भी,
जग से अन्याय मिटाएंगे।
तुमको मत देकर मान किया,
अब हम परिवर्तन लाएंगे।
हम बच्चों के नए राज में,
राज सभी का अपना होगा।
जिसमें हर भारतवासी का,
भारत जैसा सपना होगा।"[18]

निष्कर्षतः हिंदी बाल कविताओं में उपर्युक्त मिलने वाली प्रवृत्तियां गहन रूप से बालकों का विकास करने वाली है। बाल साहित्यकारों ने बच्चों के मनोरंजन के लिए ही कविताएं नहीं लिखी है वरन् वे उनको सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक शिक्षा भी देते हैं। एक तरह से बालक जब खेल–खेल में राष्ट्रवादी, मानवतावादी, मनोरंजनात्मक कविताएं पढ़ते हैं तो उनका मनोविज्ञान भी जागृत होता है। बाल साहित्यकारों की बाल कविताओं में शिक्षा, चेतना, प्रकृति प्रेम, पर्यावरण, देशभक्ति, राष्ट्रवाद, मनोरंजन, सांप्रदायिक सद्भावना, भ्रष्टाचार आदि का चित्रण विशेष रूप से हुआ है। इन नैतिक प्रवृत्तियों के कारण की बालक भविष्य में सुयोग्य नागरिक बनते हैं।

संदर्भ सूची :–

1. परशुराम शुक्ल की बाल कविताओं में मूल्य, अनीता रानी, आशा प्रकाशन, कानपुर, 2019 पृ०–25।
2. बाल साहित्य एक विमर्श, डॉ० वसंत कुमार गणपत माली, पूजा पब्लिकेशन, कानपुर, 2023 पृ०– 92–93।
3. वसंत भाग–1, सुभद्रा कुमारी चौहान, एनसीईआरटी प्रकाशन, संस्करण–2022, पृष्ठ–54।
4. आओ गीत गुनगुनाए–1, दीपू प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–7।
5. हिंदी बाल साहित्य : एक अध्ययन, हरिकृष्ण देवसरे, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 1969 पृष्ठ– 214।
6. बाल गीत, गौरी शंकर उपाध्याय सरल, साहित्य संगम, झांसी –2003, पृष्ठ–47।
7. हिंदी बाल साहित्य का अनुशीलन, डॉ० आनंद वक्षी, आराधना ब्रदर्स, कानपुर– 2016, पृष्ठ– 77।
8. बाल सतसई, डॉ० परशुराम शुक्ल, नमन प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ०– 83–84।
9. हम भारत की शान बनेंगे, डॉ० श्याम सुंदर श्रीवास्तव कोमल, ज्ञान सरोवर प्रकाशन, कानपु,र 1994, पृ०–20–21।
10. उषा यादव के बाल उपन्यास सामग्र, कामना सिंह, नमन प्रकाशन, दिल्ली, पृ०–115।
11. हिंदी बाल साहित्यः एक अध्ययन, डॉ० हरिकृष्ण देवसरे, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, 1969, पृष्ठ–200।
12. आजकल पत्रिका, नवंबर, 2009, पृष्ठ–12।
13. सूरज के बेटे हैं हम, डॉ० सीताराम गुप्त दिनेश, म०प्र० लेखक संघ भिण्ड, 2011, पृ०– 28।
14. नंदनवन, डॉ० परशुराम शुक्ल, स्टार ट्रेक पब्लिशर्स, दिल्ली पृष्ठ– 43।
15. आजकल पत्रिका, नवंबर, 2014, पृष्ठ– 6।
16. बाल गीत, डॉ० गौरी शंकर उपाध्याय सरल, सरल साहित्य संगम, झांसी, 2003, पृष्ठ– 26।
17. बाल कविता में सामाजिक सांस्कृतिक चेतना, डॉ० शिरोमणि सिंह पथ, आशा प्रकाशन, कानपुर, 2013, पृष्ठ– 176।
18. आओ बच्चों गाओ, परशुराम शुक्ल, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृष्ठ –103।

बच्चों में पाठ्यसहगामी गतिविधियों के माध्यम से नागरिक अवबोध का विकास

हर्षवर्धन*

अमृता बरनवाल**

सारांश :– प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में पाठ्यसहगामी गतिविधियों के माध्यम से नागरिक अवबोध का विकास अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन की प्रकृति गुणात्मक है। जिसका उद्देश्य पाठ्यसहगामी गतिविधियाँ किस प्रकार नागरिक अवबोध में सहायक होती है एवं विद्यालय में नागरिक अवबोध के विकास में किन–किन गतिविधियों का आयोजन किया जाता है। प्रस्तुत शोध में जनसंख्या के रूप में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रयागराज जिले के उच्च प्राथमिक विद्यालय मोहब्बतगंज, नैनी एवं पूर्व माध्यमिक विद्यालय दाँदुपुर, प्रयागराज के उच्च प्राथमिक विद्यालयों के 485 विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है आंकड़ों का संकलन करने के लिए अवलोकन एवं साक्षात्कार विधि के माध्यम से किया गया है एवं प्राप्त आकड़ों के विश्लेषण के लिए कूट संकेतों एवं थीम का निर्माण किया गया है। निष्कर्ष में यह पाया गया कि पाठ्यसहगामी क्रियाएँ विद्यार्थियों को सीखने के लिए वास्तविक परिस्थितियाँ प्रदान करती है। जहाँ विद्यार्थी पुस्तकों का अध्ययन ही नहीं करते हैं अपितु परस्पर विभिन्न क्रियाओं के द्वारा व्यावहारिक स्वरूप को समझते भी हैं।

विद्यार्थी जीवन के प्रारंभिक चरण अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। इन आरंभिक वर्षों में ही उसके जीवन के सभी आयामों यथा शारीरिक, संज्ञानात्मक, सामाजिक एवं भावनात्मक विकास की नींव स्थापित हो जाती है (**राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा, 2022**)। हम जिस समाज में रहते हैं वहाँ पर व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जैसे– अपराध, आर्थिक संकट, पर्यावरण संरक्षण एवं विभिन्न मानवाधिकारों का उल्लंघन आदि। लेकिन इन समस्त समस्याओं का समाधान राष्ट्र के बुद्धिजीवियों के पास है परंतु नागरिक अवबोध की कमी एवं बढ़ती राजनीतिक उदासीनता इन समस्याओं को व्यापकता प्रदान कर रही है। यदि लोगों को नागरिक अवबोध के प्रति शिक्षित करने का प्रयास करें तो सम्भवता इनमें से अधिकांश समस्या का समाधान किया जा सकता है। नागरिक अवबोध से तात्पर्य है सामाजिक एवं कानूनों के नियमों का सम्मान करना, व्यक्तियों के अच्छे शिष्टाचार, अपने आस–पास के वातावरण को साफ रखना एवं समाज के सभी व्यक्तियों का आदर करना है। सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि सामाजिक नियमों का पालन करने, सभी व्यक्तियों का सम्मान करने एवं सार्वजनिक सभा में सभी की मर्यादा बनाए रखने की क्षमता से है **(पाण्डेय, 2016**)।

शोध का औचित्य (Rationale of Research) :– किसी भी शोध का आरंभ शोध समस्या की स्पष्ट पहचान से होता है। शोध समस्या की स्पष्ट रूप से पहचान कर उसका उल्लेख करना शोधकर्ता के लिए एक जटिल कार्य होता है। फिर भी शोधकर्ता परिस्थितियों की समझ, अनुभवों एवं पूर्व में किये गये शोधों की समीक्षा करके किसी स्पष्ट तथा ठोस समस्या का निर्धारण कर पाता है। वर्तमान समय में विद्यार्थी विद्यालय की चारदीवारी में कैद हो गया है जहाँ विद्यार्थी को पाठ्यक्रम के अनुसार केवल पुस्तकीय ज्ञान प्रदान किया जा रहा है। जिससे विद्यार्थी में रटने की क्षमता का ही विकास हो रहा है। इससे उनमें सैद्धांतिक ज्ञान के विकास में वृद्धि अवश्य हो रही है लेकिन उनकी व्यावहारिक समझ का विकास नहीं हो पा रहा है। इस

***भूतपूर्व शोधार्थी, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र– 442001**

****शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश– 211002**

विकट परिस्थिति में हमें ऐसे माध्यम या विधि की आवश्यकता है जो बच्चों में सैद्धांतिक ज्ञान के साथ व्यवहारिक ज्ञान भी प्रदान कर सके। नागरिक अवबोध, नागरिक शिक्षा एवं नागरिक उत्तरदायित्व से संबंधित शोध कार्य अग्रांकित शोधकर्ताओं (सलीम एवं अन्य, 2016, पाण्डेय, 2016, जहॉर्स्का, 2016, श्रीवास्तव, 2015, ट्राम्मेल्ल, 2014, अहृंजन एवं अन्य, 2013, तगुची, 2013, शर्मा, 2012, विलकोक्स, 2011, काहने एवं अन्य, 2008, वेल्च एवं अन्य, 2005, गलस्टोन, 2004) ने किये हैं लेकिन 'बच्चों में पाठ्यसहगामी गतिविधियों के माध्यम से नागरिक अवबोध का विकास' का अभाव पाया गया इसलिए शोधकर्ता ने इस अध्ययन का चयन किया है।

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण :– नागरिक अवबोध से संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन के अंतर्गत सलीम एवं अन्य (2016) ने अध्ययन में पाया कि (1) जन जातीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में नागरिक भाव एवं इसके घटकों का स्तर संतोषजनक प्राप्त हुआ है (2) जनजातीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के बालक एवं बालिकाओं के बीच नागरिक भाव में सार्थक अंतर है। (3) जनजातीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के बालक वर्ग की अपेक्षा बालिका वर्ग में नागरिक भाव का स्तर अधिक है। (4) जनजातीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के बालक वर्ग की अपेक्षा बालिका वर्ग में कानून के प्रति उच्च आज्ञाकारिता पायी गयी है (5) लोक संपत्ति के संरक्षण में जन जातीय उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालय के बालक एवं बालिका वर्ग के बीच कोई सार्थक अंतर नहीं है। पाण्डेय (2016) ने अध्ययन में पाया कि (1) कक्षा–8 के विद्यार्थियों में नागरिक बोध के विकास में परम्परागत एवं सहकारी शिक्षण विधि दोनों का सामान योगदान है। (2) नागरिक बोध, रुचि एवं अकादमिक उपलब्धि के विकास में परम्परागत विधि की तुलना में सहकारी शिक्षण विधि अधिक प्रभावशाली पायी गई है। श्रीवास्तव (2015) ने अपने अध्ययन पाया की (1) विभिन्न शिक्षा परिषदों द्वारा निर्धारित नागरिक शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों में उपस्थित नागरिक भाव से संबंधित विषयवस्तु तथा लोकतांत्रिक मूल्यों से संबंधित विषयवस्तु में पर्याप्त विभिन्नता है। (2) विभिन्न शिक्षा परिषदों द्वारा निर्धारित नागरिक शास्त्र की विषयवस्तु के निष्पादन हेतु शिक्षकों द्वारा अपनायी गई शिक्षण युक्तियों में सार्थक विभिन्नता है। (3) विभिन्न शिक्षा परिषदों से संबद्ध विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा आठ के नागरिक शास्त्र के विद्यार्थियों के नागरिक भाव एवं लोकतांत्रिक मूल्यों में सार्थक अंतर है।। विलकोक्स (2011) ने अपने अध्ययन में यह पाया कि समाज की उन्नति, नागरिकों एवं लोकतांत्रिक भावना के विकास के लिए नागरिक उत्तरदायित्व बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है इसे विद्यालयी पाठ्यवस्तु में ही नहीं रखना चाहिए बल्कि व्यावहारिक रूप से विद्यार्थियों को सिखाना चाहिए इसके लिए विभिन्न प्रकार की विद्यालयी एवं सामाजिक गतिविधियों का आयोजन किया जा सकता है। इससे विद्यार्थियों में आपसी संलग्नता में वृद्धि होती है तथापि विद्यार्थियों को यह अवसर मिलता है कि वह विद्यालय एवं समुदाय में अनुशासित जीवन व्यतीत कर सकें। काहने एवं अन्य (2008) ने अपने निष्कर्ष में यह पाया कि शिक्षक, विद्यार्थियों को नागरिक शिक्षा को सिखाने में अहम भूमिका निभाते हैं। सरकार का यह दायित्व होना चाहिए कि सभी विद्यालय को ऐसे अवसर प्रदान करें कि वह विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के नागरिक कौशल सीखने एवं उनका अभ्यास करने की अनुमति दें। जिससे विद्यार्थी यह जान सके कि सरकार कैसे कार्य करती है कैसे सभी नागरिक इस कार्य प्रणाली के अंग होते हैं।

समस्या कथन (The Study) :– बच्चों में पाठ्यसहगामी गतिविधियों के माध्यम से नागरिक अवबोध का विकास

शोध उद्देश्य

- पाठ्यसहगामी गतिविधियाँ किस प्रकार नागरिक अवबोध में सहायक होती है।
- विद्यालय में नागरिक अवबोध के विकास में किन–किन गतिविधियों का आयोजन किया जाता है।

शोध विधि :– प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति गुणात्मक है जिसमें वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है प्रस्तुत शोध में जनसंख्या के रूप में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रयागराज के नैनी जिले के सभी प्राथमिक विद्यालयों को लिया गया है एवं प्रतिदर्श के रूप में उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श के माध्यम से उच्च प्राथमिक

विद्यालय मोहब्बतगंज, नैनी एवं विकास खण्ड चाका के पूर्व माध्यमिक विद्यालय दाँदुपुर प्रयागराज के सत्र 2021–2022 के सभी बच्चों को सम्मिलित किया गया है एवं इस अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा आंकड़ों के संकलन के लिए सहभागी अवलोकन एवं स्वनिर्मित अर्द्ध– संरचित साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है एवं आंकड़ों के विश्लेषण के लिए कूट संकेतों तथा थीम का निर्माण किया है (क्रेसलेव, 2014)। इन थीम का वर्णन आंकड़ों के विश्लेषण में विस्तार से किया गया है।

सारणी-1

प्रतिदर्श का विवरण (Sample)

क्रम सं.	विद्यालय का नाम	क्षेत्र	विद्यार्थियों की संख्या
1.	उच्च प्राथमिक विद्यालय मोहब्बतगंज, नैनी	ग्रामीण	230
2.	पूर्व माध्यमिक विद्यालय दाँदुपुर, प्रयागराज	शहरी	255
कुल			485

आंकड़ों का विश्लेषण

- **जल का जीवन में महत्त्व एवं विद्यालय में पेयजल व्यवस्था** :–जल, जीवन जीने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। जल के अभाव में जीवन जीने का संकट उत्पन्न हो जाएगा। जल की उपयोगिता के विषय में बताते हुए बच्चों ने कहा कि जल का स्तर निरंतर कम होता जा रहा है इसलिए हमें जल का संरक्षण करना चाहिए, आमतौर पर जल का प्रयोग कृषि करने, घरेलु कार्य करने तथा पीने के लिए करते हैं। बच्चों में जल संरक्षण के विषय में सामान्य समझ विकसित हो चुकी है कि जल का अपव्यय नहीं करना चाहिए। अपव्यय के विषय में बच्चों ने कहा कि *"कपड़ा धोते समय, नहाते समय, खाना बनाते समय या अन्य कार्य में जब जल का प्रयोग हो तो बहते हुए जल को इकट्ठा कर के उसका उपयोग पेड़ों में पानी देने के लिए या शौचालय में किया जाना चाहिए। जल के महत्व और व्यवस्था के विषय में पूछने पर विद्यार्थियों ने बताया कि जल अर्थात् पानी न रहने पर पीने–खाने, नहाने की समस्या उत्पन्न हो जाएगी। विद्यालय में जल संकट न उत्पन्न हो इसके लिए हैंडपंप और नल लगा हुआ है। विद्यार्थियों को स्वच्छ जल उपलब्ध हो इसके लिए फिल्टर का प्रयोग किया जाता है जिससे स्वच्छ जल सभी को मिल सके। विद्यार्थियों ने बताया कि गाँव में पानी की उपलब्धता के लिए हैंडपंप लगा हुआ है साथ ही घर में साफ–स्वच्छ जल के लिए मिट्टी के घड़े का प्रयोग किया जाता है। बच्चे जल का संरक्षण, उपयोगिता और इसके प्रमुख संसाधन से परिचित हैं और अपने दैनिक जीवन में इसके उपयोग व संरक्षण पर ध्यान देते हैं।"*
- **पर्यावरणीय जागरुकता संबंधी गतिविधियाँ** :– पर्यावरणीय स्वच्छता तथा संरक्षण के प्रति बच्चों में सामान्य जागरूकता है। बच्चे जल, वायु, ध्वनि प्रदूषण से परिचित हैं तथा इसके संरक्षण के प्रति गंभीर भी हैं। बच्चों से पूछने पर उन्होंने बताया कि स्कूल में पिछले महीने एक कार्यक्रम हुआ था जिसमें सभी बच्चों ने पेड़, हवा, पानी, मिट्टी और फूल जैसी वेश–भूषा को पहन कर अभिनय किया। बच्चे पेड़ बनकर यह बताना चाहते थे कि पेड़ हमारे लिए बहुत अच्छे होते हैं क्योंकि इसी से हमें हवा मिलती है पेड़ गर्मी को अवशोषित कर लेते हैं तथा पेड़ हमें शुद्ध हवा)O($_2$ प्रदान करते हैं। एक बच्चे ने कहा कि *"पेड़ हमें हवा ही नहीं प्रदान करते हैं बल्कि यह बारिश होने का कारण भी हैं यदि पेड़ ना हो तो हमारा जीवित रहना भी संभव नहीं होगा। मैंने पेड़ का अभिनय इसलिए किया था क्योंकि पेड़ों को निरंतर काटा जा रहा है चाहे घर बनाने के लिए या सड़कों को चौड़ा करने के लिए इसे दिन प्रतिदिन काटा जा रहा है। मेरे घर के बगल वाला पेड़ भी कुछ दिन पहले काट दिया गया है। हमारी टीचर हम सभी को एक पेड़ विद्यालय में और एक पेड़ घर में लगाने को कहती है तथा इसके लिए टीचर हमारे साथ मिलकर पेड़ लगवाती हैं मैंने विद्यालय में आम का पेड़ लगाया था।"?*

- **अधिगम अक्षम विद्यार्थियों की पहचान एवं सहायता** :–कक्षा में समावेशन की प्रक्रिया को अपनाया जाता है। सभी बच्चों को एक साथ एक ही पाठ्यक्रम की शिक्षा प्रदान की जाती है। विद्यालय में बहुत से अधिगम अक्षम बच्चे भी हैं जिन्हें अतिरिक्त समय और ध्यान देकर शिक्षा प्रदान की जाती है ताकि वे अन्य बच्चों से पिछड़ न जाएँ। ऐसे में सिर्फ शिक्षक ही नहीं बल्कि विद्यार्थी भी समान रूप से अपने सहपाठियों की मदद करने के लिए तत्पर रहते हैं। कक्षा में सभी बच्चे साथ मिलकर पढ़ते हैं लेकिन कुछ बच्चों को सिखाने में समय लगता है। एक बच्चे ने कहा *"जब कक्षा के कुछ छात्र स्कूल नहीं आते हैं तो यह बात टीचर से बताता हूँ तो मैम उनके घर में फोन करके पूछती हैं कि वह स्कूल क्यों नहीं आ रहा है। यदि उनके घर में फोन नहीं होता है तो मैम मेरे साथ उनके घर में भी जाती हैं हमारी मैम हमेशा कहती हैं कि आप दोस्तों की हमेशा मदद किया करो।"*
- **अधिगम अक्षम विद्यार्थियों की पहचान एवं सहायता :–** कक्षा में समावेशन की प्रक्रिया को अपनाया जाता है। सभी बच्चों को एक साथ एक ही पाठ्यक्रम की शिक्षा प्रदान की जाती है। विद्यालय में बहुत से अधिगम अक्षम बच्चे भी हैं जिन्हें अतिरिक्त समय और ध्यान देकर शिक्षा प्रदान की जाती है ताकि वे अन्य बच्चों से पिछड़ न जाएँ। ऐसे में सिर्फ शिक्षक ही नहीं बल्कि विद्यार्थी भी समान रूप से अपने सहपाठियों की मदद करने के लिए तत्पर रहते हैं। कक्षा में सभी बच्चे साथ मिलकर पढ़ते हैं लेकिन कुछ बच्चों को सिखाने में समय लगता है। एक बच्चे ने कहा *"जब कक्षा के कुछ छात्र स्कूल नहीं आते हैं तो यह बात टीचर से बताता हूँ तो मैम उनके घर में फोन करके पूछती हैं कि वह स्कूल क्यों नहीं आ रहा है। यदि उनके घर में फोन नहीं होता है तो मैम मेरे साथ उनके घर में भी जाती हैं हमारी मैम हमेशा कहती हैं कि आप दोस्तों की हमेशा मदद किया करो।"*
- **विपरीत लिंग वाले विद्यार्थियों के साथ व्यवहार :–** विद्यालय में लड़के तथा लड़की दोनों पढ़ते हैं। विद्यालय में किसी एक पक्ष के प्रति पक्षपात की भावना जन्म ना ले इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता है। बच्चे चाहे वे लड़के हों या सभी एक–दूसरे के प्रति सम्मान की भावना रखते हैं किंतु कुछ बच्चे अंतर्मुखी प्रकृति के हैं जिससे वे कक्षा में आपस में बात करने में सहज महसूस नहीं करते हैं। एक बच्चे से पूछने पर उसने कहा कि *"कक्षा में हम सब साथ मिलकर पढ़ते हैं लेकिन मैं अपनी कक्षा में पढ़ते वाली लड़कियों से बात करने में शर्म महसूस करता हूँ। हाँ मैं अपने दोस्तों के साथ बात कर लेता हूँ पर मेरी कोई लड़की दोस्त नहीं है हाँ यदि कक्षा की सजावट, साफ–सफाई या कोई कार्यक्रम होता है तो मैंम हमारे साथ होती है तब हम सभी साथ मिलकर कार्य करते हैं। वैसे मैं केवल अपनी बहन की बात मानता हूँ मैं उसी के साथ विद्यालय आता हूँ।"*
- **कक्षा में सहपाठियों द्वारा सहायता की प्रकृति :–** विद्यालय में शिक्षण के समय बच्चों को विषय की स्पष्टता रहे इसके लिए सभी शिक्षक यथासंभव प्रयास करते हैं। शिक्षक के अलावा बच्चे आपस में भी एक–दूसरे की सहायता करते हैं। *"कक्षा में पढ़ते समय मैंम हमें बहुत अच्छे से समझाती है पर यदि हमें कुछ नहीं समझ में आता है तब हम अपनी मैम या सर से पूछते हैं पर हमारी कक्षा में कुछ ऐसे भी बच्चे है जो कई बार बताने पर सीखते हैं जब मैम कक्षा में किसी विषय को पढ़ाती है तब हम उसे समझने का प्रयास करते हैं तथा जिन बच्चों को वह विषय नहीं समझ में आता है तो उसे हम खाली कक्षा में या विद्यालय खत्म होने से पहले उसे समझाने का प्रयास करते हैं उसे समझाने में मेरे दोस्त भी सहायता करते हैं।"*
- **पुस्तकालय संचालन :–** विद्यालय में भ्रमण के दौरान पाया गया कि पुस्तकालय की व्यवस्था अच्छी है। बच्चे समय–समय पर पुस्तकालय से पुस्तकों को प्राप्त करते हैं तथा उनका अध्ययन करते हैं। जब कभी शिक्षक अनुपलब्ध रहते हैं और विद्यार्थी की कक्षा खाली रहती है ऐसी स्थिति में जो भी शिक्षक उपलब्ध होते हैं वे कुछ कक्षाओं में शिक्षण करते हैं तथा जिन कक्षाओं में शिक्षण के लिए कोई उपस्थित नहीं रहता उन बच्चों को पुस्तकें प्रदान करते हैं जिससे वे स्व–अध्ययन कर सकें। एक बच्चे ने बताया कि *"हमारे स्कूल में पुस्तकालय है जिसमें बहुत सारी किताबें रखी गई हैं तथा इसका मुख्यतः संचालन हमारी मैम करती है मुझे किताबे पढ़ना पसंद है लेकिन एक समय में एक ही किताब*

पढ़ने को मिलती है। जब उस किताब को पढ़कर स्कूल में वापस करता हूँ तभी पढ़ने को दूसरी किताब मिलती है। जब मैम ज़्यादा व्यस्त रहती है तब पुस्कालय से किताब देने के लिए हम में से ही कुछ बच्चों को पुस्तकालय को संभालने को कहा जाता है उस समय मैं बच्चों को किताब दे देता हूँ। तथा उनसे समय पर किताब को वापस लेना भी मेरी जिम्मेदारी होती है इस प्रकार अगले बच्चे को भी यही जिम्मेदारी दी जाती है।"

- **कक्षा की सफाई :—** साफ—सफाई के प्रति बच्चे सजग हैं। घर हो या स्कूल वे सभी को साफ—सुथरा रखना पसंद करते हैं। बच्चे स्कूल में जाने के बाद स्वयं भी सफाई में हाथ बटाते हैं। इस प्रकार से उनमें श्रम के प्रति आदर की भावना का विकास होगा। गांधी जी हमेशा ही हाथ के कार्य को और साफ—सफाई को महत्व देते थे वह आज भी स्कूलों में देखने को मिलता है। बच्चों ने स्कूल की सफाई के विषय में बताते हुए कहा कि *"सुबह उठकर मैं जब स्कूल जाने के लिए तैयार होता हूँ तो मैं सबसे पहले अपने आप को साफ करता हूँ फिर स्कूल के लिए तैयार होता हूँ। जब हम सभी स्कूल पहुँच जाते हैं तो सबसे पहले हम दाई को बुलाते हैं कक्षा की सफाई करने के लिए हमारे स्कूल में कक्षाः कमरों की संख्या 8 है लेकिन दाई एक है अब उसे सभी कमरे की सफाई समय पर करना काफी मुश्किल होता है इसलिए हम सभी बच्चे उनके साथ मिलकर अपने—अपने कक्षाओं की सफाई करते हैं। फिर पढ़ने बैठते हैं।"*
- **स्वच्छता के प्रति परिवार एवं विद्यालय की भूमिका :—** किसी भी बच्चे में साफ—सफाई की भावना तब तक जन्म नहीं ले सकती जब तक की घर में साफ—सफाई के प्रति लोग जागरूक न हों। बच्चे माता—पिता का अनुकरण करते हैं जिससे सफाई के लिए भी वे ऐसा करते हैं। बच्चों में स्वच्छता की समझ विकसित करने के लिए यह आवश्यक है कि साफ—सफाई की सीख उन्हें घर से ही मिले। स्वच्छता के विषय में पूछने पर बच्चों ने कहा कि *"घर की सफाई हमारी मम्मी करती हैं तथा मैं और मेरी बहन उनकी इस काम में मदद करते हैं। हम लोग हर रविवार घर की सफाई में मम्मी की मदद करते हैं लेकिन घर के बाहर के वातावरण को हम ज्यादा साफ नहीं कर पाते हैं क्योंकि आस—पास के लोग हमारी बात नहीं सुनते हैं हमारे घर के बगल वाले अंकल तो घर की छत से ही कचरा फेकते हैं और हमारे कहने पर भी हमारी बात नहीं सुनते हैं। लेकिन ऐसा कुछ लोग ही करते हैं बाकी लोग घर के कचरे को कूड़ेदान में ही डालते हैं।"* स्वच्छता एक अहम विषय है जिससे स्वास्थ्य को सुनिश्चित किया जा सकता है। स्वच्छता बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि लोग इससे होने वाले फायदे से परिचित हों साथ ही स्वच्छता न होने पर उसके नुकसान से भी परिचित हों। स्वच्छता के प्रति जागरूक करने के लिए समय—समय पर स्कूल से शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों की रैली निकाली जाती है। गाँव में भी घर के बड़े—बूढ़े युवाओं को यत्र—तत्र गंदगी फैलाने से रोकते हैं। ये सभी को स्वच्छता के प्रति जागरूक करते हैं। बच्चों ने परिवार और विद्यालय के कार्य के विषय में बताते हुए कहा कि *"घर के आस—पास के लोगों को स्वच्छता के प्रति जागरुक करने के लिए विद्यालय द्वारा रैलिया निकाली जाती हैं हम उस रैली का हिस्सा बनते हैं एवं अपने मुहल्ले से निकालते हैं। जिससे वह स्वच्छता के प्रति सचेत हो सके। विद्यालय को साफ रखने के लिए हम सभी लोग मिलकर कार्य करते हैं। महीने में एक बार सभी लोग विद्यालय सफाई अभियान चलाते हैं।"*

निष्कर्ष

- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया एवं सीखना यह विद्यालय की अनुकूल परिस्थिति पर निर्भर करता है। किसी समाज की सामाजिक—सांस्कृतिक परिवेश में कुछ समय रहने के पश्चात् हमसे यह आशा की जाती है कि उस समाज के नियमों को समझकर उसमें सामंजस्य स्थापित कर लिया जाए। जिससे हम समाज के एक कर्त्तव्यनिष्ट नागरिक एवं सदस्यों का निर्माण कर सकें। यह तभी संभव है जब हमारे विद्यार्थी को पुस्तक के सैद्धांतिक ज्ञान से बाहर निकालकर व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करें। पाठ्यसहगामी क्रियाएँ विद्यार्थियों को सीखने के लिए वास्तविक परिस्थिति प्रदान करते है। जहाँ विद्यार्थियों को पुस्तकों के अध्ययन तक ही नहीं सीमित रखती है अपितु वह विभिन्न परस्पर क्रियाओं के द्वारा उसके व्यावहारिक

स्वरूप को समझते भी हैं। विद्यालय आरम्भ होते ही सर्वप्रथम प्रार्थना सभा आयोजित होती है जिसमें सभी बच्चों की वेशभूषा एवं साफ–सफाई का निरीक्षण कक्षा–कक्ष के प्रतिनिधि द्वारा किया जाता है इसके साथ ही बच्चों को पर्यावरण जागरूकता के लिए विद्यालय में मुख्य दिवस में पर्यावरण से संबंधित रैलियों का भी आयोजन किया जाता है जिसमें सभी बच्चे सहभाग करते हैं।

- विद्यालय में बच्चों को नागरिक अवबोध को सिखाने के लिए निम्नलिखित गतिविधियों का प्रयोग किया जाता हैः प्रथमः नागरिक अवबोध को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करते हुए पढ़ाना है जिसमें सार्वजानिक संपत्ति का सम्मान करना, यातायात के नियमों का पालन एवं सामुदायिक सेवा में भाग लेने जैसे विषय शामिल होते हैं। द्वितीयः भूमिका निर्वहन (त्वसस डवकमससपदह) शिक्षक, कर्मचारी एवं समुदाय, बच्चों के साथ अपनी बातचीत में अच्छे नागरिक व्यवहार को प्रदर्शन करके सकारात्मक भूमिका प्रदर्शित करते हैं। तृतीयः बच्चों को पर्यावरण एवं संरक्षण को प्रभावी रूप से समझने के लिए समूह परिचर्चा, विचार–विमर्श एवं भूमिका निर्वहन जैसी गतिविधियों का आयोजित की जाती है। चतुर्थः बच्चों को नागरिक कर्त्तव्यों के महत्त्व से अवगत कराने के लिए सामुदायिक परियोजना एवं स्वयं सेवी कार्य में सहभाग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। **ट्राम्मेल्ल (2014)** ने अपने अध्ययन में पाया है कि विद्यालय पाठ्यक्रम में पढ़ाए जा रहे सभी विषयों की तरह नागरिक शिक्षा का भी महत्वपूर्ण स्थान है लेकिन इसे विद्यार्थियों को केवल पढ़ाया न जाए इसको सिखाया भी जाए। किसी राष्ट्र के निर्माण में नागरिक शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह समाजीकरण का एक रूप है जिसमें विद्यार्थियों को यह सिखाया जाता है कि लोकतंत्र का नेतृत्व कैसे किया जाए? नागरिक शिक्षा हमारे समाज को सुरक्षित बनाए रखने में सहायता प्रदान करती हैं। **विलकोक्स (2011)** ने अध्ययन में पाया है कि समाज की उन्नति एवं लोकतांत्रिक भावना के विकास के लिए नागरिक उत्तरदायित्व बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है इसे विद्यालयी पाठ्यवस्तु में ही नहीं रखना चाहिए बल्कि व्यावहारिक रूप से विद्यार्थियों को सिखाना भी जाना चाहिए इसके लिए विभिन्न प्रकार की विद्यालयी एवं सामाजिक गतिविधियों का आयोजन किया जा सकता है। इससे विद्यार्थियों में आपसी संलग्नता में वृद्धि होती है तथापि विद्यार्थियों को यह अवसर मिलता है कि वह विद्यालय एवं समुदाय में अनुशासित जीवन व्यतीत कर सके। **राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020)** के बिंदु 4.6 के अनुसार "सभी चरणों में प्रयोग आधरित अधिगम को अपनाया जाय जिससे विद्यार्थी स्वयं करके सीखे एवं प्रत्येक विषय में कला एवं खेल को एकीकृत किया जाये" यह विद्यार्थियों को स्वयं करके सीखने की ओर प्रोत्साहित करती है और यह सीखना केवल पुस्तक के माध्यम से न होकर अनेक गतिविधियों एवं खेल पर आधारित होता है एवं विद्यार्थियों में खोज–आधारित, चर्चा–आधारित एवं विश्लेषण–आधारित अधिगम को विकसित करने के लिए अनुप्रयोग एवं समस्या–समाधान विधि की ओर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है जिसकी पूर्ति पाठ्यसहगामी क्रियाकलापों के माध्यम से किया जा सकता है।

शैक्षिक निहितार्थ

शिक्षा का भारतीय दृष्टिकोण व्यापक और गहन है इसमें यह सम्मिलित है कि शिक्षा को आंतरिक एवं बाह्य द्वि–दिशीय विकास को पोषित करना चाहिए साथ ही आंतरिक एवं बाह्य धरातल पर सीखने के क्रम को एक साथ संचालित होना चाहिए। सीखना केवल सूचनाओं को एकत्र करने मात्र नहीं है अपितु स्वयं के साथ–साथ दूसरों के विकास, ज्ञान के विभिन्न रूपों विभेद करने की योग्यता एवं सीखे गए ज्ञान को समाज की भलाई के लिए उपयोग करने की क्षमता से है (**राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा, 2022**)। प्रस्तुत शोध अध्ययन प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में पाठ्यसहगामी गतिविधियों के माध्यम से नागरिक अवबोध के विकास को केंद्र में रखकर किया गया है। प्रस्तुत शोध अध्ययन के माध्यम में शिक्षा जगत के प्रबुद्ध नीतिनिर्माताओं तथा शिक्षकों का ध्यान इस विषय पर आकर्षित या केंद्रित करने का प्रयास किया गया है जिससे नीति निर्माता ऐसे कार्यक्रमों को अभिकल्पित करें जिसके माध्यम से विद्यार्थी में नागरिक अवबोध को विकसित करने में शिक्षक को सहायता प्राप्त हो सके। इसी संदर्भ में शोध अध्ययन के अंतर्गत शिक्षकों को भी विद्यालय में विद्यार्थियों में नागरिक अवबोध का विकास करने हेतु सामूहिक गतिविधियों एवं समय–समय

रैलियों का आयोजन आदि पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जा सकता है जिसके फलस्वरूप विद्यार्थी केवल 'कार्यान्यवन के निष्क्रिय श्रोता एवं ज्ञान संग्राहक नहीं रह जाएँगे अपितु समाज में एक सक्रिय भूमिका का निर्वहन करेंगे। **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020** की प्रस्तावना के अनुसार, "नैतिकता, मानवीय एवं संवैधानिक मूल्य जैसे– सहानुभूति, सभी का सम्मान, स्वच्छता, शिष्टाचार, लोकतांत्रिक भावना, सेवा की भावना, सार्वजनिक संपत्ति के लिए सम्मान, उत्तरदायित्व आदि का विकास करना हैं।" यह स्पष्ट करता है कि प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्रणाली में पाठ्यसहगामी गतिविधियों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

संदर्भ–सूची :–

1. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा फाउंडेशनल स्टेज. (2022). प्रस्तावना एवं परिचय. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा के लिए राष्ट्रीय संचालन समिति,* 13–46।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति. (2020). स्कूलों में पाठ्यक्रम और शिक्षण–शास्त्रः अधिगम समग्र, एकीकृत, आनंददायी और रुचिकर होना चाहिए.*शिक्षा मंत्रालय,* 18–31।
3. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_.0pdf
4. पाण्डेय, सी. पी. (2016).*इन्फ्लुएन्स ऑफ को–आपरेटीव लेर्निंग ऑन सिविक सैन्स, सिविक रिस्पांसिबिलिटी, इंटरेस्ट इन स्टडी एंड अकादमिक अचिवमेंट ऑफ जूनियर हाई स्कूल स्टूडेंट्स.*शिक्षा विभाग. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय।
5. श्रीवास्तव, आर. (2015). *विभिन्न शिक्षा परिषदों द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों एवं उनके निष्पादन हेतु अपनाई गई शिक्षण युक्तियों का कक्षा आठ के विद्यार्थियों के नागरिक भाव एवं लोकतांत्रिक मूल्यों से संबंध का अध्ययन.*काशी हिन्दू विश्वविद्यालय. वाराणसी।
6. सलीम, टी.एम. एवं मुनीर, वी. (2016). सिविक सैन्स एमंग ट्राईबल हाइयर सैकण्डरी स्कूल स्टूडेंट्स. स्कालरीय . *रिसर्च जर्नल फॉर ह्यूमैनिटी साइन्स एंड इंग्लिश लैड़्ग्वेज.* 6166–6171।
7. ट्राम्मेल्ल, आर.ई. (2014). *हाई स्कूल स्टूडेंट्स सिविक नॉलेज एंड सैन्स ऑफ सिविक आइडैनटिटिः ए क्वासी–एक्सपेरिमेंटल स्टडि ऑफ इम्पैक्ट ऑफ एक्सपेरिमेंटल सिविक लर्निंग प्रोग्राम्स.* नोर्थेयस्टेर्म यूनिवर्सिटी.बोस्टन।
8. विलकोक्स, के. सी. (2011). *द इम्पॉर्टेन्स ऑफ सिविक रेस्पॉन्सिबिलिटी. एजुकेशन एंड अर्बन सोसाइटी.* 43(1), 26–41।
9. काहने, जे. एवं मिडडॉघ, ए. (2008). *हाई क्वालिटी सिविक्स एजुकेशन वॉट इज ईट एंड हू गेट्स ईट?.*सोशल एजुकेशन 72(1) 34–39।
10. पट्टनायक, वी. (2020). विद्यालय को सफल बनाने में बच्चों की भूमिका.*ई–संवाद* 13(2) 5–8।
11. भट्टाचार्य, जी.सी. (एन.डी.). *अध्यापक शिक्षा.* अग्रवाल पब्लिकेशन।

ꕤ★ꕤ

भारतीय ज्ञान परंपरा में वाणिज्यिक संप्रत्यय
(स्मृति ग्रंथों के विशेष संदर्भ में)

ओम प्रकाश*

डॉ. रोमसा शुक्ला**

डॉ. हरीश पाण्डेय * ***

सारांश :– भारतवर्ष सनातन काल से ही सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया की अवधारणा को शिरोधार्य करके सम्मपूर्ण वसुधा को सहोदर मानकर अपने ज्ञान–विज्ञान और आध्यात्मिक उत्कर्ष के माध्यम से मानव कल्याण के लिए शांति का संदेश पूरी दुनिया में प्रेषित करता रहा है। इसके साथ भारतीयों ने कृषि एवं पशुपालन से संबंधित उत्पादों, मसालों, रत्नों, आभूषणों, चित्रकारी, शिल्पकारी इत्यादि से जुड़ी विभिन्न आकर्षक और गुणवत्तापूर्ण उत्पादों को विश्व के अनेक भागों में पहुंचाया और संपूर्ण विश्व को भारत के उत्पादों के प्रति आकर्षित किया और आर्थिक समृद्धि को प्राप्त हुआ, जिसके पद चिन्ह आज भी दुनिया के विभिन्न देशों में मंदिरों, विश्रामालयों, मठों इत्यादि के रूप में देखने को मिलते हैं। भारतीय मनीषा ने ब्रह्म तत्व की प्राप्ति से लेकर राज्यव्यवस्था और संस्कृति के संरक्षण और मनुष्यता का मार्ग प्रशस्त करने हेतु अनेकानेक आचार पद्धतियों और कालजयी ग्रंथों का सृजन किया। जिनमें वेद, वेदांग, पुराण, स्मृति, उपनिषद इत्यादि विद्यमान हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में प्रमाण के रूप में समस्त स्मृति ग्रंथों में से बृहस्पति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति को सम्मिलित किया गया है। जिस हेतु उक्त ग्रंथों में विद्यमान वाणिज्यिक संप्रत्ययों के अन्वेषण हेतु 'संप्रत्यात्मक विषयवस्तु विश्लेषण' पद्धति का उपयोग किया गया। परिणामतः बृहस्पति स्मृति में विद्यमान वाणिज्यिक संप्रत्ययों जैसे करनीति, धर्मानुकूल एवं लोकहित के लिए कर, क्रमिक कर वृद्धि का सिद्धांत, कोश–धन एवं उसके तीन प्रकार जोकि शुल्क (श्रुत, शौर्य, तप, कन्या, शिष्य एवं याज्य धन), शबल (कुसीद, कृषि, वाणिज्य, शुल्क, शिल्प, उपकर के प्रतिरूप प्राप्त तथा आप्त धन) तथा कृष्ण (पाशक, द्यूत, दूतार्थ, प्रतिरूपक, साहस तथा ब्याज या धोखे से प्राप्त धन), आय एवं उसके दो रूप पूर्ववत्सर शेष तथा वर्तमानाब्द संभव तथा वित्त विभागीय अनुशासन तथा परिहापण संबंधी नियम तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में विद्यमान वाणिज्यिक संप्रत्यों जैसे ब्याज एवं ब्याज की दर, ऋण एवं ऋण भुगतान तथा ऋण वापसी, प्रतिभू एवं उपनिधि संबंधी नियम, कोश विधि क्रय एवं क्रय मूल्य इत्यादि का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही प्रस्तुत शोध के परिणामों के आधार पर भारतीय ज्ञान परंपरा के वाणिज्यिक संप्रत्ययों के संवर्धन हेतु उपयुक्त शैक्षिक निहितार्थों को भी उद्धृत किया गया है।

मुख्य बिंदु :– भारतीय ज्ञान परंपरा, वाणिज्य, स्मृति ग्रंथ।

अध्ययन की पृष्ठभूमि :– भारत सनातन परंपरा का संवाहक राष्ट्र रहा है जो अपने–आप में गौरवमयी सांस्कृतिक विरासत को संजोये हुए है। जिसकी अपनी भाषा, संस्कृति, सभ्यता, ज्ञान–विज्ञान, अध्यात्म, चिकित्सा, ज्योतिष इत्यादि है। अतएव इन सभी के मिलेजुले रूप को भारतीय ज्ञान परंपरा की संज्ञा प्रदान की जाती है। भारतीय ज्ञान अर्थात् भारतीय मेधा द्वारा सृजित ज्ञान से है, जबकि परंपरा के संबंध में डॉ विद्यानिवास मिश्र कहते हैं कि यह उत्तरवर्ती का उत्तरवर्ती, आगे का आगे या श्रेष्ठ से श्रेष्ठ। यानि भारतीय ज्ञान परंपरा का मतलब भारतीय मनीषियों द्वारा सृजित उत्तरोत्तर श्रेष्ठ ज्ञान से है। जो विभिन्न कालानुक्रम के झंझावत से और परिष्कृत होकर निरन्तर प्रवाहमान है। जिसे पं. भगवत शास्त्री ने अविरल गंगा का प्रवाह कहा है (मिश्र, 2022)। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा जड़ नहीं चैतन्य है जिसमें तर्क की स्वतंत्रता है और श्रेष्ठतर को

*** जूनियर रिसर्च फैलो, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्याय, वर्धा महाराष्ट्र**

**** सहायक आचार्य, वाणिज्य विभाग, श्याम लाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

***** सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र**

ग्रहण करने की क्षमता है। यही कारण है कि भारत अनादि काल से ही अपने संस्कृति और सभ्यता को अक्षुण्य बनाए हुए है।

भारतीय मनीषियों ने भारतीय ज्ञान परंपरा को विस्तार से समझने हेतु विद्या स्थानों का प्रतिपाद किया है जिनमें सामान्यतः वेद, उपवेद, वेदांग, शास्त्र के चार अन्य (वार्ता, कामसूत्र, शिल्प, दण्डनीति) को मिलाकर 18 विद्या स्थानों का उल्लेख प्राप्त होता है। जबकि महर्षि याज्ञवल्क्य नें विद्या और धर्म के स्थानों का वर्णन करते हुए कहा है कि पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।। (याज्ञ.स्मृ. 1.1.3) अर्थात् पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र और व्याकरण आदि अंको सहित चारों वेद को मिलाकर चौदह विद्या के और धर्म के स्थान हैं। छांदोग्योपनिषद में प्रसंग आता है कि महर्षि नारद सनत्कुमार से कहते हैं कि ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेद्सांमवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यांशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यांसर्पदेवजनविद्यामेतद्भवोऽध्येमि।।(छा.7.1.2) भगवन् मुझे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद याद है, इसके अलावा इतिहास–पुराणरूप पांचवां वेद, वेदों का वेद व्याकरण, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या और देवजनविद्या नृत्य–संगीत इत्यादि के साथ कुल 37 विषयों का उल्लेख करते है। इस प्रकार आचार्य कौटिल्य ने विद्या का वर्गीकरण इस प्रकार किया है– आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः। (अर्थ. 1.2.1.1) आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति को विद्या के रूप में निरूपित किया है। आचार्य शुक्र ने भी इन्हीं चार को विद्या माना है, परन्तु महाराज मनु ने त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति को ही विद्या माना है। जबकि महर्षि बृहस्पति ने वार्ता और दण्डनीति को ही विद्या के रूप में निरूपित किया है तथा उसनष दण्डनीति में ही सभी विद्याओं को समाहित मानते हैं (सहाय, 2019)।

वाणिज्य में पुस्तपालन, लेखांकन, क्रय–विक्रय, बीमा, बैंक, यातायात, भण्डारण, अंश, पूंजी, ऋण, कराधान, व्यापार, औद्योगिक संस्थान, सेवा क्षेत्र से जुड़े फर्म, कृषि उत्पाद, डेयरी उद्योग इत्यादि से संबंधित सेवाओं को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुंचाने तथा उससे संबंधित विभिन्न बहियों में निबन्धन करने की प्रक्रिया शामिल है। भारतीय वाङ्गमय में वाणिज्य के लिए आचार्य कैटिल्य ने कृषि, पशुपालन और व्यापार को वार्ता कहा है कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ताः। (अर्थ. 1.2.4.1)। याज्ञवल्क्य स्मृति में वैश्य के कर्तव्य को बताते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि कुसीदकृषिवाणिज्यपाशुपाल्यं विशः स्मृतम्।। (या.स्मृ.1.119) वैश्य को ब्याज लेना, कृषि, व्यापार और पशुपालन करना चाहिए (आर्य, 2002)।

साहित्य समीक्षा :– ममता (2017) ने मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति में चिंतन के विविध आयामों को उजागर करते हुए समस्त स्मृति ग्रंथों के सार संक्षेप में प्रस्तुत किया है। जिसमें स्मृतियों की कुल संख्या और स्मृति ग्रंथों की उप स्मृतियों का भी उल्लेख सम्मिलित है। शर्मा (2016) ने विभिन्न स्मृतियों (बुधस्मृति, बृहस्पति स्मृति, विष्णु स्मृति, मनुस्मृति, गौतम स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, वशिष्ठ धर्मसूत्र, नारद स्मृति, शुक्रस्मृति इत्यादि) में विद्यमान अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन किया और कहा है कि भारत की समस्त आर्थिक स्थितियों का समग्र चिन्तन स्मृतियों में विद्यमान है जो पुरुषार्थ चतुष्ट्य को सिद्ध कर मानव जीवन को चरितार्थ करती हैं। शाक्या (2014) के शोध में भारतीय ज्ञान परंपरा में वाणिज्य के महत्व और उसमें कैरियर के अवसर को खोजने का प्रयास किया गया है और कहा है कि जैसे–जैसे भारत प्रगति करेगा उसके प्राचीन ज्ञान को व्यावहारिक अनुप्रयोग मिलेगा और उससे नागरिकों के साथ वैश्विक समुदाय को भी लाभ प्राप्त होगा। कुमार (2016) द्वारा शुक्रनीति में राजा तत्व और राजा के विभिन्न गुणों और कार्यों का वर्णन करते हुए कहा है कि जनमत को श्रेष्ठ बताया है और कर्तव्य को प्राथमिकता दी है न कि जन्म और भाग्य को।

शोध उद्देश्य :– स्मृति ग्रंथों (बृहस्पति एवं याज्ञयवल्क्य स्मृति) में विद्यमान वाणिज्यिक संप्रत्ययों का अध्ययन करना।

शोध क्रियाविधि :– प्रस्तुत शोध प्रत्र गुणात्मक प्रकृति का है जिसमें ऐतिहासिक सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया है। जिसमें प्रमाण ग्रंथ के रूप में भारतीय वाङ्गमय में विद्यमान स्मृति ग्रंथों में से बृहस्पति स्मृति

(रंगास्वामी आयंगार का भाषा टीका) एवं याज्ञवल्क्य स्मृति (विज्ञानेश्वर, डॉ. उमेश चन्द्र पाण्डेय एवं श्री नरायण मिश्र का हिंदी भाषा टीका) को सम्मिलित किया गया है। जिस हेतु उक्त ग्रंथों में विद्यमान वाणिज्यिक संप्रत्ययों के अन्वेषण हेतु चेकलिस्ट के माध्यम से 'संप्रत्यात्मक विषयवस्तु विश्लेषण' पद्धति का उपयोग किया गया।

स्मृति ग्रंथों में वाणिज्यिक संप्रत्यय :– बृहस्पति स्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में विद्यमान वाणिज्यिक संप्रत्ययों का विस्तृत वर्णन अधोलिखित है–

बृहस्पति स्मृति में वाणिज्यिक संदर्भ

महर्षि बृहस्पति द्वारा विरचित बृहस्पति स्मृति का श्री रङ्गास्वामीशर्मणा द्वारा किए गए भाष्य को लिया गया है साथ ही बार्हस्पत्य सूत्रम् एवं बर्हस्पत्य राज्य–व्यवस्था का क्रमशः प्रो. भगवद् दत्त एवं डॉ. राघवेन्द्र वाजपेयी द्वारा किये गये भाष्य का भी प्रणयन किया गया है। बृहस्पति स्मृति में विद्यमान वाणिज्यिक संप्रत्ययों जैसे करनीति, धर्मानुकूल एवं लोकहित के लिए कर, क्रमिक कर वृद्धि का सिद्धांत, कोश–धन (शुल्क, शबल तथा कृष्ण), आय (पूर्ववत्सर शेष तथा वर्तमानाब्द संभव) तथा वित्त विभागीय अनुशासन तथा परिहापण संबंधी सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन किया गया है–

करनीति : महर्षि बृहस्पति का मत है कि कर धर्मानुकूल हो तथा उसका प्रथम और अन्तिम उद्देश्य लोकहित होना चाहिए। राजस्व का सबसे बड़ा साधन इसे माना है और उसके विनिश्चय एवं वसूली करने का भी माप–दण्ड होना चाहिए। उसके निर्धारण एवं संग्रह के लिए उनका मत है कि देश, भूमि और प्रजा तीनों की ही स्थिति का विचार किया जाये तथा उसकी वसूली अवस्था के अनुरूप षडमासिक या वार्षिक होनी चाहिए।

देशस्थित्या बलिं दद्युर्भूतं षण्मासवार्षिकम्।
एष धर्मः समाख्यातः कीनाशानां पुरातनः।। (बृ.स्मृ. व्या.का. 1.44)

कर वृद्धि के सिद्धान्त का वर्णन करते हुए महर्षि बृहस्पति ने कहा है कि–

तथैव ते पालनीयाः प्रजा प्रक्षुभ्यतेऽन्यथा।
जनापरक्तिर्भवति बलं कोशश्च नश्यति।। (बृ.स्मृ.व्या.का. 1.127)

आचार्य बृहस्पति क्रमिक कर वृद्धि अर्थात् धीरे–धीरे कर बढ़ाने की नीति के पक्षपाती हैं ताकि कर के अभाव में कोश भी कम न हो और कर की अधिकता के कारण जनता में उद्वेग भी न हो।

कोश–धन : महर्षि बृहस्पति कोश को ही समस्त क्रियाओं का मूल स्त्रोत मानते हैं और धन प्राप्ति के सभी न्यायोचित मार्गों का अनुमोदन करते हैं–

धन मूलाः क्रियाः सर्वाः। सर्वा यत्नास्तत्साधने मताः।। (वृ. स्मृ. व्य. का. 7.1)

महर्षि बृहस्पति ने धन के प्रकार को बताते हुए कहा है–

तत्पनस्त्रिविधं ज्ञेयं शुल्कं शबलमेव च।
कृष्णं च तत्र विज्ञेयः प्रभेदः सप्तधा पुनः।। (वृ.स्मृ.व्या.का. 7.2)

उनके अनुसार कोश वृद्धि के तीन स्वरूप हो सकते हैं शुक्ल, शबल तथा कृष्ण। तीनों स्वरूपों का विस्तार करते हुए प्रथम कोश शुक्ल के स्वरूप का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है–

श्रुतशौर्यतपःकन्याशिष्ययाज्यान्वयागतम्।
धनं सप्तविधं शुल्कमुभयो ह्यस्य तद्विधः।। (वृ.स्मृ.व्या.का. 7.3)

धन के शुल्क स्त्रोत के अंतर्गत श्रुत, शौर्य, तप, कन्या, शिष्य एवं याज्य द्वारा प्राप्त धन की गणना की जाती थी।

कुसीदकृषिवाणिज्य–शुल्कशिल्पानुवृत्तिभिः।
कृतोपकारादाप्तं च शबलं समुदाहृतम्।। (वृ.स्मृ.व्या.का. 7.4)

द्वितीय प्रकार के धन के स्त्रोत को शबल धन कहा है जिसमें कुसीद, कृषि, वाणिज्य, शुल्क, शिल्पि, उपकार के प्रतिरूप प्राप्त तथा आप्त धन के स्त्रोतों से प्राप्त धन की गणना होती थी।

पाशकद्यूतदूतार्थप्रतिरूपकसाहसैः।
व्याजेनोपार्जितं यच्च तत्कृष्णं समुदाहृतम्।। (वृ.स्मृ.व्या.का. 7.5)

तीसरे प्रकार के धन के स्त्रोत को कृष्ण धन कहा है इसके अन्तर्गत पाशक, द्यूत, दूतार्थ, प्रतिरूपक, साहस तथा ब्याज या धोखे से प्राप्त धन की गणना किया जाता था। इस वर्गीकरण को देखने से प्रतीत होता है कि प्रथम प्रकार का धन ब्राह्मण को तथा दूसरे और तीसरे प्रकार का धन क्षत्रिय अथवा राजा को प्राप्त होता रहा होगा (वाजपेयी, 1966)। महर्षि बृहस्पति ने धन के अन्य स्त्रोतों का वर्णन करते हुए कहा–

क्रमागतं प्रीतिदायं प्राप्तं च सह भार्यया।

अविशेषेण सर्वेषां वर्णानां त्रिविधं स्मृतम्।। (वृ.स्मृ.व्या.का. 7.9)

धन के अन्य तीन स्त्रोत हैं क्रमागत, प्रीतिदाय तथा भार्या तथा इन तीनों प्रकार के वर्णों से बिना भेद के उपलब्ध होने वाला धन को अविशेषेण की संज्ञा दी है। बृहस्पति स्मृति में वैशेषिक धन का भी वर्णन प्राप्त होता है जिसकी गणना राजकीय वित्त व्यवस्था में की जाती थी।

त्रिविधं क्षत्रियस्यापि प्राहुर्वेशेषिकं धनम्।

युद्धोपलब्धं करतो दण्डाच्च व्यवहारतः।। (वृ.स्मृ.व्या.का. 7.11)

महर्षि बृहस्पति ने कहा कि क्षत्रिय का धन वैशेषिक धन युद्धों से प्राप्त, कर के रूप में प्राप्त धन तथा न्यायसभा में अर्थ दण्ड के रूप में प्राप्त धन होता था।

आकृति 1 : कोश–धन

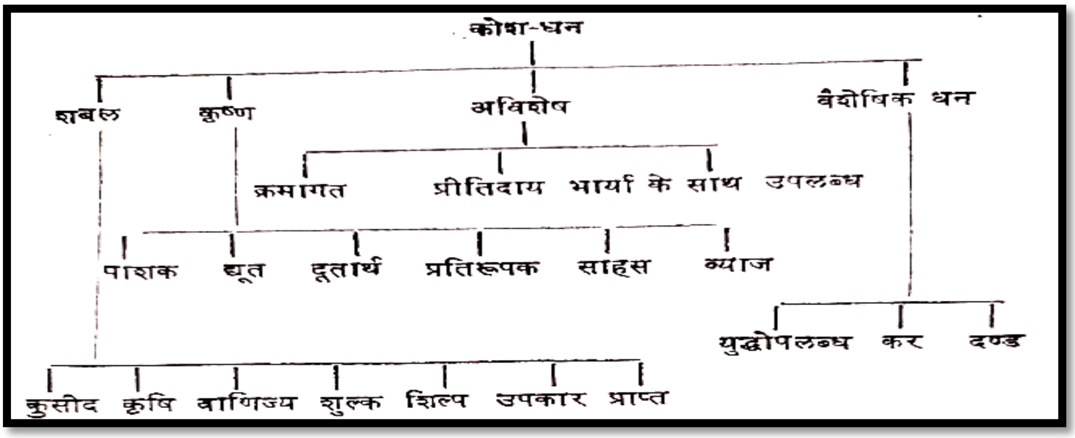

(स्त्रोत : वाजपेयी, 1966)

महर्षि बृहस्पति ने राजकोश की आय में वृद्धि करने वाले धन के स्त्रोतों का विस्तृत वर्णन आकृति क्रमांक 1 में किया है जो चार प्रकार के हैं– शबल, कृष्ण, अधिशेष तथा वैशेषिक धन। उक्त सभी प्रकार से धन सीधे राजा को प्राप्त होते हैं जिन्हें राजकोश की वृद्धि का साधन माना है। शुल्क के संबंध में महर्षि बृहस्पति का विचार है कि शुल्क स्थान पर पहुंच कर देना चाहिए–

शुल्कस्थानं वणिक्प्राप्तः शुल्कं दद्याद्यथोचितम्। न तद्व्यभिचरेद्राज्ञां बलिरेष प्रकीर्तितः।।

नैवं तस्कर‌राजाग्निव्यसने समुपस्थिते। यस्तु खशक्त्या रक्षेत्तु तस्यांशो दशमः स्मृतः।।

–(बृ.स्मृ.व्या.का.13.12–13)

उनका मत है कि व्यापार की राजकीय मान्यता करने के उद्देश्य से वणिक को नगर द्वार पर यथोचित स्थान पर पहुंच कर यथोचित शुल्क देना चाहिए, उससे बचना नहीं चाहिए, क्योंकि वह राजा का अधिकार है, ताकि राजा अपने शक्ति से तस्करों से रक्षा कर सके। इसलिए वणिक राज्य को दसवां अंश प्रदान करे। महर्षि बृहस्पति ने इस प्रकार के शुल्क को भी राजकीय आय का स्त्रोत माना है।

लेखांकन के संबंध में महर्षि बृहस्पति का मत :–

ऋणादिकेऽपि समये भ्रान्तिः सञ्जायते यतः।

धात्राऽक्षराणि सृष्टानि पत्रारूढान्यतः पुरा।। (बृ.स्मृ.व्या.का. 6.2)

महर्षि बृहस्पति कहते हैं कि ऋण आदि के अनुबंधन में भ्रांतिया उत्पन्न हो जाती हैं। अतः ब्रह्मा ने पत्रारूढ़ अक्षरों की सृष्टि की थी यानि पत्रों पर लिखने की प्रेरणा दी थी।

देशाचारयुतं वर्षमासपक्षादिवृद्धिमत्।

ऋणिसाक्षिलेखकानां हस्ताङ्कं लेख्यमुच्यते।। (बृ.स्मृ.व्या.का. 6.3)

लेखांकन को परिभाषित करते हुए महर्षि बृहस्पति का कथन है कि देश में प्रयुक्त वर्णों में लिखा गया, ऋणी, साक्षी के हस्ताक्षर से युक्त तथा वर्ष पक्ष मास के अनुसार वृद्धि (ब्याज) होने वाला पत्र लेख्य कहलाता है।

राज्यलेख्यं स्थानकृतं स्वहस्तलिखितं तथा।
लेख्यं तत्त्रिविधं प्रोक्तं भिन्नं तद्वहुधा पुनः।। (बृ.स्मृ.व्या.का. 6.4)

लेखांकन का भेद करते हुए महर्षि बृहस्पति ने कहा कि लेख्य मुख्यतः तीन प्रकार के हैं राजलेख्य, स्थानकृत तथा स्वहस्त लिखित, जो बहुत प्रकार के हो जाते हैं।

भागदानक्रयाधीनां संविद्दासऋणादिभिः।
सप्तधा लौकिकं लेख्यं त्रिविधं राजसासनम्।। (बृ.स्मृ.व्या.का. 6.5)

त्याग, दान, क्रय, आधि. संवित, दास, ऋण सात प्रकार के लैकिक लेख्य है।

संविदुद्दामलेख्यं च जयपत्रकमेव च।
सन्धिपत्रं तथैवैतत् क्रियाभेदादनेकधा।। (बृ.स्मृ.व्या.का. 6.8)

और तीन प्रकार के राज शासन के लेख्य बताते हैं– दान शासन, प्रसाद लिखित तथा जयपत्र। इस प्रकार से लेख्यों का विस्तार से वर्णन करते हुए दान लेख्य, भाग लेख्य, सीमा लेख्य, क्रय लेख्य, दास लेख्य आधि लेख्य इत्यादि प्रत्येक विभागों से संबंधित लेख्य लिखने का निर्देश किया है।

बृहस्पति स्मृति में वाणिज्यिक संप्रत्ययों का विस्तृत वर्णन विद्यमान है जिसमें से कर, कोश–धन, लेखाकंन का वर्णन किया गया है जिसके उपरान्त वित्त, ऋण, आधि (संपत्ति), प्रतिभू, उपनिधि, क्रय–विक्रय इत्यादि संप्रत्यय भी विद्यमान हैं जिनका उल्लेख यहां पर शब्द और समय की मर्यादानुरूप संभव नहीं हो सका है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में वाणिज्यक संप्रत्यय

याज्ञवल्क्य स्मृति महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा विरचित जिस पर विज्ञानेश्वर, डॉ उमेश चन्द्र पाण्डेय एवं श्री नरायण मिश्र द्वारा सन् 1967 में प्रकाशित भाष्य को लिया गया है। जिसमें विद्यमान वाणिज्यिक संप्रत्यों जैसे ब्याज एवं ब्याज की दर, ऋण एवं ऋण भुगतान तथा ऋण वापसी, प्रतिभू एवं उपनिधि संबंधी नियम, कोश विधि क्रय एवं क्रय मूल्य इत्यादि का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

ब्याज संबंधी नियम :

आशीतिभागो वृद्धि म्यान्मासि मासि सयन्धके।
वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुष्पञ्चकमन्यथा।। (याज्ञ.स्मृ. 2.3.37)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने ब्याज के संबंध में मत स्पष्ट करते हुए कहा कि बन्धक रखे हुए धन पर उसका अस्सीवां भाग प्रत्यव माप से ब्याज होता है। अन्यथा (बन्धक न होने पर) वर्ण के अनुसार (ब्राह्मण आदि से क्रमशः) दो प्रतिशत, तीन प्रतिशत, चार और पांच प्रतिशत ब्याज लेना चाहिए। इसी प्रकार अत्याधिक लाभ के ऋण लेने वालों के लिए निर्देश किया कि–

कान्तारगास्तु दशकं सामुद्रा विंशकं शतम्।
दद्युर्वा स्वकृतां वृद्धिं सर्वे सर्वासु जातिषु।। (याज्ञ.स्मृ. 2.3.38)

महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि अधिक लाभ के लिए ऋण लेकर गहन वन में जाने वाले से दस प्रतिशत और समुद्र की यात्रा करने वाले से बीस प्रतिशत वृद्धि (ब्याज) लेना चाहिए। अथवा सभी जातियों के लिए जो जितनी वृद्धि (ब्याज) देना स्वीकार करे उतनी दे।

सन्ततिस्तु पशुस्त्रीणां रसस्याष्टगुणा परा।
वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणा परा।। (याज्ञ. स्मृ. 2.3.39)

पशु और स्त्री के लिए ऋण संबंधी उल्लेख करते हुए कहा कि उनकी संतान ही वृद्धि (ब्याज) होती है। रस (तेल, घृत आदि) लेने पर उसकी वृद्धि स्वीकृत वृद्धि से अधिक से अधिक आठ गुना हो सकती है। वस्त्र, धान्य और सोने की वृद्धि अधिक से अधिक क्रमशः चौगुनी, तिगुनी या दुगुनी होती है।

ऋण वापसी संबंधी नियम :

प्रपन्नं साधयन्नर्थं न वाच्यो नृपतेर्भवेत्।
साध्यमानो नृपं गच्छन्दण्डयो दाप्यश्च तद्धनम्।। (याज्ञ. स्मृ. 2.3.40)

महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि दिये गये धन को धर्मपूर्वक लेने का प्रयत्न करने वाले के बीच में राजा दखल न दे। यदि वह उसके लिये राजा के समीप निवेदन करता है तो दण्ड होता है और राजा को धनी का धन दिला देना चाहिए।

गृहीतानुक्रमाद्दाप्यो धनिनामधर्णिकः।

दत्त्वा तु ब्राह्मणायैव नृपतेस्तदानन्तरम्।। (याज्ञ. स्मृ. 2.3.41)

ऋण भुगतान में जाति का विचार करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा कि समान जाति के धनियों में जिस क्रम से जिसका–जिसका धन लिया हो उसको उसी क्रम में ऋणी से भुगतान कराए। यदि भिन्न जाति के ऋणदाता हों तो पहले ब्राह्मण का धन भुगतान करा कर तब क्षत्रिय आदि का भुगतान कराए।

राज्ञाऽधमर्णिको दाप्यः साधिताद् दशकं शतम्।

पञ्चकं च शतं दाप्यः प्राप्तार्थो ह्युत्तमर्णिकः।। (याज्ञ. स्मृ. 2.3.42)

ऋण का भुगतान कराने में राजा के अंश का विचार करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा कि यदि राजा ऋणी से वसूल करके ऋणदाता का धन भुगातान करावे तो ऋणी से दस प्रतिशत और धन पाने वाले धनी से पांच प्रतिशत भृत्ति (पारिश्रमिक) रूप में ले।

अविभक्तैः कुटुम्बार्थे यदृणं तु कृतं भवेत।

दद्युस्तद्रिक्थिनः प्रेते प्रोषिते वा कुटुम्बिनि।। (याज्ञ. स्मृ. 2.3.45)

ऋणी की मृत्यु हो जाने पर महर्षि याज्ञवल्क्य ने ऋण भुगतान के लिए कहा है कि संयुक्त परिवार में रहने वाले अनेक व्यक्तियों या एक व्यक्ति द्वारा जो ऋण कुटुम्ब के पालन के लिये लिया गया हो, उसे उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके सभी उत्तराधिकारी जो सम्पत्ति के भागीदार हैं सभी मिलकर भुगतान करें।

न योषित्पतिपुत्राभ्यां न पुत्रेण कृतं पिता।

दद्यादृते कुटुम्बार्थन्न पतिः स्त्रीकृतं तथा।। (याज्ञ. 2.3.46)

जो ऋण कुटुम्ब के भरणपोषण के लिये नहीं लिया गया हो किसी अन्य प्रयोजन से लिया गया हो उसके संबंध में महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि ऐसे पति द्वारा लिए गए ऋण को स्त्री न लैटाये, पुत्र द्वारा लिये गये ऋण को माता न भरे, पिता न भुगतान करे और पत्नी द्वारा लिये गये ऋण को पति लौटाने का अधिकारी नहीं होता।

गोपशौण्डिकशैलूषरजकव्याधयोषिताम्।

ऋणं दद्यात्पतिस्तेषां यस्माद्वृत्तिस्तदाश्रया।। (याज्ञ.स्मृ.2.3.48)

स्त्रियों द्वारा लिया गया ऋण के संबंध में महर्षि याज्ञवल्क्य ने गोप (अहीर, ग्वाले), कलारी (सुराकार), नट, रंगरेज और बहेलिया की स्त्रियों द्वारा लिये गये ऋण का भुगतान उनके पति करें क्योंकि उनकी जीवनवृत्ति स्त्रियों के ही अधीन होती है।

प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या वा सह यत्कृतम्।

स्वयंकृतं वा यदृणं नान्यत्स्त्री दातुमर्हति।। (याज्ञ.स्मृ.2.3.49)

स्त्री द्वारा देय ऋण के संबंध में महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा कि मरणासन्न या विदेश जाने वाले पति द्वारा लिये गये या पति के साथ लिये गये ऋण को अथवा स्वयं लिये गये ऋण को ही स्त्री लौटा सकती है अन्य ऋणों को नहीं।

पितरि प्रोषिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेऽपि वा।

पुत्रपौत्रैरृणं देयं निह्नवे साक्षिभावितम्।। (याज्ञ.स्मृ.2.3.50)

पुत्र और पौत्र द्वारा देय ऋण का भुगतान के संबंध में पिता के प्रदेश जाने पर, मर जाने पर या व्यसन में असाध्य रोग से पीड़ित होने पर पुत्र और पौत्र उसके द्वारा लिया गया ऋण भुगतान करे। यदि वे अस्वीकार करें तो साक्षियों द्वारा प्रमाणित होने पर भुगतान करने का निर्देश महर्षि ने किया है।

रिक्थग्राह ऋणं दाप्यो योषिद्ग्राहस्तथैव च।

पुत्रोऽनन्याश्रितद्रव्यः पुत्रहीनस्य रिक्थिनः।। (याज्ञ.स्मृ. 2.3.51)

रिक्य (संपत्ति का भाग) लेने वाले (संपत्ति के स्वामी द्वारा लिये गये) ऋण का भुगतान करें। स्त्री को ग्रहण करने वाला उसके मृत पति का लिया ऋण भी भुगतान करे। जिसका धन पुत्र के अतिरिक्त अन्य

को न मिला हो उसका ऋण पुत्र भुगतान करे और पुत्रहीन ऋणी का धन उसकी संपत्ति का भाग लेने वाले चुकावें।

प्रतिभाग संबंधी नियम :

दर्शने प्रत्यये दाने प्रातिभाव्यं विधीयते।
आद्यौ तु वितथे दाप्यावितरस्य सुता अपि।। (याज्ञ. स्मृ. 2.3.53)

प्रतिभाग (साक्षी) के संबंध में महर्षि याज्ञवल्क्य ने निर्देश किया है कि दर्शन (दिखा देना), प्रत्यय (विश्वास दिलाना) और दान (स्वयं देने की प्रतिज्ञा) को प्रतिभाव्य (प्रतिभू या जामिन होना) कहते हैं। प्रथम दो प्रकार का प्रातिभाव्य करने वाले झूठा पड़े तो राजा उनमें से धनी व्यक्ति का धन भुगतान करें, तीसरे प्रकार का प्रत्तिभाव्य करने वाले के झूठा पड़ने पर उसके पुत्रों से भी वह धन वसूल करे।

दर्शनप्रतिभूर्यत्र मृतः प्रात्ययिकोऽपि वा।
न तत्पुत्रा ऋणं दद्युर्दद्युर्दानाय यः स्थितः।। (याज्ञ. स्मृ. 2.3.54)

यदि दर्शन प्रतिभू या प्रत्यय प्रतिभू की मृत्यु हो गयी हो तो उसके पुत्रों से ऋण का भुगतान न कराएं, किंतु दान प्रतिभू के मरने पर उसके पुत्र से ही धनी का धन भुगतान कराएं।

बहवः स्युर्यदि स्वांशैर्दद्युः प्रतिभुवो धनम्।
एकच्छायाश्रितेष्वेषु धनिकस्य यथारुचि।। (याज्ञ.स्मृ. 2.3.55)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने अनेक प्रतिभू द्वारा ऋण भुगतान संबंधी नियम के लिए कहा है कि यदि अनेक प्रतिभू हैं तो वे सभी ऋण को आपस में बांटकर अपना–अपना अंश भुगतान करें और यदि अनेक प्रतिभू (जामिनों) में सभी ऋणी के समान होकर पूरा धन देने को उद्यत हों तो धनी अपनी इच्छा के अनुसार किसी एक से ऋण का भुगतान करा ले।

बन्धक संबंधी नियम :

आधिः प्रणश्येद् द्विगुणे धने यदि न मोक्ष्यते।
काले कालकृतो नश्येत्फलभोग्यो न नश्यति।। (याज्ञ. स्मृ. 2.3.58)

बन्धक रखी वस्तु के प्रगट होने का समय यदि कालक्रम से ब्याज द्वारा बढ़कर ऋण के दूना हो जाने पर बन्धक रखे हुए द्रव्य को न छुड़ाये तो वह अपने समय से प्रणष्ट हो जाता है (उस पर ऋणों का अधिकार नहीं रह जाता) किन्तु जिस आधि (बन्धक संपत्ति) का फल धनी व्यक्ति को मिलता हो तो उस पर से बन्धक रखने वाले का अधिकार समाप्त नहीं होता है।

ब्याज न देने की स्थितियां :–

गोप्याधिभोगे नो वृद्धिः सोपकारे च हापिते।
नष्टो देयो विनष्टश्च दैवराजकृतादृते।। (याज्ञ.स्मृ. 2.3.59)

वृद्धि पर रखी गई गोप्य आधि का उपभोग किये जने पर वृद्धि (ब्याज) का भुगतान नहीं करना चाहिए, उपकारक आधि (बैल आदि) में हानि होने पर भी वृद्धि (ब्याज) का भुगतान न करे। दैव और राजोपद्रव के बिना ही बन्धक रखी हुई वस्तु नष्ट हो जाये या खो जाये तो बन्धक रखी हुई वस्तु के समान वस्तु का भुगतान करने का निर्देश किया गया है।

बन्धक वापस न देने पर दण्ड का निर्देश :

उपस्थितस्य मोक्तव्य आधिः स्तेनोऽन्यथा भवेत्।
प्रयोजकेऽसति धनं कुले न्यस्याधिं आप्नुयात्।। (याज्ञ.स्मृ. 2.3.62)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा कि यदि ऋणी बन्धक छुड़ाने के लिए आए तो उसकी बन्धक रखी वस्तु दे देनी चाहिए। ब्याज के लोभ से टालना नहीं चाहिए अन्यथा चोर के समान दण्ड का भागी होता है। जिसके पास बन्धक रखा हो उसके अनुपस्थित होने पर ब्याज सहित धन उसके कुल के किसी दूसरे व्यक्ति को सौंप कर बन्धक ऋणी द्वारा प्राप्त कर लेना चाहिए।

तत्कालकृतमूल्यो वा तत्र तिष्ठेदवृद्धिकः।

विना धारणकाद्वापि विक्रीणीत ससाक्षिकम्।। (याज्ञ.स्मृ. 2.3.63)

अथवा उस बन्धक का उस समय जितना मूल्य लगता हो वह कह कर बिना ब्याज के ही बन्धक को वहीं रहने दे (उसके बाद उसकी वृद्धि नहीं होती)। यदि ऋण का धन दूना हो जाये तो बिना ऋणी के भी साक्षियों के समक्ष उस बन्धक की वस्तु को धनी बेच सकता है।

लेखाकंन संबंधी नियम :–

यः कश्चिदर्थो निष्णातः स्वरुच्या तु परस्परम्।
लेख्यं तु साक्षिमत्कार्यं तस्मिन्धनिकपूर्वकम्।। (याज्ञ.स्मृ. 2.6.84)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने लेखाकंन के विषय में बताते हैं कि जब धनी और अधमर्ण (ऋणी) में अपनी इच्छा से परस्पर कोई बात तय हुई हो (जैसे ऋण भुगतान का समय, वृद्धि की दर आदि) को साक्षियों के सामने उसे लिख देना चाहिए। लेख में धनिक (ऋणदाता) का उल्लेख करना चाहिए।

समामासतदर्धाहर्नामजातिस्वगोत्रकैः।
सब्रह्मचारिकात्मीयपितृनामादिचिह्नितम्।। (याज्ञ.स्मृ. 2.6.85)

लेख्य में व्यक्ति और समय का विस्तृत लेखन के लिए महर्षि ने कहा है कि किसी भी लेख्य में वर्ष, मास, पक्ष, दिन, नाम, जाति और गोत्र के साथ लिखना चाहिए तथा बह्वृच आदि वेद की शाखा और अपने पिता का नाम लिखना चाहिए।

समाप्तेऽर्थे ऋणी नाम स्वहस्तेन निवेशयेत्।
मतं मेऽमुकपुत्रस्य यदत्रोपरि लेखितम्।। (याज्ञ.स्मृ. 2.6.86)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने ऋणदाता और ऋणी साक्षियों और लेखक के हस्ताक्षर के संबंध में कहा कि ऋणदाता और ऋणी में तय हुई बात लिखने के उपरान्त ऋणी अपने हाथ से अपना नाम लिखे और यह भी लिखे कि अमुक के पुत्र द्वारा ऊपर लिखी हुई बात मुझको स्वीकार है।

साक्षिणश्च स्वहस्तेन पितृनामकपूर्वकम्।
अत्राहममुकः साक्षी लिखेयुरिति ते समाः।। (याज्ञ.स्मृ. 2.6.87)

साक्षी लोग भी अपने हाथ से अपने पिता के नाम के साथ अपना नाम लिखे कि इस समय मैं अमुक के यहां साक्षी के रूप में उपस्थित हूं। साक्षियों की संख्या सम होनी चाहिए।

उभयाभ्यर्थितेनैतन्मया ह्यमुकसूनुना।
लिखितं ह्यमुकेनेति लेखकोऽन्ते ततो लिखेत्।। (याज्ञ.स्मृ. 2.6.88)

तब अन्त में लेखन लिखे कि धनिक और ऋणी दोनों की प्रार्थना से अमुक के पुत्र अमुक नाम को मैंने यह लेख लिखा। इसप्रकार लेखांकन संबंधी सभी प्रक्रिया को पूरा कर लेने के उपरान्त एक लेख्य पूर्ण माना जाता है।

ऋणं लेख्यकृतं देयं पुरुषैस्त्रिभिरेव तु।
आधिस्तु भुज्यते तावद्यावत्तन्न प्रदीयते।। (याज्ञ.स्मृ. 2.6.90)

महर्षि याज्ञवल्क्य का मत है कि कोई भी लिखा गया ऋण संबंधी लेख्य तीन पीढ़ी तक ही देय होता है और आधि (बन्धक संपत्ति) का भोग उस समय तक किया जा सकता है जब तक कि ऋण न लौटाया जाए।

दूसरा लेख लिखने की स्थिति :

देशान्तरस्थे दुर्लेख्ये नष्टोन्मृष्टे हृते तथा।
भिन्ने दग्धेऽथवा छिन्ने लेख्यं अन्यत्तु कारयेत्।। (याज्ञ.स्मृ. 2.6.91)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा कि दूसरा लेख तभी लिखना चाहिए जब लेख के कहीं दूसरे देश में छूट जाए, पढ़ने योग्य न रह जाए, खो जाए, मिटजाए, चोरी हो जाए, गल जाए, जल जाए अथवा फट जाए तभी दूसरा लेख बनवाना चाहिए।

संदिग्ध लेख्य की शुद्धि :

संदिग्धलेख्यशुद्धिः स्यात्स्वहस्तलिखितादिभिः।

युक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसंबन्धागमहेतुभिः।। (याज्ञ.स्मृ. 2.6.92)

लेख्य के विषय में संदेह हो तो अपने हाथ से लिखे हुए लेख्य से युक्तिप्राप्ति (इस देश में इस समय पर इस व्यक्ति पर इतना द्रव्य होता है) क्रिया (उसके साक्षी का उपन्यास), चिह्न (श्रीकार आदि) संबंध (धनी और ऋणी का पहले का पारस्परिक संबंध) और आगम (द्रव्यप्राप्ति का उपाय) हेतुओं से शुद्धि करनी चाहिए।

ऋण भुगतान पर उपगत :

लेख्यस्य पृष्ठेऽभिलिखेद्दत्त्वा दत्त्वार्णिको धनम्।
धनी वोपगतं दद्यात्स्वहस्तपरिचिह्नितम्।। (याज्ञ.स्मृ. 2.6.93)

ऋण भुगतान करते समय ऋणी धन देकर लेख्य के पीछे लिख दिया करे। धनी भी धन प्राप्त करे अपना हस्ताक्षर करके उपगत (प्राप्तिपत्र, रसीद) देवे।

दत्त्वार्णं पाटयेल्लेख्यं शुद्ध्यै वाऽन्यत्तु कारयेत्।
साक्षिमच्च भवेद्यद्वा तद्दातव्यं ससाक्षिकम्।। (याज्ञ.स्मृ. 2.6.94)

ऋण देकर लेख को काट दे अथवा ऋणी की भिवृत्ति के लिए धनी दूसरा लेख्य लिखाये। जो ऋण साक्षियों के सामने लिखा गया हो उसे उन्हीं साक्षियों के सामने ही लौटाना चाहिए।

अस्वामिविक्रय संबंधी लक्षण :

स्वं लभेतान्यविक्रीतं क्रेतुर्दोषोऽप्रकाशिते।
हीनाद्रहो हीनमूल्ये वेलाहीने च तस्करः।। (याज्ञ.स्मृ. 2.11.168)

अस्वामिविक्रय (अन्य की वस्तु का विक्रय) के संबंध में महर्षि ने कहा है कि अपनी वस्तु किसी दूसरे के पास बेची हुई देखें तो उसे ले लें। चोरी छिपे क्रय करने में क्रेता को दोष होता है। हीन (जिसके पास वह वस्तु सामान्यतः नहीं होनी चाहिए) व्यक्ति से एकान्त में क्रय मूल्य पर और अयुक्त समय पर (रात्रि में) खरीदे तो क्रेता चोर होता है।

नष्टापहृतमासाद्य हर्तारं ग्राहयेन्नरम्।
देशकालातिपत्तौ च गृहीत्वा स्वयमर्पयेत्।। (याज्ञ.स्मृ. 2.11.169)

अपनी खोई हुई या चोरी गई हुई वस्तु बेचते हुए देखे तो उसके विक्रेता को पकड़वाये, यदि उसके कहीं भाग जाने या देर होने की आशंका हो तो स्वयं पकड़ कर स्थानपाल के पास ले जावे।

विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिः स्वामी द्रव्यं नृपो दमम्।
क्रेता मूल्यमवाप्नोति तस्माद्यस्तस्य विक्रयी।। (याज्ञ.स्मृ. 2.11.170)

यदि ऐसी वस्तु को बेचने वाला अपने पूर्व के विक्रेता को दिखला दे तो वह छूट जाता है। राजा इस विक्रेता से स्वामी को वस्तु दिलावे क्रेता अपना मूल्य उस व्यक्ति से प्राप्त कर लेता है जिसने उसे पहले बेचा हो।

आगमेनोपभोगेन नष्टं भाव्यमतोऽन्यथा।
पञ्चबन्धो दमस्तस्य राज्ञे तेनाविभाविते।। (याज्ञ.स्मृ. 2.11.171)

आगम (लेख) और उपभोग द्वारा खोई हुई वस्तु पर अपने स्वत्व को प्रमाणित करे, अन्यथा प्रमाणित न कर सकने पर वस्तु के मूल्य का पञ्चमांश राजा दण्ड के रूप में उससे वसूल करे।

वेतन संबंधी नियम :

गृहीतवेतनः कर्म त्यजन्द्विगुणमावहेत्।
अगृहीते समं दाप्यो भृत्यै रक्ष्य उपस्करः।। (याज्ञ.स्मृ. 2.16.193)

वेतनादि का लक्षण बताते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा कि वेतन लेकर काम छोड़ देने वाले से दूना वेतन स्वामी को दिलवाना चाहिए। बिना वेतन लिए ही कार्य करना स्वीकार करके न करे तो वेतन के बराबर धन वसूल करना चाहिए। वे भृत्य भी उपस्करण (हल आदि औजार की) यत्नपूर्वक रक्षा करे।

दाप्यस्तु दशमं भागं वाणिज्यपशुसस्यतः।
अनिश्चित्य भृतिं यस्तु कारयेत्स महीक्षिता।। (याज्ञ.स्मृ. 2.16. 194)

भृत्यों को लाभांश (बोनस) का विधान करते हुए कहा है कि जो भृत्ति ठहराये बिना भृत्यों से कार्य लेता है व्यापार, पशुपालन या खेती का काम लेता है उससे राजा तक्षत् कार्यों से होने वाले लाभ का दसवां भाग भृत्यों को दिलावे।

देशं कालं च योऽतीयाल्लाभं कुर्याच्च योऽन्यथा।

तत्र स्यात्स्वामिनश्छन्दोऽधिकं देयं कृतेऽधिके।। (याज्ञ.स्मृ. 2.16.195)

जो भृत्य (व्यापार योग्य) स्थान और समय का उल्लंघन करके लाभ के स्थान पर हानि कराता है तो उसके वेतन के विषय में स्वामी अपने इच्छानुसार करे, किन्तु जब देश और समय के ज्ञान से वह अधिक लाभ कराता है तो उसे वेतन से अधिक धन देना चाहिए।

यो यावत्कुरुते कर्म तावत्तस्य तु वेतनम्।
उभयोरप्यसाध्यं चेत्साध्ये कुर्याद्यथाश्रुतम्।। (याज्ञ.स्मृ. 2.16.196)

यदि एक ही कार्य को दो भृत्य करें और (व्याधि एवं आधि के कारण) वह समाप्त न हो सके तो जो जितना कार्य किये हो उसी के अनुसार उसका वेतन होता है और कार्य पूरा हो जाने पर जितना बताया जाय उतना उन दोनों को देना जाहिए।

प्रक्रान्ते सप्तमं भागं चतुर्थं पथि संत्यजन्।
भृतिं अर्धपथे सर्वां प्रदाप्यस्त्याजकोऽपि च।। (याज्ञ.स्मृ. 2.16.198)

प्रस्थान के समय कार्य करके जो मार्ग में छोड़ दे तो उस भृत्य से वेतन का सातवां भाग ले और आधे मार्ग में कार्य छोड़ दे तो उससे सम्पूर्ण भृत्ति दिलानी चाहिए और जो उससे काम छोड़वाता है उससे भी सारी भृत्ति दिलावे।

राजा द्वारा मूल्य का निर्धारण :

राजनि स्थाप्यते योऽर्घः प्रत्यहं तेन विक्रयः।
क्रयो वा निःस्रवस्तस्माद्वणिजां लाभकृत्स्मृतः।। (याज्ञ.स्मृ. 2.20.251)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने मूल्य निर्धारण के लिए राजा को उत्तरदायी बताया है और कहा है कि राजा द्वारा जो मूल्य निर्धारित किया गया हो उसी मूल्य पर प्रतिदिन क्रय या विक्रय करना चाहिए। उससे जो कुछ शेष बचे वही बनियों का लाभ होता है।

स्वदेशपण्ये तु शतं वणिग्गृह्णीत पञ्चकम्।
दशकं पारदेश्ये तु यः सद्यः क्रयविक्रयी।। (याज्ञ.स्मृ. 2.20.252)

लाभ के संबंध में महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि अपने देश की वस्तु लेकर तत्काल बेचने वाला बनिया पांच प्रतिशत लाभ ले, दूसरे देश से लाकर बेचने वाले को दस प्रतिशत लाभ लेना चाहिए।

पण्यस्योपरि संस्थाप्य व्ययं पण्यसमुद्भवम्।
अर्घोऽनुग्रहकृत्कार्यः क्रेतुर्विक्रेतुरेव च।। (याज्ञ.स्मृ.2.20.253)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने मूल्य के निर्धारण का आधार प्रस्तुत करते हुए कहा कि वस्तु के उत्पादन पर होने वाला व्यय वस्तु पर स्थापित होता है अर्घा क्रेता और विक्रेता का कर्तव्य है जो अनुग्रह पर निर्भर करता है।

विक्रय संबधी विधान :

गृहीतमूल्यं यः पण्यं क्रेतुर्नैव प्रयच्छति।
सोदयं तस्य दाप्योऽसौ दिग्लाभं वा दिगागते।। (याज्ञ.स्मृ. 2.21.254)

जो विक्रेता सौदे का मूल्य लेकर सौदा खरीदने वाले को नहीं देता उससे राजा ब्याज के साथ सौदा (खरीदने वाले को) दिलावे, और यदि क्रेता दूसरे देश में आकर सौदा खरीद रहा हो तो उसे ले जाकर अपने देश में बेचने पर जितना लाभ उसे मिलता वह भी दिलावे।

विक्रीतं अपि विक्रेयं पूर्वक्रेतर्यगृह्णति।
हानिश्चेत्क्रेतृदोषेण क्रेतुरेव हि सा भवेत्।। (याज्ञ.स्मृ. 2.21.255)

यदि पहले वाला क्रेता पण्य (सौदा) न ले तो बिके हुए पण्य को भी दूसरे के हाथ बेच दे। यदि इसी बीच (जब विक्रेता दे रहा हो और क्रेता न लेता हो) उस वस्तु में क्रेता के दोष से हानि हो जाये तो उसे क्रेता को ही सहन करना होता है।

राजकृत या दैवकृत उत्पाद से हानि :–

राजदैवोपघातेन पण्ये दोषमुपागते।
हानिर्विक्रेतुरेवासौ याचितस्याप्रयच्छतः।। (याज्ञ.स्मृ. 2.21.256)

यदि क्रेता पण्य मांग रहा हो और विक्रेता उसे वह पण्य न देता हो, तथा इसी बीच राजकृत या दैवकृत उत्पात से उस वस्तु में दोष आ जावे तो यह हानि बिक्रेता की ही होती है।

क्षयं वृद्धिं च वणिजा पण्यानां अविजानता।
क्रीत्वा नानुशयः कार्यः कुर्वन्षड्भागदण्डभाक्।। (याज्ञ.स्मृ. 2.21.258)

पण्य (सौदे) की हानि और लाभ को न जानने वाले वणिक को सौदा खरीद कर उसका अनुशय (हेराफेरी) नहीं करना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है तो सौदे का पष्ठांश दण्ड के रूप में भुगतान करे।

सामूहिक व्यापार का विधान :–

समवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म कुर्वताम्।
लाभालाभौ यथाद्रव्यं यथा वा संविदा कृतौ।। (याज्ञ.स्मृ. 2.22.259)

यदि अनेक व्यापारी लाभ की इच्छा से इकट्ठे मिलकर (साझे पर) कार्य करें तो उन्हें अपनी लगाई पूंजी के अनुसार लाभ और हानि होती है अन्यथा उनमें परस्पर जैसी संविदा हुई हो उसके अनुसार लाभ या हानि का अंश मिलता है।

प्रतिषिद्धमनादिष्टं प्रमादाद्यच्च नाशितम्।
स तद्दद्याद्विप्लवाच्च रक्षितादृशमांशभाक्।। (याज्ञस्मृ. .2.22.260)

एक साथ मिलकर (साझेदारी में) व्यापार करने वालों में जो व्यक्ति निषिद्ध विक्रय, से न कहा हुआ कार्य करके अथवा प्रादवश कोई वस्तु नष्ट कर दे तो वह उस वस्तु को दे (या हानि को पूरा करे)। उनमें जो पण्य को राजा और चोर के उत्पात से सुरक्षित रखता है उसे दसवां अंश प्राप्त होता है।

देशान्तरगते प्रेते द्रव्यं दायादबान्धवाः।
ज्ञातयो वा हरेयुस्तद् आगतास्तैर्विना नृपः।। (याज्ञ.स्मृ. 2.22.264)

एक साथ मिलकर व्यापार करने वालों में यदि कोई साझेदार विदेश चला जाय या मर जाये तो उसका अंशभूत द्रव्य उसके पुत्रादि, दामाद, बान्धव या जातिवाले प्राप्त करें, अथवा देशान्तर से लौटकर वे सभी व्यापारी से ले या उनके न होने पर राजा (उसका धन) ग्रहण करे।

जिह्मं त्यजेयुर्निर्लाभं अशक्तोऽन्येन कारयेत्।
अनेन विधिराख्यात ऋत्विक्कर्षककर्मिणाम्।। (याज्ञ.स्मृ. 2.22.265)

एक साथ मिलकर काम करने वाले साझेदारों में जो जिह्म (धूर्त या बेइमान) हो उसे लाभ न देकर बाहर कर दें और जो कोई कार्य स्वयं करने में असमर्थ हो वह अपनी और से किसी दूसरे व्यक्ति से कार्य करावावे। इसी के आधार पर ऋत्विजों कृषकों और कारीगरों के विषय में भी विधि समझ लेनी चाहिए।

इस प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति के विश्लेषणोपरांत उसमें विद्यमान वाणिज्यिक संप्रत्ययों से संबंधित विशद साक्ष्य पाए गए जिनमें ऋण, ब्याज, प्रतिभू, बन्धक, क्रय–विक्रय, प्रतिभाग, मूल्य, वेतन, साझेदारी से संबंधित संप्रत्ययों का वर्णन किया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में विद्यमान उक्त सभी संप्रत्यय वर्तमान में वाणिज्य शिक्षा के पाठ्क्रम में उसी नाम से या परिवर्तित नाम से विद्यमान हैं जिनकी उपयोगिता वर्तमान में भी बनी हुई है।

शैक्षिक निहितार्थ :– उपलब्ध दस्तावेजों के विश्लेषण से विदित होता है कि बृहस्पति स्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में विद्यमान वाणिज्यिक संप्रत्ययों की व्यावहारिकता आज भी महसूस की जा सकती है। यदि बृहस्पति स्मृति में विद्यमान लेख्य के विधान की बात करें तो उसमें विभिन्न प्रकार के लेख्य पत्रों (दान लेख्य, भाग लेख्य, सीमा लेख्य, क्रय लेख्य, विक्रय लेख्य, दास लेख्य, आधि लेख्य इत्यादि) का वर्णन प्राप्त होता है। वर्तमान में इसे वाणिज्य के पाठ्यक्रम में बहियों (क्रय बही, विक्रय बही, उधार बही, नकद बही, रोकड़ बही इत्यादि) के नाम से जाना जाता है। यदि करनीति को देखें तो बृहस्पति स्मृति में क्रमिक कर वृद्धि के सिद्धांत के साथ षडमासिक अथवा वार्षिक कर के नियम का उल्लेख प्राप्त होता है। जिसकी उपस्थिति हमें आज वाणिज्य के कराधान के पाठ्यक्रम में भी क्रमिक वृद्धि यानि धीरे–धीरे कर वृद्धि और वार्षिक कराधान की प्रक्रिया को अपनाया जाता है। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति में ऋण और उसके भुगतान तथा उस पर ब्याज का विधान साथ ही बन्धक और प्रतिभूति संबंधी नियम भी समीचीन हैं, क्योंकि वर्तमान में भले ही बदलते परिवेश के अनुरूप ब्याज, बन्धक, प्रतिभूति के प्रकार तथा ऋण के स्वरूप में परिवर्तन आ गया हो, परन्तु आज भी उनमें महर्षि याज्ञवल्क्य की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। याज्ञवल्क्य स्मृति में विद्यमान साझेदारी के संप्रत्यय की बात करें तो वह भी वर्तमान में ठीक उसी प्रकार से केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद (सीबीएसई) की 12वीं की लेखाशास्त्र की पुस्तक में तथा माध्यमिक शिक्षा परिषद की वाणिज्य के पाठ्यपुस्तक में भी देखने को मिलते हैं। इसलिए यह कहना अनुचित नहीं है कि बृहस्पति स्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में विद्यमान वाणिज्यिक संप्रत्यय आज भी समीचीन हैं।

उक्त तुलनात्मक विमर्शोपरान्त कह सकते हैं कि पाठ्यचर्या विषेशज्ञों के लिये इस शोध पत्र की उपयोगिता दोनों स्मृति ग्रंथों में विद्यमान वाणिज्यिक संप्रत्ययों को पाठ्यचर्या का अंग बनाया जा सकता है उसे आज के बदलते पाठ्यवस्तु में मूल स्त्रोत के रूप में अध्ययन हेतु सम्मिलित किया जा सकता है। जिससे वाणिज्य के विद्यार्थियों को विभिन्न वाणिज्यिक संप्रत्ययों के उद्गम स्त्रोत के विषय में उनकी समझ विकसित हो सेकेगी। साथ ही वाणिज्य विषय के अध्यापकों को भी विभिन्न संप्रत्ययों की अवधारणात्मक चर्चा हेतु विश्वसनीय स्त्रोत के रूप में सहायक सामग्री प्राप्त हो सकेगी।

निष्कर्ष :– बृहस्पति स्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रणयनोपरान्त यह कह सकने में समर्थ हूं कि वार्ता की दृष्टि से परिपूर्ण ग्रंथ है। जिनमें राजकीय व्यवस्था के अंतर्गत आर्थिक व्यवस्था के सुव्यवस्थित संचालन हेतु इन दोनों स्मृति ग्रंथों में वार्ता (वाणिज्य एवं व्यापार) संबंधी संप्रत्ययों की विस्तृत रूप से चर्चा की गई है। जिसका उद्देश्य लोकहित एवं जनकल्याण से ओत–प्रोत है साथ ही इन दोनों आचर्यों ने जनकल्याणकरी नियमों का धर्मानुकूल आचरण करने की हिदायत भी दी है। महर्षि बृहस्पति ने कोश–धन के सिद्धांत का वर्गीकरण अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है प्राचीन विद्वानों में आचार्य शुक्र के अलावा ऐसा वर्गीकरण किसी अन्य ने नहीं प्रतिपादित किया है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी ऋण, ऋण के भुगतान का विधान, ऋण पर ब्याज का विधान इत्यादि को ध्यान से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वर्तमान में जिस तरह से ऋण और ब्याज संबंधी नियमों का अनुपालन हो रहा है ठीक उसी तरह का है। इस प्रकार दोनों महर्षियों द्वारा परिणत स्मृति ग्रंथों में वाणिज्यिक संप्रत्ययों की अनुकरणीयता वर्तमान में भी बनी हुई है। अन्ततः यह कह सकते हैं कि दोनों स्मृति ग्रंथों में वाणिज्य संबंधी सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। जिसे वाणिज्य शिक्षा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर पठन–पाठन का अंग बनाया जाना चाहिए। जिससे भारतीय ज्ञान परंपरा पर आधारित शिक्षा प्रणाली को बल मिल सके साथ ही विद्यार्थियों में भारतीय मनीषियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के प्रति विद्यार्थियों में भारत के गौवरवशाली परपंरा के प्रति सम्मान का भाव जागृत हो सके।

संदर्भ–सूची :–

1. आर्य, पी. (2002). स्मृतियों में राजनीति और अर्थशास्त्र. विश्वभारती अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर, वाराणसी।
2. कुमार, ए. (2016). राजा 'तत्त्व' का सूक्ष्म विश्लेषण : शुक्रनीति के विशेष संदर्भ में. इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ संस्कृत रिसर्च, 2(5), 37–40. www.anantaajournal.com
3. गुप्त, बी. (2003). हिन्दू अर्थ–चिन्तन. श्री भारती प्रकाशन, नगापुर.
4. थामस, एफ. डब्ल्यू. एवं दत्त, बी. (1921). बार्हस्पत्य सूत्रम् अर्थात् बार्हस्पत्य अर्थशास्त्रम् (भाष्य). मोती लाल बनारसी दास।
5. ममता, (2017). मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में चिन्तन के विविध धरातल. इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ सांटिफिक – इनोवेटिव रिसर्च स्टडीज, 5(2), 56–101।
6. मिश्र, वी. (2022). भारतीय परम्परा (चतुर्थ संस्.). मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
7. वाजपेयी, आर. (1966). बार्हस्पत्य राज्य–व्यवस्था. चौखम्बा विद्याभवन, वारणसी।
8. शर्मा, एम. (2016). स्मृतियों में अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त. इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ अप्लाइड रिसर्च, 2(4), 749–753. www-allresearchjournal-com
9. शर्मा, एन. (2018). इकोनॉमिक थाट्स ऑफ बृहस्पतिः ए स्टडी. इंटरनेशन जर्नल ऑफ रिसर्च इन शोसियल साइंसेस, 8(1), 1377–1395।
10. शाक्या, एस. (2014). भारतीय ज्ञान परंपरा और वाणिज्य. जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजीस एण्ड इनोवेटिब रिसर्च (जेईटीआईआर), 11(3), 476–478। www-jetir-org
11. शुक्ल, आर. के. (2021). भारतीय ज्ञान परंपरा एवं विचारक. प्रभात प्रकाशन।
12. सहाय, एस. (2000). प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास (2 सं.). मोतीलाल बनारसीदास।
13. ज्ञानेश्वर, पाण्डेय, यू. सी. एवं मिश्र, एन. (1967). याज्ञवल्क्यस्मृति (भाष्य प्रथम संस्करण). द चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
14. श्रीरङ्गास्वामीशर्मणा, (1998). बृहस्पतिस्मृतिः (भाष्य). राजकीय प्राच्य विद्या विमर्शशाला, बड़ोदा।

प्रगतिवादी कविता में स्त्री : वस्तु से विषय बनने की प्रक्रिया

अनुज यादव*

डॉ. कमलेश कुमारी**

शोध सार :– प्रगतिवाद हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण आंदोलन रहा है, जिसका उद्देश्य सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विषमताओं के विरुद्ध स्वर उठाना था। इस आंदोलन ने स्त्री की स्थिति को भी एक महत्वपूर्ण विमर्श का केंद्र बनाया। प्रगतिवादी साहित्यकारों ने स्त्री को केवल शोषित पात्र नहीं बल्कि एक संवेदनशील, स्वाभिमानी और स्वतंत्र विचारधारा की प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया। यथार्थपरक दृष्टिकोण अपनाते हुए उन्होंने स्त्री जीवन की जटिलताओं, पारिवारिक बंधनों, सामाजिक दबावों और आर्थिक निर्भरता के मुद्दों को साहित्य में प्रमुखता से स्थान दिया।केदारनाथ, अग्रवाल, सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, त्रिलोचन आदि लेखकों ने अपने साहित्य में स्त्री के संघर्ष, चेतना और आत्मसम्मान को उजागर किया। यह शोध पत्र प्रगतिवादी साहित्य में स्त्री की चित्रण शैली, उसकी सीमाएँ और संभावनाओं का विश्लेषण करता है तथा यह समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार प्रगतिवाद ने स्त्री विमर्श की आधारशिला रखी।

बीज शब्द :– प्रगतिवाद, स्त्री विमर्श, हिंदी साहित्य, सामाजिक चेतना, यथार्थवाद, स्त्री स्वतंत्रता, साहित्यिक आंदोलन, लैंगिक असमानता, प्रेमचंद,सामाजिक यथार्थ, बहु विवाह, सती प्रथा, समाजवादी राज्य, प्रतीकात्मकता।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति में स्त्री को अत्यंत उच्च स्थान दिया गया है। 'यत्र नारी पूज्यंते' की अवधारणा प्राचीन काल से हमारे देश में विद्यमान रही है। हिंदी काव्य में, आदिकाल से होते हुए आधुनिक काल तक, स्त्री के प्रति भारतीय समाज में परिवर्तित दृष्टिकोण हिंदी कवियों के द्वारा अपनी लेखनी के माध्यम से अत्यंत सटीकता से उकेरा गया और हिंदी साहित्य के इतिहास के सभी कालों में स्त्री का नित परिवर्तित स्वरूप दृष्टिगत होता है। आधुनिक काल के उद्‌भव के पश्चात स्त्री के प्रति दृष्टिकोण में आमूलचूल परिवर्तन और उसके सांगोपांग स्वरूप का चित्र दिखाई देता है जहां उसे देवी, मां, सहचरी, प्राण के रूप में दर्शाना आरंभ हुआ और अंततः प्रगतिवाद ने तो स्त्री को मानवतावाद के उच्चतम शिखर पर प्रस्थापित किया

आदिकाल में जहां स्त्री को उपभोग की वस्तु के रूप में देखा जाता था और ईश्वर प्राप्ति के बहाने उनके शोषण के तमाम चित्र हमारे सामने उपस्थित होते हैं वहीं जैन–साहित्य में स्त्री को पवित्रता से ओत–प्रोत प्रस्तुत किया गया है। रासो साहित्य में स्त्री के रमणीय स्वरूपों का चित्रण देखने को मिलता है। इसमें नायिका भेद, नख–शिख वर्णन आदि अपार रूप में उपलब्ध है।रीतिकाल में तो स्त्री मात्र श्रृंगरिक मूर्ति बनकर रह गई। आजकल की बोलचाल की भाषा में कहा जाए तो स्त्री को 'आइटम गर्ल' बनाकर प्रस्तुत किया गया स्त्री दृष्टिकोण से यह अंधकार काल था। आधुनिक काल में आकर स्त्री के सांगोपांग स्वरूप का चित्रण प्राप्त होता है। इस काल में स्त्री जीवन की विविध समस्याओं बाल विवाह,बहु–विवाह,सती–प्रथा आदि के विरुद्ध स्वर प्रमुख किया गया।

छायावाद एक नए प्रकार के धरातल पर प्रकट हुआ। इसने काव्य की स्थापित भूमि को तोड़ा और इतिवृत्तात्मकता और उथलेपन को चुनौती दी। छायावाद में स्त्री देवी, मां, सहचरी, प्राण के रूप में सामने आती है। कवि पंत ने भारतीय स्त्री के सहज एवं स्वभाविक सौंदर्य की अत्यंत मार्मिक प्रस्तुति की है। उन्होंने उसके जीवन के विविध पहलुओं को उजागर किया 'ग्राम्या' में 'ग्राम्य युवती' ,'ग्राम नारी', 'ग्राम वधू', 'ग्राम श्री' आदि में स्त्री के प्रति संकीर्ण दृष्टि से बाहर निकलने और उसके व्यक्तित्व को विकास का अवसर प्रदान किया। जयशंकर प्रसाद 'कामायनी' में लिखते हैं–

"तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की,
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की।"[1]

***शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय महेंद्रगढ़।**

**** सह आचार्य, हिन्दी विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय महेंद्रगढ़।**

इसी समय बच्चन, दिनकर माखनलाल चतुर्वेदी, नरेंद्र शर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताएं भी साहित्य कुंड में आहुति का कार्य कर रही थी परंतु ऊपरी तौर पर इनमें भी भेद नजर आता है। नरेंद्र शर्मा, हरिवंश राय बच्चन, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भगवतीचरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' गोपाल सिंह नेपाली प्रेम व उन्माद भरे काव्य की रचना कर रहे थे।

यह विचारधारा मुख्य रूप से शोषण पर चोट करती थी और वर्तमान से इतिहास तक अगर नजर फैलाई जाए तो मालूम होता है कि सबसे अधिक शोषण स्त्री का ही हुआ है चाहे वह किसी भी वर्ग की क्यों न हो। अतः इस समय की कविता में भी स्त्री के नए रूप के दर्शन होते हैं जो इस समय से पहले कभी नहीं हुए थे। तोड़ती पत्थर में भी निराला ने जनसामान्य का प्रतिपक्ष व अभिजात्य वातावरण प्रस्तुत किया है–

गुरु हथौड़ा हाथ, करती बार–बार प्रहार'
सामने तरु मालिका अट्टालिका प्रकार'।

'गुरु हथौड़ा' स्त्री के हाथ में होना कविता के सौंदर्य में न सिर्फ वृद्धि कर रहा है अपितु अपने युग का द्योतक भी है। साथ ही कविता इस और इंगित भी करती है कि श्याम तन और बंधे हुए यौवन में अरूप सौंदर्य और अद्वितीय संगीत को देख–सुन रहे हो, इसकी गुंजाइश यहाँ नहीं है। यह तुम्हारी कपोल– कल्पना है। मेरी नियति तो इस लू भरी दोपहरी में पत्थर तोड़ना भर है। उनकी एक और विचित्र कविता में विचित्र शब्दावली और स्त्री का नया स्वरूप देखने को मिलता हैः–

"बाह्मण का लड़का मैं, प्यार उसी से करता हूं।
जात की कहारिन वह
मेरे घर की पनिहारी वह
आती है होते तड़का
उसके पीछे मैं मरता हूँ।
कोयल–सी काली, अरे
चाल नहीं उसकी मतवाली
ब्याह नहीं हुआ, तभी भीड़का दिल मेरा, मैं आहें भरता हूँ।"[2]

'रानी और कानी' कविता में भी निराला ने स्त्री के पारंपरिक रूप को तोड़ते हुए कुछ ऐसा ही चित्रण किया है। नागार्जुन को भी विकट परिस्थिति में 'सिंदूर तिलकित भाल' ही याद आता है। वे सहयोग के साथ–साथ सहवास की भी मांग करते हैं। नागार्जुन अपने गांव घर परिवार का चित्रण करने में सिद्धहस्त है। सात साल की बच्ची का पिता जिसका मुच्छड़ रोबिला चेहरा है वो भी बेटी की अमानत को सुरक्षित रखे है–

"अधेड़ उम्र का मुच्छड़ रोबीला चेहरा
आहिस्ते से बोलाःहाँ सा' ब, लाख कहता हूँ, नहीं मानती है मुनिया
टांगे हुए हैं कई दिनों से अपनी अमानत यहाँ अब्बा की नजरों के सामने।"[3]

'सिंदूर तिलकित भाल,' 'यह तुम थी,' 'मेरी नवजात सखी,' 'जया', 'गुलाबी चूड़ियाँ,'और प्रसिद्ध कविता 'तालाब की मछलियाँ' आदि कविताओं में स्त्रियों के प्रति विशेष करुणा है। 'बूढ़ बर' मैथिली में लिखित एक कविता है। जिसमें बेटियों को जानवरों के समान खरीदने बेचने का चित्रण है।

'कुमारठेली मैं, बाप उतावले थे,
बेचने को आकुल, बावले थे
नो सौ में पटा अंतिम लगन में जाकर
और पिता ने ही काट दी मेरी गर्दन'।

यह पूरी कविता संवाद शैली में लिखी गई है। यह कविता जितनी मार्मिक है उतनी ही कलात्मक भी है। मैथिली में ही एक दूसरी कविता है। जिसका शीर्षक है 'विलाप' इसकी शीर्षक से ही भाव का पता चलता है। यह एक बाल विधवा का विलाप है जो अभी को इस प्रकार सुनाई देता है–

नन्हीं सी कली पीती थी दूध, सुनती थी राजा रानी कथा।

उसी तीन वर्ष की कली का विवाह कर दिया जाता है और कुछ ही साल बाद वह विधवा हो जाती है। धर्म के नाम पर उसके साथ भी वह सब किया जाता है जिससे उसे ज्ञान भी नहीं है। कविता की मार्मिकता देखें–

'आग छूती हूँ पर जलती नहीं जहर खाती पर मरती'

नहीं फटता है कलेजा पर निकलता नहीं प्राण'
कौन सा पाप किया था हे भगवान'।

'जया' नामक कविता एक चार साल की गूंगी–बहरी लड़की को केंद्र में रखकर लिखी गई कविता है। कवि उस गूंगी बहरी लड़की की भाषा को समझता है।कवि उसके सपनों को भी जानना चाहता है–

'वह बोल नहीं सकती पर
उसकी भी अपनी भाषा है'
काफी है सूझ समझ उसमें, सुख है, दुःख है अभिलाषा है'

केदारनाथ अपनी कविता में लिखते भी हैं–

"मैं नारी का प्रेमी मेरी प्रीत अपावन
मंदी मेरी भावराशि सब गीता अपावन"[4]

केदारनाथ सौंदर्य और जीवन को समान मानते हैं। इसीलिए सरसों की गोद भरी जाती है और बदले में भौरी गोरी के गालों को चुमती है–

" गोरी ने गीतों से सरसों की गोद भरी
ने भौरीगोरी के गालों को चूम लिया।"[5]

केदारनाथ अग्रवाल का प्रथम काव्य संग्रह 'युग की गंगा' में तथाकथित रामराज्य की मारी हुई 'रनिया' नामक एक कविता है, जो दलित स्त्री पर लिखी गई है। जिसमें पुरुष द्वारा शोषित स्त्री का चित्रण किया गया है, जो अपने समूचे व्यक्तित्व और जीवन को श्रम के लिए समर्पित कर देती है। जैसे

"रनिया अब तक जन्मांतर से/ ज्यों की त्यों पूरी भूखी है/
रनिया मेरी देस बहन है/ अति गरीब है– अति गरीब है।"[6]

अपनी कविता में किसान की बेबस पत्नी का चित्र केदारनाथ कुछ इस प्रकार खींचते हैं–

"पंचों! सुनो खबरिया/ रज्जू लड़ा मुकदमा/
प्यारी की मनमोहक गहने गिरे–गहन में जाकर पहुंचे डूबे सेठ दुकनिया।"[7]

केदारनाथ जी की रचनाओं में ग्रामीण नारी विषयक चिंतन अधिक अभिव्यक्त होता है। नारी को जो सामाजिक यातनाएं भोगनी पड़ती है, उसके संदर्भ में केदार जी लिखतें हैं–

"गांव की औरतें/ गंदी कोठियों में हांफती, खाँसती,खसोटती
रूखे बाल खींचती हैं.../गाँवों की औरतें/
पीठ पेट एक कर हाड़ तोड़/ मरती है पत्थर रगड़ कर।"[8]

'फूल नहीं रंग बोलते हैं' शीर्षक संग्रह में 'वीरांगना' नामक कविता ऐसे ही कर्मठ स्त्री की याद दिलाए बिना नहीं रहती–

'मैंने उसको जब–जब देखा लोहा देखा,
लोहा जैसे तपते देखा, गलते देखा, ढलते देखा,
मैंने उसको गोली जैसा चलते देखा!"[9]

केदारनाथ अग्रवाल जी की कविता में स्त्री का एक और रूप दृष्टिगोचर होता है। वह रूप है प्रेयसी और पत्नी का जो हमेशा सम्मान के साथ उपस्थित होती है। जैसे–

"आज नदी बिल्कुल उदास थी, सोई थी अपने पानी में,
उसके दर्पण पर बादल का वस्त्र पड़ा था,
मैंने उसको नहीं जगाया,
दबे पांव घर वापस आया"।[10]

कवि को भय है कहीं उसकी प्रेयसी रूपी नदी जाग न जाए इसलिए वह बिना आहट के लौट रहा है। दर्पण के आगे केश सँवारती रूप मुग्धा की यह छवि विशेष रूप से दृष्टव्य है–

"दर्पण में खड़ी हो तुम वसंतोत्सव की मुद्रा में,
देख कर मुझे हो रहा है तुमसे प्यार।"[11]

त्रिलोचन शास्त्री प्रगतिवादी काव्य के प्रमुख कवि के रूप में सामने आते हैं बच्चन सिंह के शब्दों में– "त्रिलोचन ने सतर्कता पूर्वक अपने को प्रगतिवादी नारों से बचाया है फिर भी कुछ कविताओं में इसका समावेश

हो ही गया है जैसे 'सोच समझकर चलना होगा', 'तुम बढ़ो विजय के पथ पर, 'चीन महान चीन', 'इन दिनों मनुष्य का महत्व कोई नहीं है' आदि"।

त्रिलोचन को मुक्तिबोध ने 'अवध का किसान कवि' कहा है ग्रामीण परिवेश के परिवार उनकी कविता में लक्षित होता ही रहा है। उदाहरण दृष्टव्य है–

"दृश्य बदलता है
कि देखता हूं फिर
मैं बीमार खाट पर लेटा हूं मनमारे
सिरहाने बैठी हो तुम माथे पर अपना हाथ पसारे
पूछ रही हो (दृग में चिंता वाणी में विश्वास अटल है) अब कैसी तबीयत है!"[12]

त्रिलोचन जीवन के छोटे–छोटे प्रसंगों को कविता में ऐसे ढालते हैं जैसे उन्होंने उसे ना सिर्फ देखा–सुना बल्कि भोगा भी हो। स्त्री की वाणी में विश्वास और दृग में चिंता का अनूठा समायोजन त्रिलोचन ने उपर्युक्त कविता में किया ही है।

त्रिलोचन नारी समाज के प्रति उदार हैं वे नारी के उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठाते हैं। नारी को पुरुष की सहयोगी और जीवन संगी ही वे मानते हैं। प्रगतिशील कविता की एक सामान्य प्रवृत्ति के रूप में नारी समाज के प्रति यह उदार दृष्टि मान्य भी है।त्रिलोचन के सॉनेटो मैं कुछ व्यंगात्मक रचनाएं है वैसे सॉनेटो में उनके व्यंग्य कम ही है। पर जहाँ है वहां धारदार है। 'चंपा काले–काले अक्षर नहीं चिन्हती' में देखी जा सकती है।

"चंपा, पढ़ लेना अच्छा है
चंपा बोलो–तुम कितने झूठे हो राम,
राम,तुम–पढ़ लिखकर इतने झूठे हो
मैं तो ब्याह कभी न करूंगी
और कहीं जो ब्याह हो गया
तो मैं अपने बालम को संग–साथ रखूंगी
कलकत्ता मैं कभी न जाने दूंगी कलकत्ते पर वज्र गिरे"।[13]

इसमें प्रेम की अभिव्यक्ति भी देखी जा सकती है। अपने पति से अलग करने वाले कलकत्ता नगर पर वह 'बजर गिरने' का शाप देती है। वह पति को कितना चाहती है, इसका पता तो यों ही चल जाता है। त्रिलोचन के द्वारा चित्रित ग्रामीण नारी के दांपत्य प्रेम की सहजता और निश्चलता यहाँ खुल जाती है।

प्रेम की सात्विक स्मृतियां भी त्रिलोचन के काव्य में कुछ इस प्रकार आती है–

"यों ही कुछ मुसकाकर कर तुमने परिचय कि यह गाँठ लगा दी।
था पथ पर मैं भूला–भूला
फूल उपेक्षित कोई फुला
जाने कौन लहर थी उस दिन तुमने अपनी याद जगा दी"।[14]

गजानन माधव मुक्तिबोध ने छायावादी कविताएं भी रची है और प्रगतिवादी भी, वे तार सप्तक के भी कवि रहे हैं। मुक्तिबोध के साहित्य पर जयशंकर प्रसाद का बहुत प्रभाव रहा है परंतु कई आलोचक मुक्तिबोध को ने प्रगतिवादी मानते हैं और न मार्क्सवादी जिनमें रामविलास शर्मा अग्रणीय है, परंतु जो भी हो यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि वे आम–से–आम आदमी के आंतरिक एवं बाह्य भावों को, मर्म को, पीड़ा को, घुटन को, कुण्ठा को बारीकी से समझने, महसूस करने वाले कवि थे। दरअसल आम आदमी अर्थात् श्रमिक, मज़दूर, किसान, निम्नवर्ग की आम जनता एवं नारियों के प्रति निष्ठापूर्वक समर्पित थे। इस बात की साक्षी उनकी अनेक कविताएँ है। उन्होंने निम्नवर्गीय समाज के आम आदमियों के दुःख–दर्द, पीड़ओं को नज़दीक से देखा है, जिया है, भोगा है। खास तौर पर नारी की दयनीय दशा का जो चित्रण किया है, उससे महसूस होता है कि वे नारियों के पक्षधर थे।

नारी–शोषण,बलत्कार की वीभत्सता का सजीव चित्रण 'एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्म–कथन' कविता में किया गया है– 'खूबसूरत कमरों में कई बार / हमारी आँखों के सामने / हमारे विद्रोह के बावजूद, /बलात्कार किये गये / नक्षीदार कक्षों में /भोले निर्व्याज नयन हिरणी–से / मासूम चेहरे / निर्दोष तन–बदन /दैत्यों की बाँहों के शिकंजों में इतने अधिक /इतने अधिक जकड़े गये / कि जकड़े ही जाने के / सिकुड़ते हुए घेरे में वे तन–मन / दबते–पिघलते हुए एक भाफ बन गए।'

'माँ की जर्जर बदरंग साड़ी का रंग' जैसी कविता में कोमल स्मृति अंततः विक्षुब्ध यथार्थ से टकराने का साहस बनती है। इसके अतिरिक्त उनकी कविताओं में व्यक्ति स्तर पर अनुभूत त्रासद यथार्थ के कारण कई स्थलों पर सच्ची पस्ती और निराशा के चित्र भी देखने को मिलते हैं।"[15]

मुक्तिबोध ने अपनी कविता में नारियों के द्वारा घर की शोभा का चित्रण किया है, परंतु जिस समाज में, दुनिया में जीवन–यापन कर रहे हैं, वहाँ अनेक प्रकार के संघर्ष हैं। आज समाज में पुरुष वर्ग द्वारा, सामंत वर्ग, उच्च वर्ग द्वारा नारी के प्रति दुर्व्यवहार, अपमान, शोषण आदि से वो छली जाती है। अपनी जीविका के लिए वह संघर्ष करती है, परंतु वहाँ भी उसे अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ता है।

'जब प्रश्न–चिह्न बौखला उठे' कविता का उदाहरण–
'जिससे गूँजा यों घर–आँगन
खनके मानों बहुओं की चूड़ी के कंगन।
मैं जिस दुनिया में आज बसा,
जन संघर्षों की राहों पर
ज्वालाओं से
माँओं का, बहनों का सुहाग सिन्दूर हँसा बरसा–बरसा।
इनभारतीय,गृहिणी–निर्झरिणी–नदियों के
घर–घर में भूखे प्राण हँसे।"[16]

निष्कर्ष :– यह कहने में हमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि प्रगतिवादी कविता में स्त्री के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण को अपनाया गया व प्रगतिवाद के पश्चात व्यक्तिता का स्वर मुखर होता गया और स्त्री को नए–नए उपमान दिए जाने लगे। आधुनिक युग में स्त्री की भूमिका शनैःशनैः बदलती गई और वह नित परिवर्तनशील है। इक्कीसवीं सदी में स्त्री–लेखिकाओं ने तो स्त्री को पूर्णतः स्वतंत्र–स्वछंद कर दिया तथापि वह पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपनी महत्ता में वृद्धि करती गई और जीवन के समस्त आयामों में उसकी उपस्थिति परिलक्षित है।

संदर्भ–सूची :–

1. प्रसाद, जयशंकर; कामायनी; कमल प्रकाशन, दिल्ली; पृ.– 67।
2. वही; पृ. –136।
3. सिंह,नामवर; आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां; लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद; पृ.– 59।
4. अग्रवाल, केदारनाथ; गुलमेहंदी; साहित्य भंडार, इलाहाबाद; पृ.– 27।
5. अग्रवाल,केदारनाथ; फूल नहीं रंग बोलते हैं; साहित्य भंडार, इलाहाबाद; पृ.– 33।
6. अग्रवाल,केदारनाथ; युग की गंगा; साहित्य भंडार, इलाहाबाद; पृ.–33।
7. अग्रवाल,केदारनाथ; कहे केदार खरी–खरी;संपादक,डॉ.अशोक त्रिपाठी; साहित्य भंडार, इलाहाबाद; पृ.– 43।
8. अग्रवाल,केदारनाथ; जो शिलाएं तोड़ते हैं;संपादक,डॉ.अशोक त्रिपाठी; साहित्य भंडार, इलाहाबाद; पृ.–42।
9. अग्रवाल,केदारनाथ; फूल नहीं रंग बोलते हैं; साहित्य भंडार, इलाहाबाद; पृ.– 97।
10. अग्रवाल,केदारनाथ; फूल नहीं रंग बोलते हैं; साहित्य भंडार, इलाहाबाद; पृ.–297।
11. डॉ.सिंह, बच्चन; आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; पृ.–254।
12. वही; पृ. –255।
13. शास्त्री, त्रिलोचन; धरती; प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद; पृ. – 89।
14. http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%AF%E0%A5%82%E0%A4%81_%E0%A4%B9%E0%A5%80_%E0%A4%95%E0%A5%81%E0%A4%9B_%E0%A4%AE%E0%A5%81%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%95%E0%A4%B0_%E0%A4%A4%E0%A5%81%E0%A4%AE%E0%A4%A8%E0%A5%87_/_%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%B2%E0%A5%8B%E0%A4%9A%E0%A4%A8 (04–07 / 2025)
15. मुक्तिबोध, गजानन माधव; चाँद का मुँह टेढ़ा है; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; पृ.– 44।
16. मुक्तिबोध, गजानन माधव; चाँद का मुँह टेढ़ा है; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; पृ.– 174।

हिंदी में राम काव्य

अखिलानंद मिश्र*

डॉ. ललित कुमार सिंह**

सारांश :— तुलसीदास राम को अपना आराध्य मानते हैं। राम चरित मानस बहुत ही अनूठा ग्रंथ है। यूनेस्को ने इसे विश्व धरोहर में सम्मिलित किया है। राम चरित मानस में राम जी के जीवन के सभी पक्षों को लिया गया है। लेकिन अन्य कवियों ने राम जी के किसी एक पक्ष को आधार मानकर राम काव्य पर अपनी लेखनी चलायी है। राम भारतीय साहित्य में आदर्श की भूमिका, नींव है। भारत की भूमि ऋषियों की धरती है। इस धरा में जन्म लेने वाले विराट महापुरुषों की एक लंबी श्रृंखला है। श्री विष्णु, श्री राम, श्री कृष्ण, श्री शंकर, श्री शंकराचार्य आदि रूपों में भगवान अवतरित हुए हैं। भगवान ही हैं जो विभिन्न रूपों में विभिन्न युगों में अवतरित होकर समाज में फैली कुरीतियों शंकाओं का उत्तर देते रहे हैं। समय समाज और परिस्थितियां सदैव परिवर्तनशील रही हैं। राम काव्य समन्वय की विराट चेतना का काव्य है। राम काव्य अपने समय और समाज का दस्तावेज है। रामकाव्य शक्ति के विद्युत कणों के समेटने का काव्य है। राम काव्य में वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास, मैथिली शरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, नरेश मेहता, अमन अक्षर कमलेश शर्मा, उद्भ्रांत आदि कवियों ने श्रेष्ठ लेखन कर हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है।

मुख्य शब्द :— राम काव्य, युनेस्को, पुरूषोत्तम, लोकतंत्र, सामाजिक, समन्वय आदि।

राम काव्य में तुलसीदास अपना आराध्य मानकर राम को अपना आदर्श मानते हैं। राम चरित मानस बहुत ही अनूठा ग्रंथ है। यूनेस्को ने इसे विश्व धरोहर में सम्मिलित किया है। राम चरित मानस में राम जी के जीवन के सभी पक्षों को लिया गया है। लेकिन अन्य कवियों ने राम जी के किसी एक पक्ष को आधार मानकर राम काव्य पर अपनी लेखनी चलायी है। राम भारतीय साहित्य में आदर्श की भूमिका, नींव है। राम का परिवार संयुक्त परिवार है जो सर्वथा श्रेष्ठ समझा जाता है। राम जी का चरित्र उत्तम है। राम के जीवन में संघर्षों का बहुत महत्व है। राम को मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम बनाने का काम संघर्षों ने ही किया है। रामचरितमानस तुलसीदास की सर्वोत्कृष्ट कृति है। भारतीय साहित्य कहें या विश्व साहित्य में सर्वश्रेष्ठ पात्र राम हैं। आज़ हजारों वर्ष पूर्ण होने के बाद भी इस धरा में जो साहित्य सबसे ज्यादा पढ़ा लिखा और उद्धृत किया जाता है वो राम साहित्य ही है। राम जन्म से लेकर मृत्यु तक जो नाम सुनते हैं वो राम नाम है। राम सत्यं शिवम् सुंदरम् हैं। आधुनिक कालीन हिंदी कविता में राम काव्य लेखन की परंपरा में कोई कमी नहीं आयी। राम काव्य लेखन में जिन कवियों ने अपनी लेखनी पवित्र की उनमें मैथिली शरण गुप्त के राम काव्य 'साकेत' में कैकेई का अनुताप उच्चता के शिखर पर ले जाता है। कैकेई की मनोदशा के माध्यम से आम जनमानस में एक सामान्य नारी की दशा का वर्णन है। कैकेयी राम को वनवास भेजकर अपने पुत्र भरत को राजगद्दी दी जाय ये राजा दशरथ से कहती हैं। साकेत में गुप्त जी ने नारी की पीड़ा का अत्यंत मार्मिक दृ श्य खींचा है। राम इस भूमण्डल के सबसे श्रेष्ठ मानव हैं। लेकिन गुप्त जी को इस अनास्था के दौर में शक होता है तो पूंछ बैठते हैं।

राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या?
विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या ?

राम कथा जीवन की जटिलताओं से मुक्त होकर जिंदगी को जीना सिखाती है। राम कथा हजारों वर्षों से उदात्त जीवन मूल्यों के कारण हमारे समाज में व्याप्त एक ऐसी गाथा है, जो देशकाल की सीमाओं से परे मनुष्यता का मार्गदर्शन करती है। राम कथा इतनी लचीली है कि यह लौकिक और अलौकिक दोनों साहित्य में व्याप्त है। राम कथा का मूलभूत स्वरूप और संदेश एक जैसा है।

राम कथा एक परिवार की ऐसी कथा है जो दूसरे परिवारों का अनुसरण कर उन्नति की ओर अग्रसर करती है। राम काव्य हिन्दी साहित्य की एक सुदीर्घ परंपरा है। भारतीय बोलियों में लिखित और अलिखित दोनों रूपों में राम साहित्य उपलब्ध है। लोकतंत्र के संदर्भ में यदि राम साहित्य को देखना हो तो

***शोध छात्र—हिंदी विभाग, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना, मध्य प्रदेश।**
****प्रोफेसर—हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना, मध्य प्रदेश।**

सर्वप्रथम यह ध्यान में रखना चाहिए कि भारतीय भाषाओं–बोलियों में राम सहित्य उपलब्ध है, उसकी प्रकृति कैसी है? जब इस ओर राम साहित्य के अध्येताओं का ध्यान जाएगा तो पता चलेगा कि जो राम साहित्य भारतीय भाषाओं पर उपलब्ध है। राम अभिजात वर्ग और सामान्य वर्ग दोनों प्रकार के पात्र हैं। लेकिन जब भारतीय बोलियों में उपलब्ध राम साहित्य के पात्र सामान्य वर्ग से हैं। अर्थात राम और सीता किसी राज परिवार से नहीं हैं। सामान्य परिवार से हैं।

राम साहित्य की प्रकृति का अध्ययन करने पर पता चलता है कि राम कथा में भारतीय सामाजिक ढांचों को मजबूत बनाए रखने की कोशिश निहित है। वह ढांचा पारिवारिक संबंधों के रूप में हो सकता है। या सामाजिक नैतिक मूल्यों का भी हो सकता है। इसी कारण राम साहित्य को मर्यादा के संदर्भ में देखा जाता है। राम का संपूर्ण जीवन अन्याय के खिलाफ संघर्ष करते हुए बीतता है। वह अयोध्या के प्रासादों से निकलकर ऋषियों मुनियों से लेकर निषाद और वानरों आदि वर्गों से मिलते हैं। जो अलोकतांत्रिक शक्तियों से पीड़ित हैं। रावण के आतंक से परेशान हैं, लेकिन उससे लड़ाई नहीं कर पाते हैं। राम इन सभी वर्गों को एकत्र कर रावण के अन्याय पूर्ण राजतंत्र को नष्ट भ्रष्ट कर लोकतंत्र की स्थापना करते हैं। और सामाजिक और नैतिक मूल्यों की रक्षा करते हैं। राम साहित्य आदर्श साहित्य है। राम साहित्य यह दर्शाता कि राजतंत्र किसी भी अलोकतांत्रिक शक्ति पर विजय तभी पा सकता है जब वह लोक के साथ हो या लोक को साथ लेकर आगे बढ़ेगा तो अन्याय पर विजय पाना सरल होगा। जनता की व्यापक भागीदारी के बल पर ही सामाजिक मूल्य और नैतिकता की रक्षा भी होगी। आतंक के खिलाफ या किसी आततायी के खिलाफ छल का प्रयोग भी करना पड़े तो यह भी न्याय संगत है। बालि और सुग्रीव के बीच लड़ाई है और बालि का बल इतना बढ़ चुका है कि अब सुग्रीव उसके सामने जाने से डरते हैं। ऐसी स्थिति में राम ने छल से बालि का वध किया और सुग्रीव को राजा बनाया लेकिन राम को पर्याप्त जनादेश प्राप्त है। तभी यह संभव हो पाया शास्त्र से हटकर राम ने बालि का वध किया है। जीवन मूल्यों का आयाम बहुत विषद है। मूल्य हमें उच्च आदर्शों की प्राप्ति कराते हैं। प्रेम पवित्रता संयम नैतिकता आदि यह सभी मानव मूल्य ही हैं। भारत की भूमि ऋषियों की धरती है इस धारा में जन्म लेने वाली विराट महापुरुषों की एक लंबी सूची है। श्री विष्णु, श्री राम, श्री कृष्ण, श्री शंकर, आदि रूपों में भगवान अवतरित हुए थे। भगवान ही हैं जो विभिन्न रूपों में विभिन्न युगों में अवतरित होकर समाज में फैली कुरीतियों शंकाओं का उत्तर देते रहे हैं। समय समाज और परिस्थितियां सदैव परिवर्तनशील रही हैं। यही इसकी खूबसूरती भी है। हम सब प्रभु श्री राम को मानते हैं तो उनको श्रेष्ठ मानने का कारण सबका अपना व्यक्तिगत हो सकता है। लेकिन राम के चरित्र में सामान्य पुरुष का भी जीवन है और वो समानता ही हम सामान्य जन भी महसूस करते हैं। श्री राम का जीवन अनेक सद्‌गुणों से भरा हुआ है। गुणवान, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सदाचारी, प्रेम और सौहार्द, आदि गुण जो मानव को इंसान से भगवान बना देते हैं। यही सब गुण राम को श्रीराम बनाते हैं। राम काव्य में सर्वाधिक प्रमाणिक लेखनी वाल्मीकि की मानी जाती है। और उनके द्वारा रचित ग्रंथ 'रामायण' को सर्वाधिक प्रमाणिक पुस्तक माना जाता है। वाल्मीकि के बाद तुलसीदास जी को घर घर में पढ़ा जाता है। इन राम काव्य के दोनों अधिकृत विद्वानों से श्री राम के जीवन के किसी एक पक्ष को लेकर आधुनिक कवियों ने अपनी लेखनी पवित्र की है। आधुनिक हिंदी कविता में राम काव्य जो आम जनमानस में अपनी छाप छोड़ सकी है वह मैथिली शरण गुप्त के **साकेत** की है। **साकेत** में उर्मिला के त्याग का वर्णन है। कैकेई के अनुताप का अति मार्मिक वर्णन करने में कवि को सफलता मिली है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की कविता **राम की शक्ति पूजा** राम काव्य पंरपरा में अपना अनूठा स्थान रखती है। निराला जी राम रावण के मध्य हुए संघर्ष को एकदम नया रूप देते हैं और एक दम नवीन दृष्टिकोण देखने को मिलता है।" इस कथा के कुछ सूत्र बंगला की कृतिवास रामायण में तथा देवी भागवत कालिका पुराण शिव महिम्न स्रोत आदि संस्कृत कृतियों में प्राप्त होते हैं।"[2] निराला ने इस कविता के पात्रों का जीवंत चित्रण किया है। राम के चरित्र में एक ओर तो देवत्व की झलक मिलती है और दूसरी ओर वह सहज मानवीय चरित्र प्रतीत होते हैं। निराला जी ने इस कविता में राम हनुमान, जाम्बवान, विभीषण और सुग्रीव आदि पात्रों को बहुत मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। "निराला के राम अप्रतिहत योद्दा हैं। युद्ध के क्षेत्र में दिव्य शस्त्रों के असफल हो जाने के कारण वे पहले तो आहत होते हैं, किंतु मन से परास्त नहीं होते। कवि के शब्दों में–

कल लडने को रहा विकल वह बार बार
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार हार।"[3]

राम के मन में निराशा आती है लेकिन अगले ही पल वो सजग हो जाते हैं और अपनी भार्या के प्रति उनका प्रेम पूरे मनोयोग से शक्तिशाली से युद्ध करने को विकल हो उठता है। "राम की शक्ति पूजा में आंखों पर ध्यान केंद्रित है सब कुछ सांकेतिक मर्यादित।"[4] राम रावण का युद्ध किसी परिणाम में नहीं पहुंच

पा रहा है और ऐसी बिषम परिस्थितियों में भी राम अपना धैर्य नहीं खोते हैं और शक्ति की मौलिक कल्पना करते हैं और फिर युद्ध करते हैं। "राम की शक्ति पूजा महाकाव्यात्मक औदात्य का आभास देने वाला लघु काव्य है।"[5]

राम काव्य में और भी कुछ प्रसिद्ध कविताएं और खंडकाव्य लिखे गए हैं। जो राम के जीवन संघर्षों से समझने और सीखने में निश्चित रूप से मार्ग दर्शक साबित होंगे। "संशय की एक रात के राम अनुत्तरित संशयों और प्रश्नों से घिरकर जिन मूल्यों को रेखांकित करते हैं, वे मूल्य सनातन होते हुए भी नकार और निषेध की भूमि पर उभरते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में संशय ही मूल्यों का निकष हैः

यदि मैं मात्र कर्म
तो यह कर्म का संशय है!
यदि मैं मात्र क्षण हूं
तो यह क्षण का संशय है!"[6]

नरेश मेहता की कविता संशय की एक रात में "राम के संशय का कारण यह है कि वे युद्ध के औचित्य अनौचित्य को सम्बन्धों की पापेक्षता में देखते हैं, जबकि जटायु का अभिमत यह कि निर्णय लेने के लिए काला– नीत और सम्बन्धहीन होना आवश्यक है क्योंकि समय और स्थिति से पृथक होकर ही निर्णय लिया जाता है, वही शुद्ध निर्णय होता हैः

यदि तुम क्षणों की इस पृथक्ता को
देख सके होते तो
राघव!
परितापित कभी नहीं होते।"[7]

राम काव्य में संशय की एक रात एक ऐसी कविता है जो एक दम नवीन दृष्टिकोण प्रदान करती है। कि प्रभु के मन में भी भावनाओं का संचार एक दम सामान्य मनुष्य के हिसाब से ही होता है। राम ने युद्ध का निर्णय लिया लेकिन केवल अपनी भार्या सीता के लिए नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानवजाति में मार्यादाऐं यों ना छिन्न–भिन्न हों। समाज में नारी का सम्मान बरकरार रहे। और राम प्रजाहित में युद्ध का निर्णय लेते हैं। रघुवीर शरण मित्र ने **भूमिजा** नामक खंडकाव्य के माध्यम से सीता की पीड़ा को स्वर दिया है। **भूमिजा** में सीता के जीवन संघर्षों का चित्रण किया है। **भूमिजा** में कवि का मत है कि नारी एक तरफ तो राम राज्य की रानी है लेकिन जब वह एक कुटी में एक सामान्य नारी की तरह जीवन को संघर्ष पूर्ण ढंग से व्यतीत करती हैं। ऋषि वाल्मीकि की कुटिया में एक राजरानी और गर्भवती होते हुए जीवन के सबसे महत्वपूर्ण समय में पति और परिवार से दूर सारे रिश्ते नाते होते हुए भी ऐसी बिषम परिस्थितियों में जीवन जीने को मजबूर हैं। जगत जननी में धरती सा ही धैर्य है। सीता उस भंयकर झंझावाती पीड़ा को कैसे सहन कर रही हैं ये धैर्य मां भगवती सीता में स्पष्ट है। सीता राम राज्य में रहीं और क्या पायीं और क्या खोईं ऐसे प्रश्न सामान्य प्रतिभा के लोगों में शंका पैदा करते हैं और उन्ही में से कोई ये सवाल सामने से ना सही लेकिन पीठ पीछे कर रहा होता है।ऐसे निराधार प्रश्नों को सीता समय की गोद में रखकर अपने दायित्वों को पूर्ण करने में जुट जाती हैं। "भूमिजा में वे सीता को विश्व वेदना में अपने अस्तित्व का विलय करने की प्रेरणा देते हैं। मानववाद का यह स्वर आधुनिक युग की सहज परिणति है–

देवी! मां बनने वाली हो, जग को जन्म नया दो !
जो पीड़ा से जले जा रहे, देवी उन्हें दया दो!
बरसो बदली बनकर बरसो प्यासी रहे ना धरती –
जन जन की आशा माता से रह रह विनती करती।"[8]

शक्ति के अनेक रूप भारतीय साहित्य में वर्णित हैं। सीता का रूप सबसे अलग–थलग है सीता सहज सौम्य समर्पित त्यागमूर्ति हैं। सीता का राम के साथ वन वन भटकना और रावण के द्वारा हरण करना ही बहुत दुःखद है लेकिन इसके बावजूद अग्नि परीक्षा देना। एक नारी के लिए यह सब बहुत कठिन है। अयोध्या लौटने के पश्चात लोकापवाद से बचने के लिए राम के द्वारा उनका परित्याग उनके स्वाभिमान को झकझोर डालता है। सीता अपने इस अपमान का घूंट पीकर रामराज्य के उत्तराधिकारी लव कुश को राम को सौंपतीं हैं। राम पश्चाताप करते हैं लेकिन सीता राम को ठुकराकर धरती पर समा जातीं हैं। त्रेता नामक महाकाव्य उद्भ्रांत ने लिखा है और सम्पूर्ण रामकथा के स्त्री पात्रों को और उनकी त्रासदी को विश्लेषित किया है। उद्भ्रांत का यह त्रेता महाकाव्य कुल छब्बीस सर्गों में विभक्त है। उद्भ्रांत पन्द्रहवें सर्ग में सीता के संबंध में लिखते हैं

"मैं तो उसी क्षण में हुई दिवंगत

जिस क्षण भैया लक्ष्मण को
आपने दिया था निर्देश कि
मुझे पौ फटने से ही पूर्व
अयोध्या से दूर
किसी वन में छोड़ आने का!
नहीं होते महर्षि वाल्मीकि अगर यहां तो
वही दिवस था
मेरे जीवन का अंतिम दिन
शेष जीवन तो मुझे
पृथ्वी माता ने दिया
अयोध्या के भावी
उत्तराधिकारियों के लिए–
जन्मने पालने और पोसने के बाद उन्हें
उचित समय आने पर
अयोध्या के सर्वोत्तम महाराज
राम को सौंपने–हेतु।"[9]

जो राम काव्य में नारी पात्रों से परिचित कराता है और नये चिंतन फलक विकसित करता है। राम काव्य लेखन की परंपरा में ऐसे कई कवियों ने अपनी लेखनी चलाई है और आगे भी चलाते रहेंगे। शैलेश ज़ैदी की कविता अब किसे वनवास दोगे, अमन अक्षर, कमलेश शर्मा आदि कवियों ने राम काव्य पर उत्कृष्ट लेखन किया है जिसका अनुशीलन करना चाहिए।

निष्कर्ष :– हिंदी राम काव्य का अनुशीलन करने पर पता चलता है कि वाल्मीकि और तुलसीदास ने जो राम काव्य परंपरा पर राम के उज्जवल निर्मल चरित्र को लिपिबद्ध किया वह लोककल्याण कारी है। राम काव्य का अध्ययन कर के आधुनिक कवियों ने अपने चिंतन मनन से कुछ नये द्रष्टि कोण दिऐ हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने **साकेत** और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने 'राम की शक्ति पूजा 'एवं नरेश मेहता ने 'संशय की एक रात' में जैसे ग्रंथों को सृजित कर राम के जीवन से विश्वबंधुत्व और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का भाव प्रकट किया है।

संदर्भ–सूची :–

1. भारतीय भाषाओं में राम साहित्य की प्रासंगिकताः लोकतंत्र का संदर्भ डॉ ऋषभदेव शर्मा, पृष्ठ संख्या 56।
2. दीक्षित सूर्य प्रसाद प्रोफेसर, निराला समग्र, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ प्रकाशन वर्ष 2010, पृष्ठ संख्या 57।
3. दीक्षित सूर्य प्रसाद प्रोफेसर, निराला समग्र, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ प्रकाशन वर्ष 2010, पृष्ठ संख्या 57।
4. शर्मा रामविलास निराला की साहित्य साधना भाग 2 राजकमल प्रकाशन वर्ष 2011पृष्ठ संख्या।
5. माहेश्वरी प्रेम चंद्र, हिंदी रामकाव्य का स्वरूप और विकास बदलते युग बोध के परिप्रेक्ष्य में,लेख श्री पब्लिकेशन अयोध्या शोध संस्थान प्रथम संस्करण 2023, पृष्ठ संख्या 295।
6. मेहता नरेश,संशय की एक रात,सर्ग 2, पृष्ठ संख्या 62।
7. मेहता नरेश,संशय की एक रात,सर्ग 2, पृष्ठ संख्या 65।
8. मित्र रघुवीर शरण,भूमिजा अरण्य रोदन पृष्ठ संख्या 28।
9. उद्भ्रांत, त्रेता, पेंगुइन स्वदेश, 2015, पन्द्रहवां सर्ग पृष्ठ संख्या 230

श्यौराज सिंह 'बेचैन' के साहित्य में सामाजिक न्याय

राजेंद्र श्रीमंत आठवले*

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत लेख को दो हिस्सों में विभाजित किया गया है। लेख के प्रथम चरण में सामाजिक न्याय की संकल्पना को विभिन्न दृष्टियों से स्पष्ट किया गया है। इसमें सामाजिक न्याय की संकल्पना, उसमें अंतर्निहित मूलभूत सिद्धांत, इसके आयाम, सामाजिक न्याय की आवश्यकता, वर्तमान भारतीय समाज में सामाजिक न्याय की स्थिति, भारतीय समाज में सामाजिक न्याय देने या दिलाने में आने वाली चुनौतियाँ, सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए उपायों की चर्चा भी प्रस्तुत लेख में की गई है।

प्रस्तुतशोध लेख के द्वितीय चरण में श्यौराज सिंह 'बेचैन' के साहित्य में सामाजिक न्याय को परखा गया है। कुलमिलाकर श्यौराज सिंह 'बेचैन' का संपूर्ण साहित्य ही सामाजिक न्याय का पक्ष लेता है। शोध के इस दूसरे चरण में बेचैन जी के समग्र साहित्य को सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। बेचैन जी दलित रचनाकार के रूप में सुविख्यात हैं। दलितों का संघर्ष और दलित को वंचित रहने का सबसे बड़ा कारण यही है कि सदियों से इस समाज को सामाजिक न्याय से वंचित रखा गया था। बेचैन जी के साहित्य में दलितों की दृष्टि से सामाजिक न्याय की आवश्यकता को विस्तार से समझाया गया है। लेखक केवल दलितों की वर्तमान समस्याओं की तरफ इंगित नहीं करते बल्कि वह दलितों के भविष्य कालीन उत्थान के उपाय को भी सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से अपने साहित्य का आधार बनाते हैं। प्रस्तुत शोध लेख में बेचैन जी के साहित्य को इसी बिंदु को आधार बनाकर विश्लेषित किया गया है।

सामाजिक न्याय एक ऐसी अवधारणा है जो समाज में समानता, निष्पक्षता और सभी व्यक्तियों के लिए गरिमापूर्ण जीवन सुनिश्चित करने पर केंद्रित है। यह समाज के सभी वर्गों, विशेष रूप से वंचित और हाशिए पर रहने वाले समुदायों को समान अवसर, संसाधन और अधिकार प्रदान करने की माँग करता है। सामाजिक न्याय का लक्ष्य सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक असमानताओं को दूर करना है ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूर्ण क्षमता का विकास कर सके। इसे विस्तार से निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

सामाजिक न्याय की संकल्पना : "सामाजिक न्याय मूल अधिकार है। यह सामाजिक ढाँचे के विभिन्न समूहों और वर्गों या व्यक्तियों के प्रतिद्वंद्वात्मक दावों या हितों में विधि (कानून) द्वारा सामंजस्य पैदा करके सामाजिक असंतुलन को दूर करने का व्यापक रूप हैं।[1]

समाज में रहते हुए अपने विकास के समान अवसरों को प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति का मूल अधिकार है। व्यक्ति को उसकी गरिमा के साथ यह अधिकार दिलाना समाज की जिम्मेदारी मानी जाती है। वास्तव में यही सामाजिक न्याय है। सामाजिक न्याय दिलाते समय व्यक्तियों में कई बार प्रतिद्वन्द्वात्मक क्रियाएँ होती हैं। इन क्रियाओं के कारण समाज में संतुलन की स्थिति पैदा होती है। कानून के माध्यम से इस असंतुलन को कम करना ही सामाजिक न्याय का मुख्य विषय है।

सामाजिक न्याय दिलाने का उत्तरदायित्व राजनीतिक व्यवस्था द्वारा स्थापित कानून व्यवस्था का उत्तरदायित्व है। प्रत्येक राष्ट्र की कानून व्यवस्था उसके नागरिकों को सामाजिक न्याय का अभिवचन देती है। किसी भी राष्ट्र में जो सामाजिक समूह भिन्न–भिन्न दृष्टियों से वंचित हैं, पिछड़े हुए हैं उन्हें सामान्य का अवसर देने का वचन राजनीतिक व्यवस्था में दिया जाता है। प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक न्याय दिलाना कानून व्यवस्था के अंतर्गत आता है। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है की समाज में केवल कानून बनाने से सामाजिक न्याय की स्थिति नहीं बनती। सामाजिक न्याय दिलाने में किसी भी राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को अपने मूल अधिकारों और कर्तव्यों का अनुपालन करना पड़ता है।

सामाजिक न्याय समाज के व्यापक सहभागिता की माँग करता है। किसी भी समाज में सामाजिक न्याय की स्थिति तब तक नहीं बन सकती जब तक उसे समाज का प्रत्येक सदस्य अपने अधिकारों और कर्तव्यों के

*** सहायक प्रोफेसर, इंद्रायणी महाविद्यालय, तळेगाव–दाभाडे, पुणे–महाराष्ट्र–410507।**

प्रति सजक होकर व्यवहार न करें। कानून व्यवस्था सामाजिक न्याय के लिए यथोचित नियम बना सकती है परंतु उसका अनुपालन करने की संपूर्ण जिम्मेदारी उस देश के नागरिकों की होती है। सामाजिक न्याय के लिए चार बातों को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। इन्हें ही सामाजिक न्याय के चार मूल सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया जाता है। वह मूल सिद्धांत हैं– समानता, निष्पक्षता, सहभागिता और मानवाधिकार।

समानता (Equality): सभी व्यक्तियों को बिना भेदभाव के समान अधिकार और अवसर मिलने चाहिए। यह कानून के समक्ष समानता, शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य सेवाओं तक समान पहुँच को सुनिश्चित करता है।

निष्पक्षता (Equity) : समानता से एक कदम आगे, निष्पक्षता का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार संसाधन और अवसर प्रदान किए जाएँ। उदाहरण के लिए, वंचित समुदायों को अतिरिक्त सहायता देना।

सहभागिता (Participation) : सामाजिक न्याय समाज के सभी वर्गों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल करने पर जोर देता है, ताकि उनकी आवाज सुनी जाए।

मानवाधिकार (Human Rights) : सामाजिक न्याय मानवाधिकारों की रक्षा करता है, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, और जीविका का अधिकार। सामाजिक न्याय यह एक विभिन्न आयाम वाली संकल्पना है। इसमें आर्थिक सांस्कृतिक राजनीतिक लैंगिक तथा पर्यावरणीय स्तर पर न्याय को रखा जा सकता है।

सामाजिक न्याय के आयाम क्या हैं? – सामाजिक न्याय को विभिन्न आयामों में समझा जा सकता है–

आर्थिक न्याय : यह आय, संपत्ति और संसाधनों के समान वितरण पर केंद्रित है। इसमें गरीबी उन्मूलन, न्यूनतम मजदूरी, और सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ शामिल हैं।

सांस्कृतिक न्याय : यह विभिन्न सांस्कृतिक समूहों की पहचान, परंपराओं और मूल्यों का सम्मान करता है। उदाहरण के लिए, आदिवासी समुदायों की संस्कृति को संरक्षित करना।

राजनीतिक न्याय : यह सभी नागरिकों को समान राजनीतिक अधिकार और प्रतिनिधित्व प्रदान करता है, जैसे मतदान का अधिकार और नीति निर्माण में भागीदारी।

लैंगिक न्याय : यह लिंग आधारित भेदभाव को समाप्त करने और पुरुष, महिला, और अन्य लिंग पहचानों के बीच समानता को बढ़ावा देने पर केंद्रित है।

पर्यावरणीय न्यायः यह सुनिश्चित करता है कि पर्यावरणीय संसाधनों और बोझ (जैसे प्रदूषण) का वितरण निष्पक्ष हो, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले समुदायों के लिए।

सामाजिक न्याय की आवश्यकता क्यों है ? सामाजिक न्याय की आवश्यकता के कई कारण हैं– असमानता को कम करना। वंचित वर्गों का उत्थान। सामाजिक शांति और स्थिरता प्रदान करना। मानव गरिमा की रक्षा करना। सामाजिक न्याय प्रत्येक व्यक्ति को गरिमापूर्ण जीवन जीने का अवसर प्रदान करता है।

सामाजिक न्याय को प्राप्त करना दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। मनुष्य के रूप में व्यक्ति प्राणियों से अलग है, विशेष है। उसके मनुष्य होने की एक गरिमा है। मनुष्य को उसके मनुष्य होने के लाभ समान रूप से मिलने चाहिए यही सामाजिक न्याय का मूल सिद्धांत है। जो व्यक्ति मनुष्य के रूप में उत्पन्न होने के बावजूद उसकी गरिमा को प्राप्त नहीं करते उन्हें वह अधिकार और वह गरिमा प्राप्त कराना सामाजिक न्याय का मूल विषय है। मनुष्य को मनुष्य के रूप में जीने का संपूर्ण अवसर प्रदान करने के लिए किसी भी सामाजिक व्यवस्था में सामाजिक न्याय की आवश्यकता को तर्कसंगत माना जाता है।

भारत में सामाजिक न्याय की स्थिति क्या हैं? : भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा संविधान में निहित है, विशेष रूप से मौलिक अधिकारों और नीति–निर्देशक तत्वों में। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 (कानून के समक्ष समानता), अनुच्छेद 15 (भेदभाव का निषेध), और अनुच्छेद 16 (सार्वजनिक रोजगार में समान अवसर) सामाजिक न्याय के आधार हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में सामाजिक न्याय को मजबूत बनाने के लिए कुछ नीतियाँ अपनाई जा रही हैं उनमें आरक्षण नीति और कई सामाजिक कल्याण योजनाओं का समावेश है।

भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय की बातों को बहुत कठोरता पूर्वक सम्मिलित किया गया है। इतना होने के बावजूद भी आज तक भारतीय समाज में सामाजिक न्याय की बेहतर स्थिति देखने को नहीं मिलती। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तथा भौतिक स्तर पर कई तरह की असमानताएँ विद्यमान भारतीय समाज में देखने को मिलती है। राजनीतिक समानता मिलने के बावजूद लोग अपनी पसंद के अनुसार उम्मीदवारों का चुनाव नहीं कर पाते। जाति भाषा धर्म प्रांत आदि भेद नीति भारतीय राजनीति को बुरी तरह प्रभावित कर रही है। भारत में आज भी जाति के नाम पर लोगों को भडकाकर राजनीति की जाती है। जाति लाभ उठाने का तथा लोगों के बीच भेद उत्पन्न करने का साधन बन चुकी है। भारत के संविधान निर्माता ने भारतीय समाज में जिस सामाजिक न्याय की अपेक्षा की थी अभी भी वह भारतीयों को प्राप्त नहीं हो पाया है।

भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय शब्द को बार–बार उल्लेखित किया गया है। इसके संदर्भ में संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट रूप से कहा गया है, "हम भारत के लोग, भारत को एक प्रभुत्व संपन्न, 'समाजवादी' पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर इस संविधान को अंगीकृत और आत्मार्पित करते हैं।"[2]

भारत का संविधान इस देश के प्रत्येक नागरिक को सामाजिक न्याय का आश्वासन प्रदान करता है। सामाजिक न्याय केवल क़ानून के द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। सामाजिक न्याय के लिए देश के प्रत्येक नागरिक को अपने कर्तव्यों और अधिकार के प्रति सजग रहना पड़ता है।

सामाजिक न्याय के समक्ष चुनौतियाँ क्या हैं? – भारतीय सामाजिक परिवेश में आज भी सामाजिक न्याय देने और दिलाने में कई तरह की समस्याएं खड़ी हैं। उनमें जाति और वर्गगत भेद, लैंगिक भेदभाव, आर्थिक असमानता, शिक्षा और सामाजिक जागरूकता की कमी, व्यक्तिगत तथा सामाजिक क्रियाकलापों में भ्रष्टाचार की स्थिति इस तरह की कई समस्याएं हैं। यदि भारत के प्रत्येक नागरिक को उसके अधिकार दिलाने हो तो पहले सामाजिक सहभागिता के साथ इन रूकावटों को दूर करना होगा। यह सारी रुकावटें केवल कानून व्यवस्था से खत्म नहीं हो सकती। उसके लिए व्यापक स्तर पर जन के सहयोग और सहभागिता की आवश्यकता है। इस प्रकार का जनक सहभागी प्राप्त करना देश की राजनीति और कानून व्यवस्था के लिए बड़ा कठिन काम है। इन चुनौतियों को कुछ बिंदुओं में देख सकते हैं–

जाति और वर्ग भेद : भारत में जातिगत और वर्ग–भेद असमानताएँ सामाजिक न्याय के मार्ग में बाधा हैं।

लैंगिक भेदभाव : महिलाओं और अन्य लिंग पहचानों के खिलाफ हिंसा और असमानता अभी भी प्रचलित है।

आर्थिक असमानता : अमीर और गरीब के बीच बढ़ती खाई सामाजिक न्याय को लागू करने में चुनौती है।

शिक्षा और जागरूकता की कमी : सामाजिक न्याय के प्रति जागरूकता और शिक्षा की कमी इसके कार्यान्वयन में बाधा डालती है।

भ्रष्टाचार : नीतियों और योजनाओं के गलत कार्यान्वयन से सामाजिक न्याय प्रभावित होता है।

सामाजिक न्याय को बढ़ावा कैसे मिल सकता है?

शिक्षा और जागरूकता : सामाजिक न्याय के महत्व को स्कूलों और समुदायों में प्रचारित करना।

नीतिगत सुधार : समावेशी नीतियों को लागू करना, जैसे कि आरक्षण और सामाजिक कल्याण योजनाएँ।

संस्थागत सुधार : भ्रष्टाचार को कम करना और पारदर्शी प्रशासन सुनिश्चित करना।

सामुदायिक भागीदारी : स्थानीय समुदायों को नीति निर्माण में शामिल करना।

कानूनी : भेदभाव विरोधी कानूनों को सख्ती से लागू करना।

'सामाजिक न्याय' एक समावेशी और निष्पक्ष समाज की नींव है। यह केवल कानूनी या नीतिगत ढांचे तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक चेतना और सामूहिक जिम्मेदारी की माँग करता है। भारत जैसे

विविधतापूर्ण देश में, सामाजिक न्याय को लागू करना एक जटिल लेकिन आवश्यक प्रक्रिया है, जो शिक्षा, नीति, और सामुदायिक सहभागिता के माध्यम से संभव है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो समाज को अधिक मानवीय, समान और समृद्ध बनाती है।

श्यौराज सिंह 'बेचैन' हिंदी साहित्य में एक प्रमुख दलित साहित्यकार, कवि, कथाकार और आलोचक के रूप में जाने जाते हैं। उनके साहित्य में सामाजिक न्याय की अवधारणा केंद्रीय विषय है। उनके लेखन में सामाजिक न्याय का विचार दलित–चेतना तथा अस्पृश्यता, जातिगत भेदभाव, और सामाजिक–आर्थिक असमानता के खिलाफ संघर्ष के रूप में प्रकट होता है। बेचैन का साहित्य न केवल दलित समाज की पीड़ा और उत्पीड़न को उजागर करता है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन, समता, स्वतंत्रता, और बंधुता के मूल्यों को स्थापित करने की दिशा में एक मिशन के रूप में कार्य करता है। उनके साहित्य में सामाजिक न्याय की संकल्पना को निम्नलिखित बिंदुओं और संदर्भों के साथ विस्तार से समझा जा सकता है–

बेचैन के साहित्य दलित चेतना और सामाजिक न्याय :– श्यौराज सिंह 'बेचैन' का साहित्य दलित चेतना का प्रबल वाहक है, जो सामाजिक न्याय की माँग को मुखर करता है। उनका मानना है कि दलित साहित्य समांतर धारा के रूप में मुख्यधारा के साहित्य के साथ चलता है और यह सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए एक वैचारिक हथियार है। उनकी रचनाएँ दलित समाज के शोषण, अपमान, और अस्पृश्यता के अनुभवों को केंद्र में रखकर सामाजिक समानता की माँग करती हैं। उनकी आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' इस आत्मकथा में बेचैन, जो अपने बचपन और युवावस्था में जातिगत भेदभाव और सामाजिक बहिष्कार के अनुभवों को चित्रित करते हैं। वह बताते हैं कि कैसे दलित समुदाय को गाँवों में 'खुली जेल' जैसी स्थिति में जीना पड़ता है, जहाँ जीविका, सम्मान और शिक्षा के अवसर सीमित हैं। यह कृति सामाजिक न्याय की मांग को व्यक्त करती है, जो दलितों को शिक्षा, रोजगार, और सम्मानजनक जीवन के समान अवसर प्रदान करने पर जोर देती है।

सभी दलित रचनाकारों की तरह ही डॉक्टर बाबासाहेब आंबेडकर के बेचैन जी भी प्रेरणा स्रोत हैं। डॉ आंबेडकर सभी दलितों से यह कहा करते थे, की आत्मसम्मान को ठेस पहुंचाने वाला कोई भी काम उन्हें नहीं करना चाहिए। भारत के तमाम चमार समाज के लोगों को आज भी मुर्दा मवेशी उठाने का काम करना पड़ता है। लेखक को भी ऐसे काम मजबूरी में करने पड़े इस बात का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं, "उठा सको तो उठाओ बेटा गांव भर की मुर्दा मवेशियाँ जो तुम्हारे नाजुक कंधों का बेताबी से इंतजार कर रही हैं। भूखे हो तो खाओ मुर्दा मवेशियों का मांस और चाहिए चार आना, आठ आना तो, लंबरदार का जाकर करो बेगार, हाँकों रहट दांय उठाओ गोबर और डालो भूसा"।[3]

लेखक ने यहां अपने बचपन की बात कही है जिसमें उसे घर की आर्थिक बदहाली के कारण मुर्दा मवेशी उठाने का काम करना पड़ा। मरे हुए जानवरों का मांस खाना पड़ा। लेखक के समान हो हजारों लाखों दलितों को जीवन में अपने आत्म सम्मान के साथ समझौता करना पड़ता है। उनकी आत्मकथा पढ़कर दलितों के मन में आत्म सम्मान का भाव जागता है। कोई भी मनुष्य आत्मसम्मान के बिना अन्याय और अत्याचार के विरोध में खड़ा नहीं हो सकता। आत्म सम्मान ही मनुष्य को संघर्ष के लिए मजबूत बनाता है। 'अच्छी कविता' नामक कविता में बेचैन जी लिखते हैं–

"अच्छी कविता / अच्छा आदमी लिखता है
अच्छा आदमी कथित ऊंची जात में पैदा होता है
ऊंची जात का आदमी / ऊंचा सोचता है
हिमालय की एवरेस्ट चोटी की बर्फ के बारे में
या नासा की / चाँद पर हुई नयी खोजों के बारे में
अच्छी कविता / कोई समाधान नहीं देती
निचली दुनियादार जिन्दगी का।"[4]

कवि ने इसमें व्यंग्यपूर्ण शैली के साथ सामाजिक न्याय में साहित्य की भूमिका समझाई है। इसमें बेचैन सामाजिक न्याय के प्रति साहित्य की जिम्मेदारी को रेखांकित करते हैं। वे कहते हैं कि 'अच्छी कविता' केवल सौंदर्यबोध या पुरस्कारों के लिए नहीं होती, बल्कि उसे सामाजिक भेदभाव, जाति, और लिंग के मुद्दों को उठाने

के लिए होती है। यह कविता साहित्य को सामाजिक परिवर्तन और न्याय का माध्यम बनाने की प्रतिबद्धता को दर्शाती है।

जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता के खिलाफ आवाज :– बेचैन का साहित्य जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता के खिलाफ एक तीखा विद्रोह है। वे स्वयं को 'अछूत श्यौराज' कहलाना पसंद करते हैं, क्योंकि यह संबोधन देश में अभी भी मौजूद अस्पृश्यता और गुलामी की सच्चाई को उजागर करता है। उनकी रचनाएँ सामाजिक न्याय को इस रूप में प्रस्तुत करती हैं कि जब तक एक भी व्यक्ति के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार होता है, तब तक समाज में पूर्ण न्याय संभव नहीं है।लेखक ने इस संदर्भ में कहा है– **"अस्पृश्यता के जहरीले वृक्ष का बीज ब्राह्मणों ने डाला है जिसकी शुरुआत मंदिर से होती है। मंदिर में वे अपने भगवान को कैद रखते हैं, क्योंकि वह इतना नाजुक है कि दलित की मात्र छाया से ही दूषित हो जाएगा।"**।[5]

लेखक इसमें जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता के लिए भारत के ब्राह्मण समाज को जिम्मेदार ठहराते हैं। भारत का यह सवर्ण समाज ही है जिसने भारतीय समाज को जाति के दंश सहने के लिए मजबूर किया। लेखक की पीड़ा और क्रोध दोनों इसमें अभिव्यक्त हुए हैं।

'हमशक्ल' कहानी में बेचैन 1990 के दशक की सामाजिक और राजनीतिक घटनाओं को चित्रित करते हैं, जिसमें सवर्णों की सामंती और मार्क्सवादी विचारधारा की आलोचना की गई है। यह कहानी दलितों के प्रति शासक वर्ग की अलोकतांत्रिक सोच को उजागर करती है और सामाजिक न्याय के लिए दलितों की आवाज को बुलंद करती है।

इस कहानी में बसपा का एक सुप्रीमो हो वर्तमान राजनीति में जाति का उपयोग कैसे किया जाता है इसे बताते हुए कहता है, **"आम गरीब ब्राह्मण की थाली में आमीर चमार भंगी को भी खाना खिला दें तो मैं जाति को छोड़कर वर्ग की राजनीति करूंगा।"**।[6]

इन छोटी–सी पंक्तियों में भारत की राजनीतिक सच्चाई को उजागर किया गया है। भारत की राजनीति में जाति– व्यवस्था बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जाति के आधार पर ही उम्मीद्वारों को टिकट दिए जाते हैं और वोट भी जाति के आधार पर ही माँगे और दिए जाते हैं। यही कारण है कि आज भी दलितों का उद्धार करने वाले दलित नेता भारत की राजनीति में उभर कर नहीं आ पाए हैं।

सामाजिक परिवर्तन और सशक्तिकरण :– बेचैन का साहित्य सामाजिक परिवर्तन और दलित सशक्तिकरण को सामाजिक न्याय का आधार मानता है। वे चाहते हैं कि साहित्य युवाओं को जिम्मेदार, संवेदनशील, और लोकतांत्रिक मूल्यों को आत्मसात करने वाला बनाए। उनकी रचनाएँ दलित समाज को शिक्षा, आत्मसम्मान, और सामाजिक–आर्थिक उन्नति के माध्यम से सशक्त बनाने पर जोर देती हैं। उदाहरण के लिए साक्षात्कार में विचारव्यक्त करते हुए बेचैन कहते हैं, **"ऐसा साहित्य पढ़कर युवा जिम्मेदार बनें, संवेदनशील बनें, लोकतांत्रिक ढंग से सभ्य और समता, स्वतंत्रता और बंधुता के मूल्यों को आत्मसात करने वाले बनें।"**[7] यह विचार सामाजिक न्याय को एक सामूहिक प्रयास के रूप में प्रस्तुत करता है, जो समाज के कमजोर वर्गों के सशक्तिकरण से जुड़ा है।

उनकी कहानी 'आग और फूँस' में वे कहते हैं, **"आज उसने चाय के साथ अपनी हृदय विधारक सच्चाई कहानी की तरह मेरे गले में उतार दी। लगता है इस खास खबर के लिए शायद उसने सही शख्स चुना। जूरी जज होने के नाते आज मैंने 'सावित्रीबाई फुले अवार्ड' के लिए उसकी सिफारिश कर दी है।"**[8]

यह कथन इस कहानी के अंत में आया है। कहानी में एक सरस्वती नाम की लड़की का वर्णन है। जो ब्राह्मण घर में पैदा होकर एक दलित लड़के से विवाह करती है। पति के मौत के बाद भी वह उसी के घर में उसके पिता के साथ रहती है। दोनों मिलकर गांव में स्कूल चलाते हैं। उन्हें कई मुसीबत का सामना करना पड़ता है। सरस्वती पर बलात्कार भी होता है। इन आपत्तियों के बावजूद वह हार नहीं मानती। अपना काम और भी उत्साह के साथ करने लगती है। इस तरह की कहानी और प्रसंग को बात कर लेखक दलितों में तथा वंचित लोगों के मन में जीवन का नया उत्साह और सकारात्मक परिवर्तन की ऊंची आकांक्षा भरना चाहते हैं। यह आकांक्षा ही सामाजिक न्याय का असली मार्ग है।

बेचैन के साहित्य नारी उत्थान और सामाजिक न्याय :— बेचैन का साहित्य न केवल जातिगत न्याय पर केंद्रित है, बल्कि लैंगिक समानता को भी सामाजिक न्याय का अभिन्न हिस्सा मानता है। वह दलित महिलाओं की स्थिति को विशेष रूप से उजागर करते हैं और उनके लेखन में यह तथ्य सामने आता है कि दलित समाज में महिलाएँ दोहरे उत्पीड़न (जाति और लिंग) का सामना करती हैं।

बेचैन जी अपने एक दीर्घ लेख 'स्त्री कथा विमर्श' में लिखते हैं, **"सवर्ण महिला दलित महिला को दासत्व प्रदान करती है। यह व्यावहारिक क्रूरता है। वे रचनात्मक स्तर पर भी वैसी उदार नहीं हैं। परिस्थितियों पर ध्यान दिया जाए तो यह कहा जा सकता है कि खासकर हिंदी कथा लेखिकाएं न तो स्त्रियों के किसी मुक्ति आंदोलन से जुड़ी हैं ना उनके पास कामकाजी महिलाओं जैसे कटु अनुभव हैं। इसे हिंदी जगत का दुर्भाग्य कहा जाए या सौभाग्य कि समकालीन हिंदी कथा लेखन अभिजात वर्ग के घेरे से बाहर नहीं निकल पाया है। स्त्री कथा लेखिकाएं भी चूक गई हैं।"**[9]

इस दीर्घ कथन में लेखक, यह समझना चाहते हैं की अभिजात वर्ग की लेखिकाएं दलित औरतों के दुख दर्द से परिचित नहीं होती हैं। वे उन्हें अपने शब्दों में नहीं बाट सकती है। अभिजात लेखिकाओं से दलित महिलाओं के दुख दर्द और मुक्ति की लड़ाई की अपेक्षा करना ही गलत है। यदि दलित महिला का उत्थान करना है तो वह दलित रचनाकारों से ही संभव हो सकता है। साहित्य के क्षेत्र में तथा स्त्री मुक्ति के आंदोलन में दलित और वंचितों को आगे आना समय की मांग है। सामाजिक न्याय की दृष्टि से यही सबसे योग्य बात है।

पर्यावरणीय और सामाजिक सरोकार :— बेचन जी का साहित्य पर्यावरणीय तथा सामाजिक समस्याओं को केंद्र में रखकर लिखा गया साहित्य है। यदि पृथ्वी का पर्यावरण संतुलित होगा तो ही मनुष्य के साथ सभी जीव जंतु जीवन व्यतीत कर पाएंगे। प्रकृति का संतुलन नष्ट करने में गरीब, आदिवासी और दलित समाज के लोग कभी आगे नहीं होते। वह हमेशा प्रकृति को बचाने में ही लगे होते हैं। भारत में वर्तमान समय में प्रकृति की जितनी भी सुंदरता बची हुई है वह इन वंचितों की ही देन है। कवि 'सवाल बच्चों से' नामक कविता में पर्यावरण से जुड़े कई प्रश्न उपस्थित करते हुए इस सामाजिक सरोकार का विषय बना देता है। कवि अपनी कविता में कहते हैं,

"अब तो शौचालय भी बना लिए होंगे
साफ सफाई तो —
अछूत ही करते होंगे ना?"[10]

आजाद भारत में आज भी शहरों की साफ—सफाई का काम दलितों को ही करना पड़ता है। या ऐसा भी कह सकते हैं कि यह काम करने की नौबत उन्हीं पर आती है। सवर्ण समाज के लोग इस प्रकार के कामों में कभी भी आगे नहीं आते। पर्यावरण की सुरक्षा करने वाले, कचरा उठाने वाले, गंदगी साफ करने वाले आज भी दलित ही होते हैं। इस पर्यावरणीय सत्य को समझना जरूरी है। असल में यह एक सामाजिक सत्य भी है। यदि सामाजिक न्याय की दृष्टि से विचार किया जाए तो पर्यावरण की रक्षा करना सब की जिम्मेदारी है पर इसमें सबसे आगे हम दलितों को ही पाते हैं।

सामाजिक न्याय में मीडिया और साहित्य की भूमिका :— बेचैन का मानना है कि सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने में साहित्य और मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका है। वह कहते हैं कि दलित साहित्य और स्वतंत्र मीडिया को मजबूत करने की आवश्यकता है, ताकि दलितों के विचार और अधिकारों को व्यापक मंच मिले। बेचैन कहते हैं, **"हमारे विचारक या नेता अपनी पत्र—पत्रिकाएँ, अपना मीडिया खड़ा नहीं करते तो वह अपने विचारों को विस्तृत नहीं कर पाते।"**[11]

वे बाबासाहेब आंबेडकर के मूकनायक, बहिष्कृत भारत, और जनता—समता जैसे अखबारों का उदाहरण देते हैं, जो सामाजिक न्याय की आवाज उठाने में महत्वपूर्ण थे।

सामाजिक न्याय के लिए साहित्यिक दृष्टिकोण होना चाहिए। बेचैन का मानना है कि साहित्य को उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए। उनकी रचनाएँ न केवल दलितों की पीड़ा को चित्रित करती हैं, बल्कि समाज को बदलने की प्रेरणा भी देती हैं। वह कहते हैं, **"रचना को बार—बार पकाएं। एक लेखक को न्याय, कल्याण और भविष्य निर्माण को ध्यान में रखकर लिखना चाहिए।"**[12]

यह विचार उनके साहित्य में सामाजिक न्याय के प्रति गहरी प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

बेचैन की प्रमुख कृति और सामाजिक न्याय :– बेचैन की निम्नलिखित कृतियाँ सामाजिक न्याय की अवधारणा को मजबूत करती हैं– 'अंबेडकर, गांधी और दलित' यह कृति आंबेडकर और गांधी के विचारों के बीच तुलना करती है और दलितों के लिए सामाजिक न्याय की माँग को मजबूत करती है।

बेचैन के साहित्य में चित्रित सामाजिक न्याय की चुनौतियाँ :– बेचैन अपने साहित्य और साक्षात्कारों में सामाजिक न्याय के समक्ष कई चुनौतियों को रेखांकित करते हैं, **"जातीयता सामाजिक दुनिया को सीमित करती है और लोग अपनी जाति के हितों को प्राथमिकता देते हैं, जो सामाजिक न्याय के मार्ग में बाधा है"।**[13] आत्मसम्मान का संकटः बेचैन का मानना है कि दलित युवाओं को आत्मसम्मान बनाए रखने की आवश्यकता है, अन्यथा वे अपनी पहचान और विचारधारा से समझौता कर सकते हैं।

मीडिया और साहित्य की कमी :– वह दलित साहित्य और मीडिया की सीमित पहुंच को सामाजिक न्याय के लिए एक बड़ी चुनौती मानते हैं।

निष्कर्ष :– श्यौराज सिंह 'बेचैन' का साहित्य सामाजिक न्याय की अवधारणा को दलित चेतना, आत्मसम्मान, और सामाजिक परिवर्तन के माध्यम से प्रस्तुत करता है। उनकी रचनाएँ न केवल दलित समाज के उत्पीड़न और संघर्ष को उजागर करती हैं, बल्कि समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुता के मूल्यों को स्थापित करने की दिशा में एक ठोस प्रयास हैं। उनकी आत्मकथा, कहानियाँ, कविताएँ, और आलोचनात्मक लेखन सामाजिक न्याय के लिए एक मिशन के रूप में कार्य करते हैं, जो न केवल दलितों, बल्कि समाज के सभी वंचित वर्गों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। बेचैन का साहित्य यह सिखाता है कि सामाजिक न्याय केवल कानूनी या नीतिगत बदलावों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक चेतना, शिक्षा, और साहित्यिक जागरूकता के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ सूची :–

1. भारत का संविधानः एक परिचय, डॉ. दुर्गादास बसु, वाधवा एंड कंपनी, नई दिल्ली, पृ.25।
2. भारत का संविधान, विधि मंत्रालय, भारत सरकार, प्रस्तावना से उद्धृत।
3. 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', श्यौराज सिंह 'बेचैन', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2009, पृ. 27।
4. http://kavitakosh.org/ाा/अच्छी कविता/ श्यौराज सिंह 'बेचैन'।
5. उत्तर सदी के हिंदी कथा साहित्य में दलित–विमर्श, श्यौराज सिंह 'बेचैन',अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2014 पृष्ठ 251।
6. हाथ तो उग ही आते हैं, श्यौराज सिंह 'बेचैन', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2020 पृष्ठ, 46।
7. (https://www.youtube.com/live@V31hHp81r&o\si¾L9infRlan01p3wkY) लेखक से बातचीत।
8. हाथ तो उग ही आते हैं, श्यौराज सिंह 'बेचैन' वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2020 पृष्ठ, 106।
9. उत्तर सदी के हिंदी कथा साहित्य में दलित– विमर्श, श्यौराज सिंह 'बेचैन', अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली पृष्ठ, 75।
10. भोर के अंधेरे में, श्यौराज सिंह 'बेचैन', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ, 204।
11. (https://www.youtube.com/live/V31hHp81r&o\si¾L9infRlan01p3wkY) लेखक से बातचीत।
12. वही।
13. वही।

नयी वैचारिक जमीन की दस्तक : 'फुज्जार' कहानी संग्रह

डॉ. सुनील कुमार मानस*

'फुज्जार' धनेश दत्त पाण्डेय का नवोदित कहानी–संग्रह है, जो न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली (2025) से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में 13 कहानियों का संकलन है, जिनके क्रमशः नाम हैं– 'मौत के आगोश में', 'फुज्जार', 'साहब का शोशा', 'मनोदाह', 'बेअदबी', 'लव जिहाद उर्फ़ क्रौंचवध', 'मर्दमार', 'भोंदू', 'आर्य सत्य', 'आसमान में सुराख', 'सोहबत', 'मंदिर के सामने वाला घर', 'अफीम'।

धनेश दत्त पांडेय एक अच्छे कहानीकार हैं और उनका संवेदनशील लेखन पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। यद्यपि वे आठवें दशक से लिखते–पढ़ते आ रहे हैं, किंतु बीच में कुछ संवेदनात्मक एवं भावनात्मक कारणों से उनका लेखन कार्य स्थगित रहा, लेकिन हर अच्छे लेखक में एक खास किस्म की संजीदगी होती है, जिसके चलते वह अपने साहित्यिक व्यक्तित्व को अधिक समय तक छिपा नहीं सकता। यह व्यक्तित्व अनायास ही किसी न किसी स्रोत की तरह प्रकट होता है, गतिशील होता है। धनेश जी की यह सृजनात्मक स्रोतस्विनी 2022 से पुनः कहानी और आलोचना के सृजन के रूप में– हमारे सामने आती है। वे संपादन के क्षेत्र में भी अपनी महनीय भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं।

"फुज्जार" बड़ा मौजू शब्द है, इसकी उत्पत्ति अरबी भाषा के "फ़ाजिर" शब्द से मानी जाती है, जिसका अर्थ होता है– अत्यधिक पापी, दुराचारी या भ्रष्ट व्यक्ति। "फुज्जार" इस शब्द का बहुवचन है, और इसका प्रयोग सामान्यतः ऐसे लोगों के लिए किया जाता है, जो नैतिक या धार्मिक चरित्र या आचरण से गिर चुका हो। हालाँकि अरबी में "फज्र" शब्द का अर्थ होता है 'भोर' या 'प्रातःकाल', जो एक पवित्र और शुभ समय माना जाता है, लेकिन "फुज्जार" का इससे कोई प्रत्यक्ष भाषिक संबंध नहीं है। यह संभवतः एक व्युत्पत्ति संबंधी भ्रांति है कि 'फुज्जार' को 'फज्र' से जोड़ा जाता है। वास्तव में, "फ़ाजिर" का मूल अर्थ होता है– जो ईश्वरीय या नैतिक मार्ग का उल्लंघन करे। इसी अर्थ में "फुज्जार" का उपयोग धार्मिक ग्रंथों में "पापियों" या "व्यभिचारियों" के लिए किया गया है। अस्तु कह सकते हैं कि "फुज्जार" शब्द पुल्लिग है, जिसका अर्थ है– अधम, व्यभिचारी, बहुत अधिक दुराचारी और लंपट व्यक्ति। यह शब्द आचरण की दृष्टि से नैतिक अधःपतन के चरम रूप का सूचक है, जिसको ध्यान में रखकर लेखन इस संग्रह का नाम "फुज्जार" रखा है। एक प्रश्न यह भी उठता है कि जब इस संग्रह की तेरहों कहानियाँ अच्छी हैं, तो इसका नाम 'फुज्ज़ार' ही क्यों रखा गया? जहाँ तक मेरी समझ है, इसका मुख्य कारण वर्तमान समाज की सबसे बड़ी विडंबना को उजागर करना है– वह यह कि एक ईमानदार, गरीब, अनपढ़ व्यक्ति होना ही– आज के समाज में अपराध बन गया है। जो व्यक्ति चरित्रवान हो, जिसकी सच्चाई दूर–दूर तक फैली हो, उसी को सबसे अधिक प्रताड़ित किया जाता है। हमारे समाज में यह एक चलन–सा बन गया है कि निर्दोष को ही दोषी ठहरा दिया जाए। यह प्रवृत्ति औपनिवेशिक काल में स्वीकारोक्ति का हिस्सा बन गई और आज की शासन–प्रशासन व्यवस्था में कोई भी संस्था उसे सही करने की शक्ति नहीं रखती। सभी इस प्रवृत्ति को मौन रूप से स्वीकार कर चुके हैं। सत्ता की हनक इतनी निरंकुश हो गई है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी सीमा तक अन्याय कर सकता है। इसका जीवन्त उदाहरण– यह कहानी है।

''इस संग्रह की सभी कहानियाँ प्रभावशाली हैं, लेकिन 'फुज्ज़ार' ऐसी कहानी है, जो शेष सभी का प्रतिनिधित्व करती है। इन दो प्रमुख कारणों से लेखक ने इस कहानी–संग्रह का नाम 'फुज्ज़ार' रखा। इस कहानी का पात्र बौधा भी बहुत आकर्षित करता है, जो न केवल समाज को, बल्कि शासन और प्रशासन की संपूर्ण व्यवस्था की कमजोरी को भी तार–तार करता है। जब अधीक्षक एक दिन बौधा से कहता है– "कोर्ट ने तुम्हारे गुनाहों को धो डाला है और तुम्हें खुशी–खुशी घर जाने की इजाजत दे दी है।" तो उसका जो

***अध्यक्ष : हिंदी विभाग, सरकारी विनयन कॉलेज, बेचराजी (गुजरात)**

उत्तर ईश्वर को संबोधित करते हुए होता है, अत्यंत मार्मिक है– "जब तक मैं ज़िंदा हूँ, यहीं रखना कि यहाँ से निकलूं, तो अपना पाक–साफ़ दामन लेकर ही तुम्हारे दरबार में हाज़िर हो सकूँ।" "तुम्हें सब पता है, सबका पता है। बात जिगर की है कि इंसान की रूह पर दाग़ हज़ार हों, कफ़न तो सबके सफेद ही होते हैं।" – यह बात अत्यंत प्रभावशाली है– हम संसार में कितने भी गुनाह कर लें, लेकिन अंत में जब संसार के पार जाते हैं, तो सफेद चादर ओढ़कर ही। यह सांकेतिक अर्थ हमें इस ओर इंगित करता है कि जैसे हम मृत्यु के समय सफेद चादर ओढ़ते हैं, वैसे ही हमें अपने जीवन के सफेद दामन को भी स्वच्छ बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए। यहां कबीर की वह पंक्ति स्मरण हो आती है– "मैली चादर ओढ़ के कैसे द्वार तुम्हारे जाऊं।" और भक्तिकाल का हर एक कवि स्मरणीय हो उठता है।

इस संग्रह की पहली कहानी **'मौत के आगोश में'** को यदि हम देखें तो स्पष्ट होता है कि समकालीन समय– जो 21वीं सदी का है– उसमें हर आदमी कहीं–न–कहीं इसी मौत के आगोश में जीने के लिए विवश है या कहूँ कि अभिशप्त है। कब, कहाँ, कौन–सी घटना घट जाए, किसी को कुछ पता नहीं चलता। आज की मेडिकल रिर्पोट में किसे ज़िंदा और किसे मुर्दा घोषित कर दिया जाए, यह भी कोई नहीं जानता, लेकिन ह्रदय के तार, अपनत्व के भाव– इतने सघन होते हैं कि वे अपने प्रियजन को बचा ही लेते हैं। इस कहानी में यह स्पष्ट हो जाता है कि एक तरफ समकालीन विडंबनात्मक स्थिति है, तो दूसरी ओर अपनत्त्व और लगाव के ऐसे तार हैं, जो देह में फिर से प्राण फूंकने का कार्य कर देते हैं। रचनाकार इस कहानी के माध्यम से यह संकेत करता है कि यदि हमें बचे रहना है, तो अपनत्व की इस धारा को समाज में प्रवाहित करने की जरूरत है।

'साहब का शोशा' कहानी एक प्रशासनिक व्यक्ति के सेवानिवृत्त होने के बाद उसके पारिवारिक एवं सामाजिक यथार्थ को उद्‌घाटित करती है। अधिकांश प्रशासनिक व्यक्ति सामाजिक जीवन से कटे ही होते हैं। यदि सच कहा जाए, तो भारत में लोक–जीवन की जो परंपरा है, उससे वे पूरी तरह से अलग हो जीते हैं। उनकी मानसिकता पूरी तरह औपनिवेशिक दृष्टिकोण से संचालित होती है, और यही दृष्टि उनके पूरे परिवार को प्रभावित करती है। जब वे बड़े शहरों की आवासीय व्यवस्था से हटकर किसी छोटे स्थान पर आवास बनाते हैं, तो वे वहाँ पर समायोजित नहीं हो पाते। इस कहानी में औपनिवेशिक व्यवस्था का प्रतीक वह प्रशासनिक अधिकारी है, जो अपने ही परिवार से कट चुका है। उसके बच्चे, बहुएँ, बेटी– कोई भी ऐसा नहीं है जो उसके साथ खड़ा हो सके। सब अपने–अपने कार्यों में व्यस्त हैं। वहीं 'मैं' के रूप में स्वयं रचनाकार उपस्थित होता है, जो हरसंभव सहायता करना चाहता है। यहाँ यह भी स्पष्ट होता है कि जब तक आप प्रशासन में हैं, तब तक सब आपकी बात सुनते हैं; लेकिन अवकाश के बाद कोई आपकी बात सुनने को तैयार नहीं होता। शासन और प्रशासन– सभी के अपने–अपने बहाने हैं, और अंततः उसका वही हश्र होता है– जिसमें वह पूरी तरह से टूट जाता है। सच कहें तो यह कहानी बढ़ती हुई औपनिवेशिक मानसिकता के परिणति की कहानी है। यह अलग बात है कि अधिकतर लोगों को यह बाद में ही समझ आती है।

'मनोदाह' कहानी जमींदारी व्यवस्था की तीन पीढ़ियों की कहानी है। इसमें गोविंद नारायण सिंह और सिरी बाबू अलग–अलग पीढ़ियों की मानसिकता को दर्शाते हैं। गोविंद नारायण सिंह एक ओर अपनी पारंपरिक व्यवस्था को निभाते हैं, किंतु धीरे–धीरे इस बनावटी, दिखावटी और सजावटी दुनिया में अंदर से खोखले होते चले जाते हैं। वहीं सिरी बाबू, इस व्यवस्था को आगे बढ़ाने के नाम पर अय्याशी की हद तक चले जाते हैं। कई बार यह समझ में नहीं आता कि जब हम परंपरा और पीढ़ियों की स्मृति करते हैं, तो उसे आगे बढ़ाने के लिए सोच–समझकर, समय के अनुरूप, एक नई दिशा में कदम बढ़ाना चाहिए, ताकि परिवार और समाज को बचाया जा सके। किंतु यहाँ तो स्थिति उलटी है– बाह्य रूप से 'हम जमींदार हैं' यह दिखाने के लिए सिरी बाबू न केवल आर्थिक तंगी से, बल्कि चारित्रिक दृष्टि से भी नीचे गिर जाते हैं। तीसरी पीढ़ी, यानी संतोष नारायण सिंह, एक नई दृष्टि के साथ सामने आते हैं। इस कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि रचनाकार यह संकेत देता है कि आने वाली पीढ़ी यदि समझदारी से चले तो समाज और व्यवस्था में बदलाव संभव है। नहीं तो केवल दिखावे की होड़ में बड़ी–बड़ी जमींदारीयाँ भी 'मटियामेट'

हो जाती हैं। कहानी का अंत अत्यंत रोचक है जिसे लेखक एक नयी परिवार–समाज–दृष्टि के साथ प्रस्तुत करता है। इस कहानी को पारिवारिक स्त्री–विमर्श की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

'बेअदबी' कहानी एक नई दृष्टि की कहानी है। इसमें रचनाकार यह दिखाने की पूरी कोशिश करता है कि जो ईमानदार है, जो सच कहना जानता है, वह आज के समय में सबका दुश्मन बन जाता है। कहीं न कहीं कोई न कोई व्यक्ति ऐसी साजिश रचता है कि ऐसे व्यक्ति को समाज से मिटा दिया जाए। इस बात को रचनाकार ने बहुत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। यहाँ तक कि उसे जानने वाले व्यक्ति भी उसे पहचानने से इनकार कर देता है। 'ख़बर होते हुए भी बेख़बर हो जाना' आज के समय की सबसे बड़ी व्यवहारिक नीति या नियति बन गई है। स्वयं रचनाकार भी इसका शिकार है, किंतु उसका यह शिकार होना एक संवेदनात्मक अव्यक्त के रूप में इस कहानी में अभिव्यक्त हुआ है, और यही अभिव्यक्ति उसकी सबसे बड़ी संजीदगी बन जाती है, जो बिना कुछ कहे–सुने समय का इतिहास रच देती है।

'लव ज़िहाद उर्फ़ क्रौच वध' कहानी अत्यंत प्रभावशाली है। इसमें कहानीकार ने एक विशेष किस्म के शिल्प को रचा है– जो पौराणिक गाथा की भांति एक नए प्रकार के शिव, पार्वती और नंदी को लेकर सामने आती है। यह लव जिहाद की स्थितियों को, शिवसेना, आर.एस.एस. और आज की वैचारिक स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में रखती है। शिव–पार्वती स्वयं स्थिति से अनभिज्ञ हैं और सचेत होने की हर संभव कोशिश करते हैं। इस कहानी को पढ़ते हुए यह अनुभव होता है कि– देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच!/कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।" अंततः इस कहानी का लब्बोलुआब यही है कि दोष किसी एक व्यक्ति या पक्ष का नहीं है, बल्कि कहीं न कहीं सभी दोषी हैं– सभी पक्ष दोषी हैं– कम–ज्यादा जरूर हो सकते हैं।

'मर्दमार' कहानी एक प्राध्यापक स्त्री की कहानी है। इसमें डॉ. सुषमा जौहरी को विद्यार्थी, स्टाफ तथा सामाजिक–राजनीतिक स्थितियाँ सभी स्त्री होने की सजा देते हैं, जिसका सामना वह एक नए ढंग से करती हैं। यह थोड़ी यथार्थ से हटकर, विशुद्ध कल्पनात्मक कहानी लगती है, जिसमें यथार्थ को एक नई दिशा देने का प्रयास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कहानी में डॉ. जौहरी को उनके विद्यार्थी उल–जुलूल प्रश्नों से परेशान करते हैं। सहकर्मी प्राध्यापक भी कहीं न कहीं उनका साथ नहीं देते, बल्कि मज़ा लेने की फिराक़ में रहते हैं। यहाँ तक कि प्राचार्य भी इसमें पीछे नहीं रहते। नेताओं या बड़े लोगों के बेटे अपनी हरकतों से बाज नहीं आते। ऐसे में डॉ. जौहरी एकदम मॉडर्न लेडी की ड्रेस, आधुनिक विचारधारा और सीधे विवाह का प्रस्ताव रख देने के साहस के साथ– सामने आती हैं। इससे सभी स्टाफ के सदस्य और विद्यार्थी हतप्रभ रह जाते हैं। यहाँ यह बात समझ में आती है कि जब तक स्त्री परंपरा और मर्यादा के दायरे में रहती है, तब तक उसे तमाम समस्याओं का सामना करना पड़ता है, लेकिन जब वही स्त्री मर्यादा और परंपरा के बंधनों से मुक्त होकर आधुनिक रूप में सामने होती है, तो समाज उसे स्वीकार करने में डरने लगता है। इस कहानी की एक बात अत्यंत प्रभावित करती है कि– "आदमी की औलाद जब शराफ़त छोड़ देती है, तब वह आदमी नहीं होती, रीक्ष, गिद्ध या लकड़बग्घा बन जाती है। फिर भी वह आदमी की औलाद है, इस कारण शराफ़त उसमें चिपकी रहती है, कृष्णपक्ष का चाँद बनकर, या अमावस्या की कालिमा होकर।" बस आवश्यकता होती है इस कालिमा को दिन के प्रकाश में बदल देने की– और यही दिन का उजास समाज में समझदारी पैदा कर दकता है।

'भोंदू' कहानी बहुत आकर्शित करती है। कई बार लगता है कि हमारे आसपास कोई 'भोंदू' ज़रूर होना चाहिए– पर अब भोंदू मिलते नहीं हैं। यह भी प्रतीत होता है कि आज के समय में कोई भोंदू हो भी नहीं सकता है? 'भोंदू' एक अनगढ़–सा शब्द होते हुए भी इतना आकर्षक है कि लगता है, इस समाज को यदि कोई बचा सकता है तो वह सिर्फ भोंदू ही है। एकदम निर्दोष चरित्र, किसी भी प्रकार का लोभ नहीं, केवल कर्तव्य और निस्वार्थ जीवन की कामना और इसी को प्रतिष्ठित करने का हर संभव प्रयास ही– उसके जीवन का चरम लक्ष्य है। वह हमें मनुष्य नहीं 'ईश्वरीय गुणों से युक्त'–सा लगता है। आज का समाज इतना स्वार्थी हो गया है कि कोई भी किसी के साथ नहीं खड़ा होता। यहाँ तक कि अपने बच्चे, अपने लोग,

अर्धांगिनी कहलाने वाली पत्नी भी नहीं। सबके अपने–अपने स्वार्थ हैं। अगर कोई वास्तव में 'अपना' हो सकता है, तो वह भोंदू ही है। भोंदू भारतीय परंपरा की व्यवस्था का वह हर एक आदमी हो सकता है, जो इस औपनिवेशिक व्यवस्था से बचा है। जहाँ–जहाँ यह औपनिवेशिक व्यवस्था पहुँचती है, वहाँ–वहाँ भोंदू गायब होते जाते हैं। कई बार लगता है कि हम जा कहाँ रहे हैं? हमारे होने का क्या अर्थ है? हम बड़े से बड़े पद, सुविधा, व्यवस्था भले पा लें– लेकिन भोंदू नहीं बन पा सकते, और जो कुछ बचे हुए भोंदू हैं, वे हमारे ही कारण इस दुनिया को अलविदा कह जा रहे हैं– यह कहानी इस बात का ज्वलंत उदाहरण है।

'आर्य सत्य' कहानी कोरोना–काल का प्रामाणिक एवं जीवंत दस्तावेज प्रस्तुत करती है। इसमें सरकार की तमाम घोषणाएँ, नेताओं की दिखावटी कोशिशें, और तथाकथित सहायताओं का विस्तृत हवाला दिया गया है– किंतु यथार्थ पर इनका अमल कहीं दिखाई नहीं देता। 'हाथी के दाँत खाने के कुछ और, दिखाने के कुछ और'– यह बात इस कहानी में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। बड़ी–बड़ी बातें, बड़े–बड़े कारनामे और जितने बड़े–बड़े लोग– उतनी ही बड़ी–बड़ी बातें और कारनामें और उतनी ही बड़ी धोखेबाज़ी। ऐसे में एक आम व्यक्ति को यातनाओं और पीड़ाओं के समुद्रों और पहाडों से गुजरना पड़ता है, जो असहनीय हैं। इसमें एक आम व्यक्ति की पीड़ा का चित्रण है, जो अपनी माँ और नवोदित पत्नी को कोरोना–काल में शहर से लौटने पर मरा ही पाता है। इस कहानी में बड़ी–बड़ी बात करने वाले बड़े–बडे नेताओं के खोखलेपन को पूरी तरह उजागर किया गया है। चाहे ताली–थाली बजाना हो, घंटी बजाना हो, दीया जलाना हो या अन्य खोखली प्रतीकात्मक बातें करनी हो। इन सब से आम व्यक्ति को कोई राहत नहीं मिलती। वह केवल सिर पकड़ कर बैठ सकता है, उसके पास दूसरा कोई विकल्प नहीं बचता– यही इस समाज की सबसे भयावह सच्चाई है, जिसे यह कहानी उजागर करती है।

'आसमान में सुराख...!' कहानी कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। पहली बात तो यह कि यह कहानी दशरथ मांझी की याद दिला देती है। दूसरी बात– यह संदेश देती है कि इस देश में केवल एक दशरथ मांझी ही नहीं हुआ, बल्कि लौंगी जैसे भी तमाम लोग हुए, जो अनवरत अपने श्रम से समाज को बहुत कुछ देते रहे हैं। ये ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें इतिहास के पन्नों में अमर होना चाहिए, लेकिन इनका कोई नाम लेने वाला नहीं है। लौंगी सब कुछ छोड़कर केवल भविष्य की खेती करता है और उसी खेती में पूरा गांव फूलता–फलता है। उसका यही भविष्य का सपना उसके जीवन का उद्देश्य बन जाता है और यह उद्देश्य उसके वर्तमान को कठिन श्रम में परिवर्तित कर देता है। और यह कठिन श्रम, बल्कि यह कहें कि असाध्य श्रम– जिसकी कल्पना करना भी कठिन है– वह अपने अटल विश्वास के साथ पूरा कर देता है। कई बार उसे पागल, सनकी और जाने क्या–क्या कहा जाता है। उसकी पत्नी रमरतिया जब उसे समझाती है तो वह कहता है कि "कौन किस पर ताना मारता है और कौन किसका ताना सहता है, यह तो समय–समय की बात है रतिया! रही बात मेरे पगला होने की, तो जान ले कि बुद्धि–चक्र में फंसा हुआ हर इंसान मेरे तरह पगला ही होता है और जब तक वह अपनी मंजिल नहीं पा लेता, तब तक उसका मन, उचित–अनुचित, कर्म–अकर्म, व्यवहार–अव्यवहार में उलझ कर फड़फड़ाते भी रहते हैं।" यह बात बहुत ही आकर्षक और प्रेरणादायक है।

'सोहबत' कहानी शहर और गांव के बीच की शैक्षणिक व्यवस्था के अंतर को स्पष्ट करती है। इस कहानी का बाल पात्र कुशाग्र, जो शहरी शिक्षा का प्रतीक है, को अपने गांव जाने का अवसर मिलता है। गांव पूरी तरह से गांव है, जहां किसी भी प्रकार की आधुनिक व्यवस्था अभी नहीं पहुंची है। वह कई बार सोचता है कि वहां जाकर कैसे रहेगा, पढ़ाई–लिखाई कैसे करेगा, समय कैसे कटेगा? यह चिंता केवल उसे ही नहीं, बल्कि उसके माता–पिता को भी सताती है। परिवार गांव पहुंचता है क्योंकि उसके दादा का देहावसान हो चुका था, और तेरहवीं संस्कार करना है। गाँव में कुशाग्र की भेंट गांव में रहने वाली पूनम नाम की लड़की से होती है, जो शहरी शिक्षा से अनभिज्ञ है लेकिन लौकिक ज्ञान से समृद्ध। वह फूलों, पेड़ों, मौसमों की जानकारी से भलीभांति भिज्ञ है। इंटरनेट, मोबाइल, टेक्नोलॉजी जानने वाला कुशाग्र भी पूनम की बातों से आकर्षित होता है। यह कहानी संदेश देती है कि भले ही शहरी शिक्षा महत्वपूर्ण हो, लौकिक शिक्षा भी उतसे कम मूल्यवान एवं आकर्षक नहीं।

'मंदिर के सामने वाला घर' एक भदेस आदमी की कहानी है, जो पूरे गांव में दादागिरी करता है, अपना उल्लू भी सीधा करता है और लोगों पर रोब झाड़ता है। इसके पीछे उसकी सरकारी नौकरी है। वह शिक्षित होने का ढोंग करता है, लेकिन उसकी शिक्षा समाज के किसी काम की नहीं। यह शिक्षा केवल उसका कोरा दंभ है। शिक्षा का मूल धर्म समाज सेवा ही है। इस तरह से आज शिक्षित होने के नाम पर जो छलावा चल रहा है, उसका यह जीवंत उदाहरण है।

'अफीम' कहानी के माध्यम से रचनाकार यह संदेश देता है कि जितने प्रकार के हिंदू–मुसलमानों के बीच झगड़े हैं, उनका कारण हमारे वर्तमान के सांसद, विधायक और नेता हैं। वे जानबूझकर दंगे–फसाद करवाते रहते हैं और हिंदू–मुसलमानों को आपस में लड़वाने की कोशिश करते हैं। लेकिन कहानी के अंत में जिस तरह से ग्रामीण व्यवस्था अपने सामूहिक–विवेक से समरसता को पुनः स्थापित करती है– वह किसी यूटोपिया से कम नहीं। यथार्थ की दृष्टि से यह कहानी मुस्लिम समाज की हरकतों को देखते हुए– कम विश्वसनीय लगती है, किंतु सामाजिक समन्वय की आवश्यकता के लिए महत्त्वपूर्ण है। हमें ऐसी कहानियों से प्रेरणा लेनी चाहिए। यह कहानी एक तरह से भविष्य को आईना दिखाती है।

इस तरह से कह सकते हैं कि इस संग्रह की हर एक कहानी– एक नया कैनवस रचती है, एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जिसका अपना एक स्पष्ट वैचारिक उद्देश्य भी है। कहानीकार किसी खास विचारधारा में बँधकर नहीं चलता और न ही किसी विचारधारा विशेष को– अपने ऊपर हावी होने देता है, 'स्वतंत्र दृष्टि का खुला आकाश' उनकी इन कहानियों में साफ नजर आता है। सामाजिक और परिस्थितिजन्य मानवीय विचारधारा इसकी मूल विशेषता है। अगर इन कहानियों को एक साथ देखा जाए, तो भी कहीं वैचारिक दोहराव नहीं मिलता, जैसा कि तमाम लेखकों में मिलता है। अस्तु कह सकते हैं कि इस संग्रह की प्रत्येक कहानी 'नयी वैचारिक जमीन की दस्तक' हैं।

रचनाकार की विशेषता यह है कि वह जितनी बार कोई नया कथ्य रचता है, उतनी ही बार नया शिल्प भी वह गढ़ता है। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी अपने कथ्य और शिल्प में बेजोड़ है। रचनाकार की दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि वे अपने समय से टकराते हैं, वे अमानवीय व्यवस्थाओं को अनावरण करते हैं और मनुष्य में 'मनुष्य' होने की भावना को जगाने– पर बल देते हैं। यदि हमारे पूर्ववर्ती कहानीकार भी ऐसा करते तो संभवतः समाज की– जो आज व्यवस्था गड़बड़ाई है, वह इतनी न बिगड़ती। इस संग्रह की भाषा– कुछ समीक्षकों को खटकती है। इसका मुख्य कारण यह है कि जब लेखक गांव का शिल्प रचते हैं तो वहां की भाषा को कहानी में लाना जरूरी हो जाता है, और यह काम उन्होंने बखूबी किया है। हां, जिन्हें प्रेमचंद की तरह खड़ी बोली की सहज, बोधगम्य एवं प्रवाहमयी भाषा ही चाहिए, उन्हें कठिनाई जरूर हो सकती है। इसकी कहानियों की कथावस्तु बिहार से लेकर राजस्थान, उत्तराखंड आदि तमाम राज्यों को समेटती है तो भाषा एक क्षेत्र विशेष की हो– यह एकांगी दृष्टिकोण की परिचायक बात है। इसीलिए रचनाकार ने कथ्य के अलग–अलग क्षेत्र होने पर भाषा भी अलग–अलग रखी है। इस तरह से भाषा और शिल्प का जो भौगोलिक प्रदेय है, उसे उन्होंने बिना लाग–लपेट के व्यक्त किया है और यह एक प्रकार से रचनाकार को कमजोर नहीं, विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण बनाता है। हमें यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि हिंदी एक संपर्क भाषा है, जो सभी बोलियों और भाषाओं को जोड़ने का कार्य करती है। उसे केवल खड़ी बोली की सहज, बोधगम्य एवं प्रवाहमयता के आधार पर ही नहीं देखा जाना चाहिए।

यहां मैं सभी कहानियों पर विस्तृत प्रकाश नहीं डाल सका, और एक लेख में यह संभव भी नहीं है। आवश्यकता है कि इस संग्रह की प्रत्येक कहानी को अलग–अलग समीक्षकों द्वारा विश्लेषित और विवेचित की जाए और उन्हें पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित की जायें, तभी जाकर ये कहानियाँ अपने पूरे वजूद के साथ खुलेंगी।

समकालीन भारत का ग्रामीण विकास : समीक्षात्मक अनुशीलन

निशान्त सक्सेना*

सारांश :— प्राचीन काल से ''सोने की चिड़िया'' के नाम से प्रसिद्ध भारत 21वीं सदी में फिर से प्रगति पथ पर चल पड़ा है। आज भारत पूरे विश्व में सामाजिक एवं आर्थिक शक्ति के रुप में उभर रहा है। भारत में 6.65 लाख गांव है जिनमें 2.68 लाख ग्राम पंचायतें और ग्रामीण स्थानीय निकाय जो देश के ग्रामीण परिदृश्य का आधार है। पूरे देश में फैले ये गांव भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था और संस्कृति को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। केन्द्रीय बजट 2025—26 इन समुदायों के महत्व को पहचानता है और उनके उत्थान पर जोर देता है। इस बजट में ग्रामीण भारत में रोजगार सृजन, महिला सशक्तिकरण, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता और अवसंरचना के विकास जैसे प्रमुख क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। वास्तव में देखा जाए तो पारम्परिक रस—गंध से युक्त आत्मनिर्भर गांव आज के भारत की जरुरत है।

की वर्डः— स्मार्ट गांव, पंचायतीराज, डिजिटल प्रौद्योगिकी, त्वरित सेवाएं, उन्नत जीवन स्तर।

प्रस्तावनाः— ग्रामीण विकास एक बहु—आयामी घटक है जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों के सर्वांगीण विकास के लिये योजनाबद्ध प्रयास किये जाते है। ग्रामीण विकास का अर्थ ''ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के जीवन के विभिन्न पहलुओं से जुडें कार्यक्रमों जैसे—कृषि, सिंचाई, स्वास्थ्य, स्वच्छता, रोजगार, आवास, कुटीर उद्योग व सामाजिक कल्याण आदि के द्वारा उनके जीवन स्तर को ऊंचा उठाकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाना।'' यह एक ऐसी व्यूहरचना है जिसका उद्देश्य विकास के लाभों को ग्रामीण क्षेत्रों में जीवनयापन की तलाश में लगे निर्धनतम लोगों तक पहुंचाना है। इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र में ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिये प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग होता है। ग्रामीण विकास एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों के जीवन स्तर में सुधार के प्रयास किये जाते है। ग्रामीण विकास एक व्यापक अवधारणा है जो मूलतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था के उन घटकों के विकास पर ध्यान केन्द्रित करने के के लिये बल देती है जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास में पिछड गये है।

ग्रामीण विकास की अवधारणा में सम्मिलित मुख्य मुद्दे निम्न है—

- मानव संसाधन विकास अर्थात् साक्षरता (विशेषकर नारी साक्षरता), शिक्षा एंव कौशल प्रशिक्षण का विकास।
- बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं (जिसमें स्वच्छता एवं जन स्वास्थ्य दोनों सम्मिलित है।)
- ग्रामीण आधारित संरचना का विकास (जैसे—विद्युत, सड़क, सिंचाई, साख व्यवस्था, कृषि विपणन, कृषि अनुसंधान आदि।)
- भूमि सुधार।
- स्थानीय संसाधानों का प्रयोग एवं विदोहन करके कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास।
- निर्धनता उन्मूलन एवं रोजगार सृजन के विशिष्ट कार्यक्रम।

शोध साहित्य का पुनरावलोकनः— सिद्धार्थ झा. (2016) ने 'गांवों के बुनियादी विकास में पंचायतों की भूमिका' में लिखा है कि जब कभी आप गांवों की चमकती सड़कों, 24 घण्टें बिजली व पानी की सुविधा, गांवों के पक्के मकान, ये सब देख कर चौंक जाये तो समझ लीजिये, कि गांवों का विकास हो रहा है।' सुमित कुमार (2025) ने 'ग्रामीण विकास पर एक अध्ययन : भारत के विशेष संदर्भ में' लिखा है कि भारत की आर्थिक प्रगति विशेष रुप से ग्रामीण क्षेत्र, ग्रामीण विकास पर अत्यधिक निर्भर है। सरकार दीर्घकालीन और लाभकालीन नीतियों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों का आर्थिक विकास सुनिश्चित कर सकती है। व्यवसाय, आर्थिक नीतियों और ग्रामीण विकास के संतुलन के साथ ही भारत समग्र और स्थायी आर्थिक प्रगति की दिशा में आगे बढ़ सकता है। रत्नेश सैनी (2017) ने 'प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना का ग्रामीण विकास पर प्रभाव' में लिखा है कि जो ग्राम प्रधानमंत्री

*** शोधार्थी, वाणिज्य विभाग, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर।**

ग्राम सड़क योजना की सड़कों से जुडे है उनमें कृषि, दुग्ध उत्पादन, पशुधन, कुटीर उद्योग, स्वास्थ्य शिक्षा, प्रशाधन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।' तारमणि श्रीवास्तव (2023) ने 'ग्रामीण विकास में जनसंचार का प्रभाव' में लिखा है कि गांव के सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के लिये गृह निर्माण, स्वास्थ्य, कृषि, रहन–सहन विकास योजनाएं, उद्योग में आधुनिक तकनीक का अनुकूलन आवश्यक है। जनसंचार माध्यम द्वारा गांवों में आधुनिक तकनीक का उपयोग पर जोर दिया जा रहा है और आज इसका प्रभाव स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होने लगा है। कुलदीप चतुर्वेदी (2022) ने '21वीं सदी में समावेशी ग्रामीण विकास का आधार : सांसद आदर्श ग्राम योजना' में लिखा है कि भारत में समावेशी ग्रामीण विकास को सुनिश्चित करने में सांसद आदर्श ग्राम योजना ने महत्वूपर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। यह योजना मानव के समस्त पहलुओं को उजागर करके समन्वित विकास को बढावा देती है। इस योजना ने ग्रामीण विकास की नई अवधारणा को विकसित किया है।

अध्ययन का उद्देश्यः– प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य केन्द्रीय बजट 2025–26 के अर्न्तगत भारतीय ग्रामों के विकास के संदर्भ में प्रायोजित कार्यों की सार्थकता का विश्लेष्णात्मक अध्ययन करना है।

परिकल्पना :–

1. सरकार द्वारा गांवों के विकास के लिये चलायी जा रही विभिन्न योजनाओं का प्रत्यक्ष लाभ ग्रामीण जनता को मिल रहा है।
2. गांवों के विकास के आधार पर ही देश का वास्तविक विकास सम्भव है।

शोध विधि :– शोध अध्ययन हेतु वर्णात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया है। अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु द्वितीयक आंकडों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक आंकडों को प्रकाशित पुस्तकों, पत्रिकाओं, शोधपत्रों, विभिन्न ऑनलाइन वेबसाइट, बजट 2025–26 एवं वार्षिक विभागीय रिपोर्टों से एकत्रित किया गया है।

ग्रामीण विकास :– ग्रामीण विकास एक विस्तृत शब्द है जो मूलतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था के उन घटकों पर ध्यान केन्द्रित करने पर जो देता है जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था के समग्र विकास में पिछड़ गये है। देश की प्रगति का मूल आधार ग्रामीण विकास है ग्रामीण विकास से तात्पर्य, ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगो के हर पहलू को बेहतर बनाने के उद्देश्य से किये जाने वाले निरन्तर और व्यापक सामाजिक आर्थिक प्रयासों से है। यहां विकास से तात्पर्य, क्षेत्र विशेष के गुणात्मक तथा मात्रात्मक परिवर्तनों के द्वारा जीवन–स्तर में सुधार लाना होता है।

ग्रामीण विकास का महत्व :–

- भारत गांवो में बसता है तथा भारत की लगभग 3/4 भाग जनसंख्या गांवों में निवास करती है जिससे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में ग्रामीण विकास की भूमिका महत्वपूर्ण है।
- ग्रामीण विकास केवल ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या के लिये ही नहीं अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र की समग्र आर्थिक वृद्धि के लिये महत्वपूर्ण है।
- ग्रामीण विकास का मुख्य उद्देश्य देश की ग्रामीण जनसंख्या के लगभग 70 प्रतिशत हिस्से में भूखमरी को
- कम करना है तथा पर्याप्त मात्रा में स्वस्थ भोजन उपलब्ध करवाना है।
- ग्रामीण विकास के मुख्य निर्धारकों में शिक्षा, स्वास्थ्य, देखभाल पद्धतियाँ, बुनियादी ढाँचा, रोजगार के अवसर शामिल है, जिनका विकास करना है।

ग्रामीण विकास का उद्देश्य :–

- शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार।
- बेरोजगारी को कम करना।
- निर्धनता उन्मूलन।
- परिवहन एवं संदेशवाहन का विकास।
- उन्नत जीवनस्तर।
- ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं को बढ़ाना।
- कृषि का विकास।
- कृषि विपणन प्रणाली में सुधार करना।
- औद्योगीकरण का विकास करना।
- राजनीतिक चेतना।
- चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार।
- ग्रामीण क्षेत्रों में साख की सुविधाएँ उपलब्ध करवाना।
- अन्य – पर्यावरण विकास, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास।

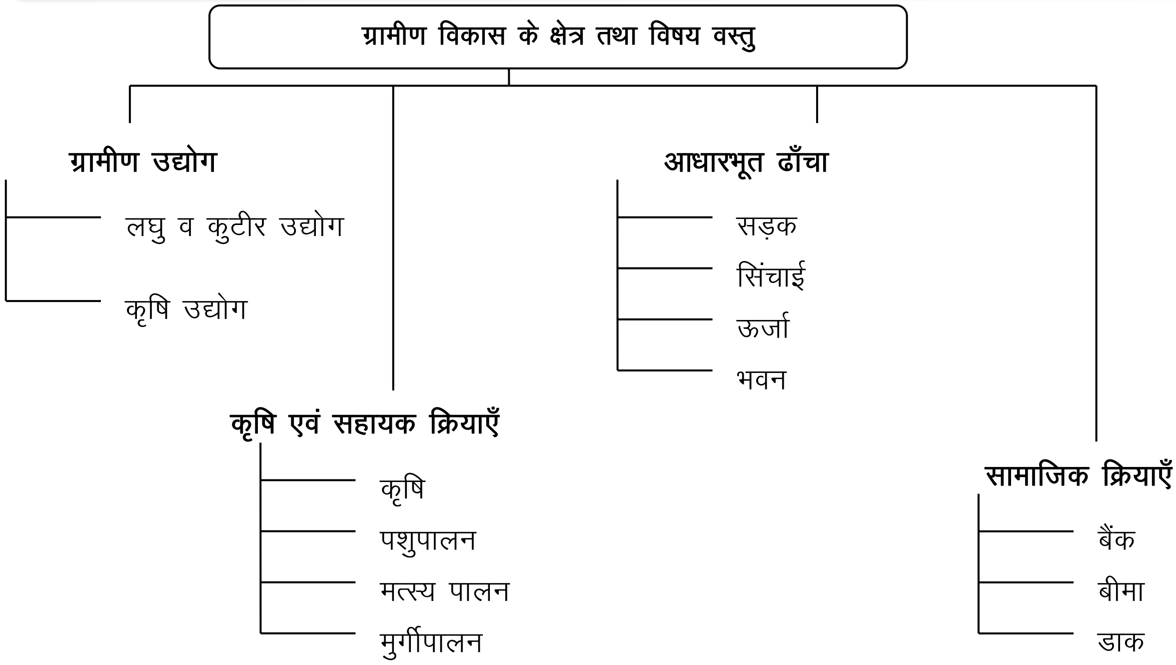

ग्रामीण विकास कार्यक्रम–

सरकार द्वारा ग्रामीण विकास हेतु समय–समय पर प्रमुख कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया गया है जो निम्न है –

सं.	कार्यक्रम	वर्ष
1.	ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल आपुर्ति एवं स्वच्छता कार्यक्रम	1972–73
2.	सूखा राहत क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP)	1973–74
3.	मरू विकास कार्यक्रम (DDP)	1977–78
4.	एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDR)	1980
5.	ग्रामीण क्षेत्रों में महिला एवं बाल कल्याण (DWRA)	1982
6.	ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (RLEGP)	1983–84
7.	इन्दिरा आवास योजना (IAY)	1985–86
8.	प्रधानमंत्री रोजगार योजना (PMRY)	1993
9.	राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (NSAP)	1995
10.	स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना (SJSRY)	1997
11.	गंगा कल्याण योजना (GKY)	1997
12.	ग्रामीण आवास योजना (RHS)	1998
13.	स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY)	1999
14.	अंत्योदय अन्न योजना (AAY)	2000
15.	प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY)	2000
16.	जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (JGSY)	2001
17.	प्रधानंत्री ग्रामोदय योजना (PMGY)	2000–01
18.	कृषि श्रमिक सामाजिक सुरक्षा योजना (KSSSY)	2001
19.	सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SRGY)	2001
20.	वाल्मिकी अम्बेडकर आवास योजना (VAMBAY)	2001
21.	राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (MTHM)	2005
22.	महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना (MGNREGS)	2005
23.	प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना	2015
24.	प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना	2015

केन्द्रीय बजट 2025–26 ग्रामीण भारत में परिवर्तन के एक नये दौर की शुरुआत लेकर आया है। इस सम्बन्ध में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने कहा है ''ग्रामीण भारत के लोगों के लिये सम्मानजन जीवन सुनिश्चित करना मेरी सरकार की प्राथमिकता है।''

केन्द्रीय सड़क परिवहन और राज्यमार्ग मंत्री श्री नितिन गडकरी ने कहा है ''स्मार्ट सिटी परियोजना के साथ स्मार्ट गांव अवधारणा को लागू करने की आवश्यकता है। यह बात मेरे दिमाग में है। मैं भी स्मार्ट गांव बना रहा हूँ। 1000 वर्गफीट का प्लाट, 500 वर्गफीट का घर, 5 लाख रूपये में....... और पूरी जिन्दगी बिजली पानी मुफ्त। हमें पारिस्थितिकी और पर्यावरण की रक्षा करनी है, देश में विकास भी करना है। इसलिये दोनों के बीच समन्वय होना चाहिये।''

केन्द्रीय ग्रामीण विकास और कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान ने इस बजट को लेकर कहा कि मेरे ग्रामीण विकास मंत्रालय को इस बजट में जितने अवसर मिले है, उतनी ही जिम्मेदारी भी मिली है। विकसित भारत के लक्ष्य के लिये गरीबी–मुक्त भारत, कौशल विकास में शत–प्रतिशत समावेशन, आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की 70 प्रतिशत भागीदारी, किसानों को भारत का विश्व का फूड बास्केट बनाने में इस बजट में महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी। ग्रामीण विकास मंत्रालय के लिये इस बार केन्द्रीय बजट 2025–26 में रू0 1,88,754 करोड़ का प्रावधान किया गया है। केन्द्रीय बजट में महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारन्टी कार्यक्रम के लिये रू0 86,000 करोड़, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के लिये रू0 19,000 करोड़, प्रधानमंत्री आवास योजना ग्रामीण के लिये रू0 4,832 करोड रूपये, दीनदयाल अंत्योदय योजना–राष्ट्रीय जीविका मिशन के लिये रू0 19,005 करोड़ रूपये और राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के लिये रू0 9,652 करोड़ रूपये का प्रावधान रहा है।

इस बजट में प्रस्तावित विकास के बिन्दु–गरीब, युवा, अन्नदाता और नारी को ध्यान में रखकर दस व्यापक क्षेत्रों में फैले हुये है। ग्रामीण विकास मंत्रालय से सम्बद्ध व्यापक क्षेत्र है– ग्रामीण सम्पन्नता और रेजिलिएंस कार्यक्रम (RPRP) भारत को गरीबी–मुक्त बनाने की दिशा में लिया गया एक ऐतिहासिक एवं महत्वाकांक्षी निर्णय है। इस नये प्रोग्राम को राज्यों की सहभागिता के साथ पहले चरण में 100 विकासशील कृषि जिलों में शुरु किया जायेगा। देश और दुनिया से लिये गये बेस्ट प्रैक्टिसेज को अपनाया जायेगा। मल्टीलैटरल एजेंसीज से उपयुक्त तकनीकी एवं सहायता भी ली जायेगी। इस नये प्रोग्राम से ग्रामीण महिलाओं, युवाओं, युवा किसानों और भूमिहीन लोगों को लाभ मिलेगा।

केन्द्रीय बजट 2025–26 में ग्रामीण विकास को रफ्तार देने और केंद्रित कार्यक्रमों और निवेशों के जरिये समृद्धि बढ़ाने के उद्देश्य से कई प्रमुख पहलों की रुपरेखा दी गई है :

1. **जल आपूर्ति – जल जीवन मिशन** :जल जीवन मिशन को 2028 तक बढा दिया गया है, जिसमें बुनियादी ढांचे की गुणवत्ता में सुधार और ग्रामीण पाइल जलापूर्ति योजनाओं के परिचालन और रखरखाव पर अधिक ध्यान दिया गया है और इसे नागरिक–केन्द्रित दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है, जो ''जन भागीदारी'' के रुप में जाना जाता है। इसका लक्ष्य राज्य–विशिष्ट समझौता ज्ञापनों के माध्यम से बढ़ी हुई वित्तीय सहायता और संधारणीयता के साथ शत–प्रतिशत कवरेज हासिल करना है।

2. **ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी – भारतनेट परियोजना** : भारतनेट परियोजना के अन्तर्गत ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी का विस्तार किया जायेगा, जिसका लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों में सभी सरकारी माध्यमिक विद्यालयों और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों तक इंटरनेट पहुंच उपलब्ध कराना तथा शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार करना है।

3. ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिये उत्प्रेरक के रुप में भारतीय डाक :

इंडिया पोस्ट अपने 1.5 लाख ग्रामीण डाकघरों, इंडिया पोस्ट पेमेन्ट बैंक और 2.4 लाख डाक सेवकों के साथ ग्रामीण आर्थिक विकास को आगे बढाएगा। यह सूक्ष्म–उद्यम ऋण, डिजिटल सेवाओं और संस्थागत खाता प्रबन्धन की सुविधा उपलब्ध कराके सेवाओं को बढ़ाएगा। इसके अतिरिक्त, भारतीय डाक उद्यमियों, एमएसएमई और स्वयं सहायता समूहों का समर्थन करने वाले एक प्रमुख सार्वजनिक लॉजिस्टिक्स संगठन के रुप में विकसित होगा।

4. ग्रामीण समृद्धि एवं अनुकूलन कार्यक्रम :

राज्यों के सहयोग से एक व्यापक बहु–क्षेत्रीय 'ग्रामीण समृद्धि और अनुकूलन' कार्यक्रम शुरू किया जायेगा। इस कार्यक्रम का लक्ष्य ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिये कौशल विकास, प्रौद्योगिकी अपनाने और निवेश को बढावा देकर कृषि में कम रोजगार की समस्या को सम्बोधित करना है। यह मिशन ग्रामीण महिलाओं, युवा किसानों, हाशिए पर पड़े समुदायों और भूमिहीन परिवारों को सशक्त बनाने पर ध्यान केन्द्रित करेगा, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्रवास एक विकल्प हो, न कि एक अनिवार्यता।

इन पहलों के जरिये, केन्द्रीय बजट 2025–26 में ग्रामीण विकास के लिये एक समग्र दृष्टिकोण की परिकल्पना की गई है, जिसका लक्ष्य ग्रामीण भारत में दीर्घकालीन विकास, अनुकूलन और आत्मनिर्भरता है।

ग्रामीण भारत में सकारात्मक बदलाव :– भारत के समृद्ध होने की ओर बढ़ने के साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में सकारात्मक परिणाम देखने को मिले है, जिनमें ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी में वृद्धि, ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक इंटरनेट कनेक्टिविटी, गरीबी में कमी और उपभोग असमानता में कमी शामिल है।

- **राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक (एमपीआई) रिपोर्ट :** बहुआयामी गरीबी में रहने वाले व्यक्तियों का अनुपाल 2015–16 और 2020–21 के बीच 24.85 प्रतिशत से घटकर 14.96 प्रतिशत हो गया। इस अवधि के दौरान 13.5 करोड़ व्यक्ति बहुआयामी गरीबी के दायरे से बाहर आये।
- **ग्रामीण इंटरनेट कनेक्टिविटी :** मार्च 2024 तक भारत में 954.40 मिलियन इंटरनेट ग्राहक थे। इनमें से 398.35 मिलियन ग्रामीण इंटरनेट ग्राहक थे।
- **आय वितरण (गिनी गुणांक) :** ग्रामीण क्षेत्रों के लिये, यह वित्त वर्ष 2022–2023 में 0.266 से घटकर वित्त वर्ष 2023–24 में 0.237 हो गया।
- **ग्रामीण मजदूरी वृद्धि :** श्रम ब्यूरो के आंकडो के मुताबिक, वित्त वर्ष 2025 (अप्रैल–सितम्बर 2024) में ग्रामीण मजदूरी में हर महीने साल–दर–साल 4 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि देखी गई, कृषि मजदूरी में पुरुषों के लिये 5.7 प्रतिशत और महिलाओं के लिये 7 प्रतिशत की वृद्धि हुई। गैर–कृषि मजदूरी में पुरुषों के लिये 5.5 प्रतिशत और महिलाओं के लिये 7.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

समृद्धि का मार्ग : ग्रामीण योजना की प्रमुख उपलब्धियां–

- **प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (पीएमजीएसवाई) –** दिसम्बर 2000 में शुरु की गई इस पहल का लक्ष्य कोर नेटवर्क में निर्दिष्ट आबादी के आकार की असंबद्ध बस्तियों को एक ही बारहमासी सड़क के माध्यम से ग्रामीण संपर्क प्रदान करना है, जिससे ग्रामीण समुदायों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार होगा।

Roads

Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana (PMGSY) (as of 9 January 2025)

- **8,34,695 km of road length sanctioned.**
- **7,70,983 km of road length completed.**
- **99.6 per cent of the targeted habitations provided connectivity.**

- **प्रधानमंत्री आवास योजना–ग्रामीण (पीएमएवाई–जी)** – यह योजना 20 नवम्बर 2016 को शुरु की गई, जिसका लक्ष्य समाज के सबसे गरीब वर्गों को आवास उपलब्ध कराना है।

Housing	**2.69 crore houses** completed since 2016 under **Pradhan Mantri Awaas Yojana-Gramin (PMAY-G).**[172]

- **मिशन अमृत सरोवर** : इसका शुभारम्भ 24 अप्रैल 2022 को किया गया था, जिसका लक्ष्य भविष्य के लिये जल संरक्षण करना है। इस मिशन का उद्देश्य देश के हर जिले में 75 अमृत सरोवर (तालाब) विकसित/पुनरुद्धार करना है। इस मिशन के अन्तर्गत अभी तक कुल 68,843 तालाबों का निर्माण किया गया है।

Water bodies	**68,843** ***Amrit Sarovars*** (ponds) constructed under Mission Amrit Sarovar.[173]

- **राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन** : ग्रामीण आबादी को सुलभ, सस्ती और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करने के लिये सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियों का निर्माण करने के उद्देश्य से इसे 2005 में शुरु किया गया।

Health Infrastructure National Health Mission[174] (Figures in '000s.)					
	165.6 Sub-centres (SCs)	25.4 Primary Health Centres (PHCs)	5.5 Community Health Centres (CHCs)		
	32.9 Doctors at PHCs	4.4 Total Specialists at CHCs	79.3 Nursing Staff at PHCs & CHCs	27.7 Pharmacists at PHCs & CHCs	23.2 Lab Technicians at PHCs & CHCs

- **जल जीवन मिशन** : इसे 2019 में शुरु किया गया, जल जीवन मिशन एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम है, जिसे ग्रामीण भारत के सभी घरों को व्यक्तिगत घरेलू नल कनेक्शन के माध्यम से साफ और पर्याप्त पेयजल उपलब्ध कराने के लिये डिजाइन किया गया है। 27 जनवरी 2025 तक, कुल 12.2 करोड़ घरों को नल के पानी के कनेक्शन उपलब्ध कराए गए हैं।

Drinking Water	**12.2 crore households** provided with tap water connections under Jal Jeevan Mission (as of 27 January 2025).[175]

- **स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण)** : 2 अक्टूबर 2014 को शुरु की गई इस पहल का उद्देश्य भारत को खुले में शौच से मुक्त (ओडीएफ) बनाना है। वर्तमान में चरण 2 में ओडीएफ स्थिति को बनाए रखने, 2024–25 तक ठोस और तरल अपशिष्ट का प्रबन्धन करने और सभी गांवों को ओडीएफ से ओडीएफ प्लस मॉडल में बदलने पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है।

Sanitation	**11.8 crore toilets** and **2.51 lakh community sanitary complexes** were constructed under Swachh Bharat Mission (Gramin) (As of 27 January 2025).[176]

Aalochan Drishti, Year- 10, Vol.- 40 (April-June, 2025), ISSN : 2455-4219

- **सासंद आदर्श ग्राम योजना (एसएजीवाई)** : 11 अक्टूबर 2014 को शुरु की गई एसएजीवाई का उद्देश्य लोगों को अपने भविष्य को आकार देने के लिये बुनियादी सुविधाओं और अवसरों तक पहुंच प्रदान करके ग्रामीण भारत की मूलभूतता को संरक्षित करना है।

Comprehensive transformation	**Saansad Adarsh Gram Yojana (SAGY) (as of 10 January 2025)[177]** • 3,361 Gram Panchayats (GPs) adopted by MPs. • 3,120 GPs uploaded Village Development Plans. • 2,30,206 projects completed.

- **प्रधानमंत्री जनजातीय आदिवासी न्याय महा अभियान (पीएम–जनमन)** : केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने विशेष रुप से कमजोर जनजातीय समूहों (पीवीटीजी) की सामाजिक–आर्थिक स्थितियों में सुधार लाने के लिये नवम्बर 2023 को पीएम–जनमन को स्वीकृति दी।

दीनदयाल अंत्योदय योजना – राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन : 2011 में शुरु की गई इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों में संगठित करके तथा उनकी आय और जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिये आर्थिक गतिविधियों का समर्थन करके उन्हें सशक्त बनाना है। इसे 682 जिलों के 5,369 ब्लाकों में कार्यन्वित किया गया।

Capacity Building	Financial Inclusion	Farm Livelihoods	Non-Farm Livelihoods
Mobilised 10.05 crore rural poor Households into 90.90 lakh SHGs, 5.96 lakh VOs and 32,439 CLFs in 7,143 blocks of 745 districts	• 1.37 lakh SHG women members positioned as Banking Correspondent Sakhi.	• More than 2.64 crore households have agri-nutri gardens	• Start-Up Village Entrepreneurship Programme (SVEP): nearly 3.13 lakh enterprises in 280 blocks of 31 States/UTs.
	• ₹49,284 crore capitalisation support provided to SHGs.	• Around 36,205 Custom Hiring Centres established to help small and marginal farmers hire farm tools and services at a nominal cost.	• Aajeevika Grameen Express Yojana: 2297 vehicles operational in 26 states connecting remote villages.
	• ₹ 9.85 lakh crore of bank credit accessed by SHG.	• 4.30 crore Mahila Kisan covered	

- **ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008** : इसका लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों में जमीनी स्तर पर न्याय तक पहुंच प्रदान करना है। अक्टूबर 2024 तक, 313 ग्राम न्यायालयों ने दिसम्बर 2020 से अक्टूबर 2024 के बीच 2.99 लाख से अधिक मामलों का निपटारा किया है।
- **राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (एनएसएपी)** : इसे 15 अगस्त 1995 को शुरु किया गया, जिसका उद्देश्य समाज के कमजोर वर्गों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है।

3.09 crore BPL beneficiaries (central NSAP)
5.86 crore beneficiaries covered by state pension schemes
Total beneficiaries are around 9 crore under the pension safety net.
Annual Expenditure Estimated at more than ₹1 lakh crore.

- **महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना की प्रगति :** 2005 में शुरु की गई इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण परिवारों को सालाना सौ दिन की गारन्टीकृत मजदूरी रोजगार प्रदान करना है, जो अकुशल मैनुअल काम के जरिये आजीविका सुरक्षा में सुधार करता है। महात्मा गांधी नरेगा (एनआरईजीए) के तहत इसके बजट आवंटन में लगातार वृद्धि हुई है। वित्तीय वर्ष 2006–07 के लिये बजट आवंटन 11,300 करोड़ रूपये था, जो 2013–14 में बढ़कर 33,000 करोड़ रूपये हो गया और अब ये बजट अनुमान चरण में वित्त वर्ष 2024–25 के दौरान 86,000 करोड़ रूपये कर दिया गया है और वित्त वर्ष 2025–26 के लिये भी रू0 86,000 करोड़ का आवंटन रहेगा।

निष्कर्ष :– प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने केन्द्रीय सत्ता सम्भालते ही योजनाओं और नारों की बाढ़ ला दी। स्मार्ट सिटी मिशन इसी का एक अंग रहा। लेकिन स्मार्ट गांव को उतनी प्राथमिकता नहीं दी गयी जितनी उसकी वास्तव में देश की समृद्धि के लिये आवश्यकता थी क्योंकि हमारा देश गांव का देश कहलाता है और ग्रामीण अर्थव्यस्था का देश की जी0डी0पी0 में विशेष स्थान प्रारम्भ से ही रहा है। केन्द्रीय बजट 2025–26 में ग्रामीण विकास से सम्बन्धित घोषित की गयी योजनाएं अच्छी है जिनका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप से लाभ ग्रामीण जनता को मिल रहा है और उनके जीवन स्तर में विशेष सकारात्मक परिवर्तन भी देखने को मिल रहे है। आज शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, पानी, सड़क, कृषि, विपणन, लघु एवं कुटीर उद्योग जैसे सभी क्षेत्र केन्द्रीय योजनाओं के दायरे में आ चुके है जो कि ग्रामीण परिवेश को सरल, सुव्यवस्थित, सुसम्पन्न बनाने के लिये प्रयासरत है।

हमारी सरकार का प्रयास अपने देश को विकासशील से विकसित राष्ट्र बनाना है जिसमें ग्रामीण विकास नींव के पत्थर के समान है। ग्रामीण भारत 2047 तक विकसित भारत बनने के सपने को साकार करने की दिशा में बढ रहा है और केन्द्रीय बजट इसे और अधिक आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम की तरह कार्य कर रहा है। रोजगार, अवसंरचना और आर्थिक सशक्तीकरण जैसे आवश्यक क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करके यह बजट ग्रामीण परिवेश के लिये संधारणीय भविष्य निर्धारित करता है जो कि आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते भारत के मार्ग मजबूत करेगा।

संदर्भ–सूची :–

1. अग्रवाल, अनुपम एवं अग्रवाल, शरद. 2025. अर्थशास्त्र, राजीव बंसल, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन, आगरा।
2. कुमार, अजीत एवं जैन, अभिषेक. 2025. अर्थशास्त्र, अरिहंत पब्लिकेशन, मेरठ।
3. पंचोली, मुकेश. 2024. व्याख्याता वाणिज्य, दृष्ना पब्लिकेशन, जयपुर।
4. जैन, संतोष एवं निषाद, ज्योति. 2023. सरकार की विभिन्न योजनाओं से कृषि में नवाचार एवं ग्रामीण विकास, IJCRT, Volume 11, Issue 3, March, 2023
5. सौन, नीलम. 2021. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का समाजशास्त्रीय मूल्याकंन, JETIR, Volume8, Issue 8, August 2021
6. कुमार, रत्नेश एवं मिश्र, पवन. 2022. ग्रामीण विकास में युवाओं की भूमिका – एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, ASVP, Volume 15, No. – II, Issue – 24, June 2022
7. जोशी, ममता भदोला एवं करिश्मा. 2025. भारत में ग्रामीण विकास की योजनाएँ, IJFRM, Volume – 7, Issue – 1, Febuary 2025
8. चतुर्वेदी, कुलदीप. 2022. 21वीं सदी में समावेशी ग्रामीण विकास का आधार : सांसद आदर्श ग्राम योजना, शोध संचार बुलेटिन, Volume 12, Issue 47, September 2022
9. सैनी, रत्नेश. 2017. प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना का ग्रामीण विकास पर प्रभाव, Shrinkhla KK Sodhparak vicharik Patrika, Volume 4, Issue 12, August 2017
10. कुमार, सुमित एवं पाठक, प्रीति. 2025. ग्रामीण विकास पर एक अध्ययन : भारत के विशेष संदर्भ में, IJARPS, Volume 4, Issue 2, February 2025
11. केन्द्रीय बजट 2025–26, WWW.India.gov.in
12. WWW.Static.pib.gov.in
13. Https://rural.gov.in
14. Https://WWW.gaonjunction.com

संस्कृत आशिवर्चन मन्त्राः शुभेच्छयाः दिव्यपरम्परा

डॉ. सुनील कुमार मानसः*

आमुखः :– संस्कृतभाषा भारतीयसंस्कृतेः, दर्शनस्य, अध्यात्मस्य च मूलचेतना अस्ति। देववाणी इत्यर्थः देवभाषा। न केवलं संचारमाध्यमम्, अपितु चैतन्यस्य अभिव्यक्तिः। संस्कृतशब्देषु निहितः शब्दः, तालः, उच्चारणस्य सम्यक्त्वं च विशेषप्रकारस्य स्पन्दनं जनयति, यत् न केवलं परिवेशं शुद्धं करोति, अपितु मनः, बुद्धिः, आत्मा च शुद्धं करोति। अशिर्वादमन्त्राः संस्कृतभाषायाः अस्य दिव्यत्वस्य जीवन्तं उदाहरणम् अस्ति। एते मन्त्राः न केवलं कामाः, अपितु जीवशक्तिसञ्चारः। ऋषिभिः, गुरुभिः, मातापितृभिः, आचार्यैः च उक्ताः एते मन्त्राः कस्यचित् आध्यात्मिकशक्तिं दातुं, सकारात्मकदिशि प्रेरयितुं, जीवने कल्याणस्य भावं जागृतुं च कार्यं कुर्वन्ति। एतेषां मन्त्राणां प्रयोगः जीवनस्य प्रत्येकमहत्त्वपूर्णक्षणे भवति–यथा जन्मसमये "आयुषमान भवः", विद्यारम्भे "यशस्वी भवः", विवाहे "शतआयुः भवः", विदाईसमये च "शुभा भवतुः" इति। तेषां शक्तिः केवलं शब्देषु एव नास्ति, अपितु पृष्ठतः भावः, विश्वासः, उच्चारणं च भवति। एते मन्त्राः अस्माकं संस्काराणां भागाः सन्ति, ये पीढयः अपि परम्परां च संयोजयन्ति। अद्यतनयुगे तेषां पुनरुत्थानम् आवश्यकम् अस्ति, येन जीवने शान्तिः, सामञ्जस्यः, सन्तुलनं च भवति।

बीजशब्दाः :– सात्विकताः, दीर्घायुः, आरोग्यम्, योगः, ऐश्वर्यम्, धर्मेण सह समृद्धिः, धर्मेण सह प्रयत्नाः, कर्म सत्यं च, उत्तमः संकल्पः, आत्मज्ञानम्, सार्वभौमिक कल्याणः, विश्व शान्तिः, त्रिविधा शान्तिः, सकारात्मक ऊर्जा, जीवने संतुलनम्।

1. आयुः सुस्वास्थ्यस्य च आशीर्वादमन्त्राः :– प्राचीनभारते दीर्घायुः, सुस्वास्थ्यं च सर्वोच्चमूल्यानि इति मन्यन्ते। वैदिकसंस्कृतेः विश्वासः आसीत् यत् दीर्घायुः तदा एव सार्थकं भवति यदा सः स्वस्थः, अनुशासितः, धार्मिकः च भवति। अतः यदा कश्चन शिष्यः गुरुसन्निधौ दीक्षां लभते स्म तदा तस्मै प्रथमं आशीर्वादरूपेण मन्त्राः प्रदत्ताः आसन्– "शतायुः भवः", "चिरंजीवः भवः", "आरोग्यमस्तु" च। एतेषां मन्त्राणां उद्देश्यं न केवलं दीर्घायुः, अपितु तस्मिन् जीवने सन्तुलनं, आरोग्यं, गुणाः च स्थापयितुं अपि आसीत्। आयुर्वेदः, योगः, यज्ञपरम्परा च अस्य चिन्तनस्य विस्ताराः सन्ति, यत्र शरीरस्य, मनसः, आत्मानः च शुद्धौ बलं दत्तम् आसीत्। एतेषां आशीर्वादमन्त्राणां माध्यमेन गुरुजनाः न केवलं शिष्येभ्यः ज्ञानं दत्तवन्तः, अपितु सम्पूर्णजीवनं यावत् आन्तरिकबाह्यस्वास्थ्यबलं अपि प्रदत्तवन्तः। अत एव अद्यत्वेऽपि जीवनस्य शुभकार्येषु एते मन्त्राः सर्वोपरि मन्यन्ते।

मुख्यमन्त्रः अर्थः च :–

- **आयुष्मन् भव (त्वं दीर्घकालं जीवतु)** :–अयं मन्त्रः सर्वाधिकः किन्तु गहनः आशीर्वादः ज्येष्ठैः कनिष्ठेभ्यः दत्तः अस्ति। न केवलं दीर्घायुषः कामना, अपितु तस्मिन् जीवने अर्थस्य, पूर्णतायाः, संतुलनस्य च कामना अस्ति।
- **शतआयुः भव (शतं वर्षाणि यावत् जीवतु) :–** अयं मन्त्रः वैदिकसंहिताभ्यः गृहीतः अस्ति। 'शत्' इति संख्या पूर्णतायाः प्रतीकं मन्यते। आयुः दीर्घः भवेत् इति संकल्पः, परन्तु धर्मार्थकाममोक्षप्राप्तिभिः सह अपि भवेत्।
- **चिरंजीव भव (दीर्घं जीवतु अमृतत्वतुल्यम्) :–** 'चिरंजीव' इति शब्देन न केवलं भौतिकजीवनस्य दीर्घता, अपितु जीवनस्य उत्तरदायित्वस्य निरन्तरता, कर्मफलस्य अमरत्वं च निर्दिश्यते।
- **आरोग्यम् अस्तु (भवन्तः रोगरहिताः तिष्ठन्तु)** :– आयुर्वेदः वदति– "धर्मार्थ–काम–मोक्षनाम आरोग्यं मूलमुत्तमम्।" चतुर्णां पुरुषार्थानां प्राप्त्यर्थं आरोग्यम् अत्यावश्यकम् इत्यर्थः। एषः मन्त्रः स्वस्य शारीरिक–मानसिक–आध्यात्मिक–आरोग्यस्य समग्र–इच्छा अस्ति।

*** हिन्दी विभागाध्यक्षः– सरकारी विनयन (कलाः) महाविद्यालयः, बेचराजी–गुजरातः।**

- **त्वां जीव शारदाः शतम् (शतं वर्षाणि यावत् जीवतु) :–** एषः मन्त्रः ऋग्वेदात् गृहीतः अस्ति, यस्मिन् दीर्घायुषः अवधारणा अपि च व्यक्तिस्य उपयोगितायाः समाजे तस्य भूमिकायाः च स्वीकारः कृतः अस्ति। इति।

2. कीर्ति–धन–समृद्धि–आशीर्वाद–मन्त्र :– भारतीयचिन्तने जीवनस्य मूललक्ष्यं केवलं भौतिकसुखेषु एव सीमितं नास्ति, अपितु आध्यात्मिकं नैतिकं च उत्थानं प्रति उन्मुखं भवति। अत्र धनस्य अर्थः केवलं धनमात्रं न भवति, अपितु धर्माधारितसमृद्धिः– या व्यक्तिस्य, परिवारस्य, समाजस्य च कृते हितकरं भवति। यशः, प्रतिष्ठा, प्रतिष्ठा, वैभवं च तदा एव पूर्णं मन्यते यदा सद्वृत्तिः, परिश्रमः, नैतिकमूल्यानि च अर्जिताः भवन्ति। संस्कृतभाषायां सुन्दरं वचनं वर्तते– "सर्वे भवन्तु धनिनः, धर्मेन् लभते यशः।" अर्थात् "सर्वे धनी भवेयुः, परन्तु तत् धनं धर्ममार्गेण प्राप्तव्यं, तदा एव सत्यं यशः सिद्धयति" इति। एतेन विचारेण स्पष्टं भवति यत् धर्माधारितसमृद्धिः एव स्थायिनी, आदरणीया च भवति।

एषा भावना संस्कृताशीर्वादमन्त्रेषु अपि वर्तते– "यशस्वी भवः", "श्रीवर्चस्वं च", "धनं धन्यं च मे भवेत्"– एतानि केवलं लौकिककामना न, अपितु सन्तुलित, संयमित, जनकल्याणकारी जीवनस्य कामनाः सन्ति। एता–शाः मन्त्राः मनुष्यस्य न केवलं स्वस्य अपितु समाजस्य राष्ट्रस्य च कृते उपयोगिनो भवितुम् प्रेरयन्ति। भारतीयसंस्कृतौ धनधर्मयोः एषः सन्तुलनः जीवनस्य महती उपलब्धिः इति मन्यते।

मुख्यमन्त्रः अर्थः च–

- **यशस्वी भवः (भवन्तः प्रसिद्धाः भवन्तु) :–** यशः न केवलं यशः, अपितु यस्य गुणस्य कारणेन कस्यचित् व्यक्तिस्य नाम आदरपूर्वकं, आदरपूर्वकं च गृह्यते। अयं मन्त्रः व्यक्तिस्य कार्यस्य, चरित्रस्य, योगदानस्य च आदर्शरूपस्य कामना करोति।
- **श्रीवर्चस्वं च (श्री– धन–लक्ष्मी, वर्चस्वं– प्रतिष्ठा, च प्राप्नुवन्तु) :–** लक्ष्मी न केवलं धनं, अपितु सद्वृत्त्या समृद्धिः। वर्चस्वम् अपि न अहङ्कारः, किन्तु सीमान्तरे स्थित्वा प्राप्तस्य कीर्तेः प्रतीकम् अस्ति।
- **धनं धन्यं च मे भवेत् (धनेन अन्नेन च भवतः समृद्धिः भवतु) :–** अयं मन्त्रः कुलगृहजीवनस्य स्थिरतां, पोषणं च कामयति। धनं धान्यं च– उभयम् अपि आत्मनिर्भरतायाः प्रतीकम् अस्ति।
- **समृद्धि कुरु मे गृहे (मम गृहं समृद्धं भवतु) :–** गृहे शान्तिः, स्थिरता, समृद्धिः च भवतु इति लक्ष्मीदेव्याः व्यक्तिगतं निवेदनम् एतत्। इति।

3. **सामान्यविजयहिताय आशीर्वादमन्त्राः :–** भारतीयसंस्कृतौ सफलता केवलं बाह्यसिद्धिरूपेण लक्ष्यप्राप्तिरूपेण वा न दृश्यते, अपितु धर्मप्रयत्नस्य सिद्धिः इति मन्यते। भारतीयदृष्ट्या यत्किमपि कार्यं न्यायसत्यगुणमार्गेण सम्पादितं तदा एव पूर्णं सार्थकं च भवति। एतदेव कारणं यत् अत्र प्रत्येकं कार्यं शुभसंकल्पेन मन्त्रजपेन च आरभ्यते। मन्त्रजपेन न केवलं पर्यावरणं शुद्धं भवति, अपितु मनः बुद्धिः च एकाग्रं कार्यं प्रति सजगं च भवति।

"विजयी भवः", "सफलमस्तु", "शुभं भवतु", "कल्याणमस्तु" इत्यादयः संस्कृत आशीर्वादमन्त्राः न केवलं सफलतां कामयन्ते, अपितु नैतिकता, सत्यता, समर्पणस्य मार्गे अग्रे गन्तुं व्यक्तिं प्रेरयन्ति। तेषु प्रयुक्ताः शब्दाः सकारात्मकशक्तिं मनोबलं च जागरयन्ति। प्रयोजनं शुद्धं साधनं च सत्त्वे एव सफलता पूर्णा स्थायी च भवति इति भारतीयपरम्परायां विश्वासः अस्ति। अतः वैदिकपरम्परायां मन्त्रैः कार्यारम्भः ईश्वरसमर्पणं च सफलतायाः प्रथमं सोपानं मन्यते।

मुख्यमन्त्रः अर्थः च –

- **विजयी भवः (भवन्तः सर्वदा विजयी भवन्तु) :–** आत्मविश्वासेन, अखण्डतायाः, प्रज्ञायाः च सह जीवने सफलतां प्राप्तुं प्रेरयति।
- **सफलं अस्तु (भवतः सफलः भवतु) :–** एषा प्रत्येकस्मिन् स्तरे – व्यक्तिगतं, पारिवारिकं, सामाजिकं, व्यापारिकं च सफलतायाः समृद्धेः च प्रार्थना अस्ति।

- **शुभं भवतु (सर्वं भवतः कृते हितं भवतु) :–** एषः एव सर्वाधिकव्यापकः आशीर्वादः, यः प्रत्येकस्मिन् परिस्थितौ सकारात्मकतां सौभाग्यं च कामयति।
- **कल्याणमस्तु (भवतः समृद्धिः भवतु) :–** कल्याण अर्थ – शान्ति, सुरक्षा, समृद्धि एवं आध्यात्मिक संतुलन। चतुर्लोकप्राप्तेः सूचकं भवति। इति।

4. गुरुशिष्यपरम्परायां प्रयुक्तः आशीर्वादमन्त्रः :– भारतीयपरम्परायां गुरुः परम आदरपूर्वकं, आदरपूर्वकं च ईश्वरस्य समः इति मन्यते। गुरुः न केवलं ज्ञानस्य स्रोतः अपितु जीवनस्य प्रत्येकस्मिन् क्षेत्रे मार्गदर्शकः प्रेरकः च अस्ति। सः मनुष्यस्य अन्तः निगूढं बोधज्वालं प्रज्वालयति, आत्मसाक्षात्कारं प्रति च नयति। संस्कृत श्लोक–

"गुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुदेवो महेश्वरः। गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।"

गुरुः ब्रह्मा इव विष्णुः (रक्षकः) शिवः (विनाशकः) च परं ब्रह्म इति व्याख्यायते। अस्मात् दृष्ट्या गुरुस्य स्थितिः न केवलं गुरुस्य अपितु शिष्यस्य सम्पूर्णजीवनस्य दिशां प्रयोजनं च दत्तस्य आध्यात्मिकमार्गदर्शकस्य भवति। गुरु–शिष्य–परम्परा भारतीय–संस्कृतेः मूल–आधारः अस्ति। गुरुणा आशीर्वादेन न केवलं शिष्याय ज्ञानं प्रसारितं भवति, अपितु चरित्रं, संस्कारं, धर्मं च विकसितं भवति। गुरुणा आशिर्वादाः जीवने विघ्नान् दूरीकरोति, ज्ञानगङ्गां प्रवहति, मनसि शान्तिं प्रयच्छति। एवं भारतीयजीवने समाजे च गुरुस्थानम् अतुलनीयम्। सः न केवलं ज्ञानस्य साधकः अपितु आध्यात्मिकविकासस्य दीपः अपि अस्ति, यस्य आशीर्वादः जीवनं सफलं, सुखदं, सार्थकं च करोति।

मुख्यमन्त्रः अर्थः च–

- **गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुदेवो महेश्वरः... :–** अयं मन्त्रः गुरुं देवत्रित्वरूपेण स्थापयति–(ब्रह्मं) सृजति, (विष्णुं) धारयति, (महेशं) नाशयति च। गुरु एव सर्वम्।
- **अखण्डमण्डलकरं व्यापतं येन चाराचारम्... :–** गुरुः समग्रे जगति प्रचलितस्य ज्ञानस्य मूर्तरूपः इति उक्तः अस्ति। प्रबुद्धाय नमस्कारः।
- **ॐ सह नावतु... :–** एषः सह–अस्तित्वस्य मन्त्रः– गुरुः शिष्यः च मिलित्वा ज्ञानं लभन्ते, परस्परं रक्षन्ति, क्रोधं च परिहरन्ति। इति।

5. वैदिक, सार्वभौमिक आशीर्वाद मंत्र :– वैदिकसंस्कृते स्थापिताः सार्वत्रिकाः आशीर्वादमन्त्राः केवलं व्यक्तिगतकल्याणमात्रे एव सीमिताः न सन्ति, किन्तु तेषां उद्देश्यं समग्रसृष्टेः कल्याणाय प्रगतेः च भवति। एते मन्त्राः सम्पूर्णस्य जगतः शान्तिं, संतुलनं, समृद्धिं च कामयन्ति। सत्यं कल्याणं तदा एव सम्भवति इति वैदिकपरम्परायां विश्वासः अस्ति यदा सर्वे जीवाः, मनुष्याः, देवाः, प्रकृतिः च मिलित्वा सामञ्जस्यं शान्तिं च कुर्वन्ति।

वैदिक आशीर्वादमन्त्राणां पाठेन न केवलं व्यक्तिगतं मनोबलं ऊर्जां च वर्धते, अपितु जगति सकारात्मकशक्तिः अपि विकीर्णा भवति। एतादृशाः मन्त्राः प्रकृतौ, समाजे, विश्वे च सन्तुलनं स्थापयितुं साधनम् अस्ति। एतेषां मन्त्राणां माध्यमेन मानवता एकतायाः, प्रेम्णः, सह–अस्तित्वस्य च प्रेरणाम् प्राप्नोति, यत् अद्यतनजगति अतीव आवश्यकम् अस्ति। अतः वैदिक आशीर्वादमन्त्राणां महत्त्वं सर्वदा प्रासंगिकं अमूल्यं च भवति।

मुख्यमन्त्रः अर्थः च–

- **ॐ शांतिः शांतिः शांतिः :–** अयं मन्त्रः त्रिविधशान्तिनां कृते अतीव प्रभावी अस्ति– दिव्यः, शारीरिकः, आध्यात्मिकः च।
- **ॐ पूर्णमदाः पूर्णमिदम्... :–** एष उपनिषदानां मन्त्रो ब्रह्मसिद्धिदर्शनसृष्ट्याखण्डता च ददाति।
- **ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृधाश्रवः... :–** इन्द्रवायुपुषबृहस्पतिदेवेभ्यः सर्वतोहितं प्रार्थयति यजुर्वेदिकम्। इति।

निगमन :– संस्कृत–आशीर्वाद–मन्त्राः केवलं पौराणिक–प्राचीन–शब्दानां समुच्चयः न सन्ति, अपितु ते मनः–शरीर–आत्म–सशक्तीकरणीया स्फुरद्–शक्तेः जीवन–प्रद–स्रोतः सन्ति। एतेषां मन्त्राणां जपं गहनमनोवैज्ञानिकचिकित्सायाः सदृशं भवति, यत्र शब्दस्य स्पन्दनतरङ्गाः मानवमनः चेतनां च शान्तं कुर्वन्ति, केन्द्रीकृत्य च केन्द्रीभवन्ति अत एव एते मन्त्राः शब्दचिकित्सायां अपि प्रयुज्यन्ते। संस्कृत–अक्षर–शब्देषु निहितं वैज्ञानिक–संरचना, सामञ्जस्यं च शारीरिक–शक्तेः सन्तुलनं करोति, तनाव–निवारणं करोति, मानसिक–शान्तिं च प्रदाति।

अपि च, संस्कृत–आशीर्वाद–मन्त्राः भारतीय–सांस्कृतिक–व्यञ्जनस्य अभिन्न–अङ्गाः सन्ति। ऐते मन्त्राः सौहार्दस्य, प्रेमस्य, सामाजिकसौहार्दस्य च भावः प्रोत्साहयन्ति। अद्यतनयुगे यत्र जीवनं अस्थिरता–तनाव–विक्षेप–पूर्णं भवति, तत्र एतेषां मन्त्राणां पाठः अत्यन्तं आवश्यकः भवति। इदं पुनर्निर्देशनं न केवलं व्यक्तिगतशान्तिं अपितु सामाजिकसंवादस्य, संवेदनशीलतायाः, मूल्यानां च पुनर्निर्माणस्य कृते अपि एकं शक्तिशाली माध्यमम् अस्ति।

यदा वयं एतान् मन्त्रान् जपामः तदा न केवलं शब्दाः एव निर्गच्छन्ति अपितु अस्माकं अन्तः सकारात्मकशक्तिः, विश्वासः, आध्यात्मिकवृद्धिः च तरङ्गः प्रवहति। अत एव संस्कृत–आशीर्वाद–मन्त्राः अद्यत्वे अपि जीवनस्य गहन–तनावानां निवारणे, अस्माकं मानसिक–आध्यात्मिक–स्वास्थ्यस्य उन्नतिं कर्तुं, उत्तम–शान्तिपूर्ण–समाजस्य निर्माणे मार्गदर्शने च अस्मान् साहाय्यं कुर्वन्ति।

संन्दर्भ–सूची :–

1. कठोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर 2016।
2. तैतिरीयोपनिषद, गीताप्रेस, गोरखपुर 2016।
3. यजुर्वेद, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
4. ऋग्वेद, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
5. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, 1963,
6. मनुस्मृति, चौखम्बा विद्याभवन करागमी, 1998.
7. https://kvd1library.wordpress.com/portfolio/%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%95%E0%A5%83%E0%A4%A4-%E0%A4%B6%E0%A5%8D%E0%A4%B2%E0%A5%8B%E0%A4%95-%E0%A4%85%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%A5-%E0%A4%B8%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A4-1/

Tech-Driven Inclusion : Enhancing Entrepreneurship & Innovation for CWSN in India's Digital Economy

Dr. Nigam B. Pandya*

Abstract : The landscape of inclusive entrepreneurship in India is undergoing a significant transformation, spurred by policy shifts, technological innovation, and grassroots movements toward localization. As the country accelerates its digital transition, there emerges a unique opportunity to integrate Children With Special Needs (CWSN) into the entrepreneurial framework through the implementation of assistive technologies and inclusive digital platforms. This study explores how indigenous innovation—rooted in the 'Vocal for Local' initiative—offers scalable, cost-effective alternatives to international assistive technologies that often remain prohibitively expensive for most Indian families. Using Gujarat as a case study, the research investigates the synergistic relationship between technology, policy, and local entrepreneurship in enabling inclusive innovation. The findings underscore that India, through its burgeoning startup ecosystem and policy support, holds the potential to be a global leader in tech-enabled social entrepreneurship for marginalized populations.

Introduction :- India's demographic profile includes a significant proportion of individuals with disabilities, many of whom face entrenched social and economic barriers. Among this cohort, Children With Special Needs (CWSN) represent a particularly marginalized group, often excluded from mainstream educational and economic frameworks. According to the Census of India (2011), over 2.68 crore persons are living with disabilities, constituting more than 2% of the national population.

As India transitions into a digital-first economy, it becomes imperative to ensure that these advancements are inclusive. The convergence of policy-driven initiatives such as Startup India, Accessible India, and Digital India has laid a foundational framework for empowering persons with disabilities. Yet, for meaningful inclusion to materialize, the ecosystem must move beyond tokenistic gestures toward structural transformation via affordable and contextualized technological interventions.

The Landscape of Assistive Technology in India :- In the domain of assistive technology, cost and cultural relevance have been persistent challenges. Global manufacturers of bionic and mobility aids tend to focus on technologically advanced, yet expensive, devices aimed at developed economies. In countries like India, where the average annual income remains significantly lower, such devices are beyond the reach of most.

A bionic prosthetic limb from companies such as **Ottobock** or **Össur** can cost upwards of ₹50 lakh, making it unaffordable to the majority of India's population. This is particularly critical when considering that more than 80% of disabled individuals reside in rural or semi-urban regions where financial resources and institutional support are minimal.

Conversely, Indian innovations such as the **Jaipur Foot** and **Inali Arm** are revolutionizing the market by offering affordable, durable, and contextually adaptive alternatives that address not just physical disabilities but also socio-economic inequities.

***Assistant Professor, Dept. of Education, Dr. Babasaheb Ambedkar Open University, Ahmedabad.**

Figure 1: Cost comparison between international and Indian assistive technology solutions.

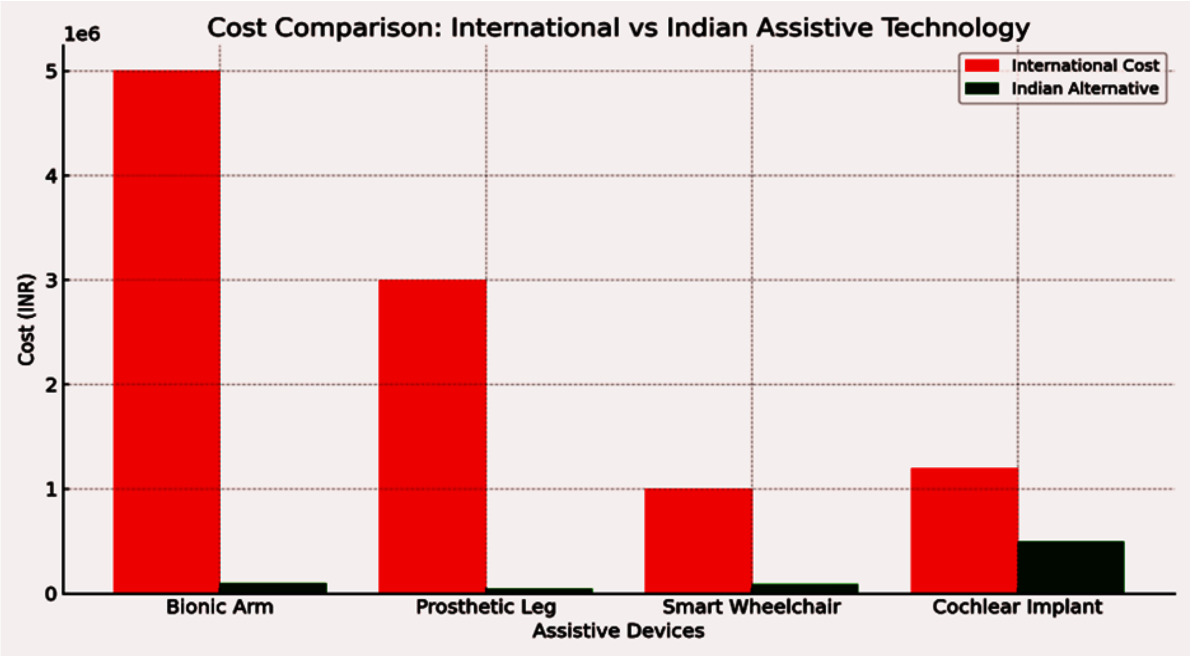

Source : Savage, M., Bhatnagar, T., et al. (2020). Product Narrative: Digital Assistive Technology. Loughborough University.

Vocal for Local – Contextual Innovation :- The 'Vocal for Local' campaign emphasizes not only the consumption of domestically produced goods but also the development of locally relevant solutions. This philosophy is especially potent when applied to assistive technologies. Local entrepreneurs and research institutions, including IIT Madras and BITS Pilani, are engaged in developing tools that are engineered with Indian users in mind—factoring in cultural practices, environmental conditions, and economic constraints.

A key example is NeoMotion's NeoFly wheelchair, which is optimized for Indian road conditions and priced between ₹55,000 and ₹90,000, compared to international counterparts costing over ₹10 lakh. This shift from import dependence to innovation-driven domestic production represents a paradigm change, aligning inclusive innovation with national economic strategies.

Inclusive Entrepreneurship in Gujarat : A Policy Laboratory :- Gujarat, a leading industrial and entrepreneurial state in India, has increasingly positioned itself as a laboratory for inclusive innovation. The government's proactive stance, visible through policy instruments like the Gujarat Startup Policy (2022–27), creates an ecosystem where technology, policy, and social equity converge. Under this policy, startups that focus on social impact—including assistive technology, education for CWSN, and inclusive design—are eligible for grants, tax benefits, and incubation support (Government of Gujarat, 2022).

Gujarat's iCreate (International Centre for Entrepreneurship and Technology) in Ahmedabad is a flagship incubator that has actively supported startups developing affordable prosthetics, smart mobility aids, and AI-based accessibility tools. Moreover, the Entrepreneurship Development Institute of India (EDII), based in Gandhinagar, has introduced specialized training modules tailored to persons with disabilities, including children transitioning into adulthood.

These modules cover not only business skills but also psychological readiness and legal awareness, helping bridge the gap between education and entrepreneurship. What distinguishes Gujarat's approach is its emphasis on localization and scalability. Rather than adopting imported models of social inclusion, Gujarat encourages startups to co-create solutions with disabled communities. This participatory approach increases the cultural relevance of products and services and fosters a sense of agency among CWSN and their caregivers.

Digital Platforms and Artificial Intelligence: Enabling Technological Equity :- The proliferation of digital infrastructure and AI-based solutions in India has opened up new frontiers in entrepreneurship for CWSN. Platforms such as DIKSHA, SWAYAM, and eVidyaloka have made remote learning accessible, often embedding inclusive design principles such as sign language interpretation, screen readers, and customizable interfaces.

Moreover, AI-driven applications are being used for skill development and micro-entrepreneurship. Voice-command interfaces, machine learning-based predictive text systems, and real-time speech-to-text converters have enabled individuals with sensory or motor impairments to manage inventory, communicate with clients, and maintain accounts with minimal external support. Startups like **Robo Bionics**, for example, are developing low-cost prosthetic hands with gesture-based controls and machine learning algorithms that adapt to user behavior.

India's expanding digital payments ecosystem, driven by **UPI** and **Aadhaar-linked mobile platforms**, has allowed many disabled individuals—particularly in rural Gujarat—to participate in micro-commerce without needing brick-and-mortar stores. This convergence of financial inclusion and technological access offers a transformative framework for enabling entrepreneurship at the margins. However, these digital tools are effective only when accompanied by **digital literacy** and **broadband accessibility**, which remain uneven across India's geography.

Challenges, Gaps, and the Need for Systemic Integration

Despite promising advancements, several structural challenges continue to inhibit the full realization of tech-driven inclusion for CWSN in entrepreneurship.

Affordability and Financial Constraints :- While Indian alternatives such as Jaipur Foot or Inali Arm are significantly more affordable than their international counterparts, the average Indian household—particularly in rural and semi-urban India—still finds these costs burdensome. According to the NSO (2023), India's per capita income stands at ₹1.97 lakh per year, while assistive devices often range between ₹50,000 and ₹1 lakh. Public subsidies for assistive technology remain limited in both reach and impact.

Lack of Integration in National Policies :- Although flagship programs such as Startup India and Accessible India Campaign exist, there is often little synergy between them. There is no unified framework to fund disability-tech startups through social sector allocations. Most startup funding bodies do not include "accessibility innovation" as a specific investment category.

Educational Inequities and Readiness Gaps :- The lack of specialized entrepreneurial training for CWSN within the education system hinders their capacity to transition into self-employment. Most vocational institutions still operate on outdated curricula that fail to incorporate digital entrepreneurship, e-commerce, or assistive technology usage.

Social Perception and Institutional Biases :- Entrepreneurship by persons with disabilities is often viewed through a lens of charity rather than capability. These biases limit both investor interest and market acceptance of disabled entrepreneurs. Therefore, a cultural shift is required alongside policy and technological interventions.

Conclusion :- India stands at a critical juncture in its socio-economic evolution. The convergence of technological innovation, grassroots entrepreneurship, and inclusive policy frameworks offers an unprecedented opportunity to integrate CWSN into the mainstream economic narrative. Initiatives grounded in the philosophy of *"Vocal for Local"* not only foster self-reliance but also produce assistive technologies that are affordable, culturally relevant, and globally competitive.

Gujarat's proactive stance demonstrates how regional ecosystems can serve as crucibles for inclusive entrepreneurship. Its blend of incubation support, policy incentives, and stakeholder engagement offers a replicable model for other states. Meanwhile, the deployment of AI, digital platforms, and indigenous prosthetic technologies is reshaping what is possible for disabled entrepreneurs.

Yet, for these initiatives to scale meaningfully, systemic issues of affordability, accessibility, and social perception must be addressed. Only through a holistic approach—one that combines technology, education, finance, and empathy—can India truly achieve a digital economy that is inclusive, resilient, and future-ready.

References :-

1. Census of India. (2011). Disabled Population by Type of Disability – India & States/UTs. Government of India.
2. Government of Gujarat. (2022). Gujarat Startup Policy 2022–27. Industries and Mines Department, Government of Gujarat.
3. Inali Foundation. (2023). Smart prosthetics for all. Retrieved from https://www.inalifoundation.com
4. Mobility India. (2020). National Conference on Assistive Technology for All 2030: Proceedings. Retrieved from https://mobility-india.org
5. National Statistical Office. (2023). Per Capita Income Report 2023. Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India.
6. NeoMotion. (2023). NeoFly Manual Wheelchair. Retrieved from https://www.neomotion.in
7. Savage, M., Bhatnagar, T., et al. (2020). Product Narrative: Digital Assistive Technology – A Market Landscape and Strategic Approach to Increasing Access to Digital Assistive Technology in Low- and Middle-Income Countries. Loughborough University. Retrieved from https://repository.lboro.ac.uk/articles/ report/ 14578815
8. Social Alpha. (2023). Assistive Tech Portfolio. Retrieved from https://www.socialalpha.org

ꕤ★ꕤ

'फुज्जार' कहानी संग्रह की पुस्तक समीक्षा व राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन (दिनांक 26 अप्रैल, 2025)

धनेश दत्त पाण्डेय*

विद्यार्थी मंच, मुक्तांचल व गाथा प्रकाशन के संयुक्त तत्वावधान में कथाकार धनेश दत्त पाण्डेय के कहानी संग्रह 'फुज्जार' की समीक्षा हेतु पश्चिम बंगाल के हावड़ा में एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में साहित्य जगत के अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों, शिक्षकों, शोधार्थियों और विद्यार्थियों ने सहभागिता की।

कार्यक्रम का आरंभ स्वागत वक्तव्य से हुआ, मंच संचालिका खुदीराम बोस कॉलेज की हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. शुभ्रा उपाध्याय ने आत्मीयता के साथ अतिथियों का स्वागत किया। उन्होंने कहा कि औपचारिकता के अभाव के बावजूद कार्यक्रम में आत्मीयता की कोई कमी नहीं रहेगी। मंच पर उपस्थित अतिथियों में पूर्व प्राध्यापक डॉ. अरुण कुमार, मुक्तांचल पत्रिका की संपादक डॉ. मीरा सिन्हा, डॉ. अरुण होता, डॉ. सत्या उपाध्याय, प्रो. मंजु रानी सिंह, मृत्युंजय श्रीवास्तव, डॉ. मनीषा झा, डॉ. इतु सिंह, कथाकार सेराज खान बातिश और स्वयं प्रख्यात कथाकार धनेश दत्त पाण्डेय शामिल थे।

मुख्य पुस्तक समीक्षा वक्तव्य विश्वभारती विश्वविद्यालय, शान्ति निकेतन की प्राक्तन प्राध्यापिका डॉ. मंजु रानी सिंह ने प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि 'फुज्जार' संग्रह की कहानियाँ भारतीय समाज के विविध यथार्थ—महानगरीय, ग्रामीण, कस्बाई की परतों को गहराई से उद्घाटित करती हैं। धनेश दत्त पाण्डेय की कहानियाँ केवल सतही यथार्थ नहीं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक यथार्थ की जटिलताओं को उजागर करती हैं। उन्होंने कहा कि कहानी में संप्रेषणीयता, सांद्रता और नाटकीयता आवश्यक हैं, और 'फुज्जार' की कहानियाँ इन तत्वों को बखूबी समेटे हुए हैं।

राष्ट्रीय संगोष्ठी के विषय 'हिंदी कहानी नई—पुरानी : परंपरा एवं परिदृश्य' पर कहानी विधा के बदलते स्वरूप, कथ्य और शिल्प के विवाद, तथा पठनीयता के प्रश्न पर भी विचार हुआ। वक्ताओं ने कहा कि आज की कहानी केवल सनसनीखेज या तात्कालिक मुद्दों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समाज के गहरे अंतर्विरोधों, जातिगत दंश और मानवीय संघर्षों को भी उजागर करती है। प्रेमचंद, उदय प्रकाश, स्वयं प्रकाश आदि के संदर्भ में हिंदी कहानी की परंपरा और समकालीनता पर भी चर्चा हुई।

डॉ. मनीषा झा ने 'फुज्जार' की कहानियों की तुलना 1960 की 'वापसी' जैसी कहानियों से की और बताया कि परिवार, संबंध और समय के बदलते समीकरण इन कहानियों की संवेदना को समकालीन बनाते हैं। उन्होंने कहा कि संग्रह की कहानियाँ आधुनिकता और परंपरा के द्वंद्व, पीढ़ियों के टकराव और बदलती सामाजिक संरचना को प्रभावशाली ढंग से चित्रित करती हैं। 'फुज्जार' की कहानियों पर लिलुआ हाई स्कूल के प्रधानाचार्य विवेक लाल, शिक्षक ऋतेश पाण्डेय, हिंदी विश्वविद्यालय की प्राध्यापिका दिव्या प्रसाद व डॉ. अनिता कुमारी ठाकुर ने कहानी की समालोचना में भाग लिया।

कार्यक्रम में शोधार्थी निखिता पाण्डेय, शालू सिंह, संध्या राम, दिव्या पाण्डेय व प्राध्यापिका डॉ. रेखा कुमारी त्रिपाठी, डॉ. अनिता कुमारी ठाकुर ने अपने शोधपत्र का वाचन किया। समापन सत्र में वक्ताओं ने कहा कि 'फुज्जार' कहानी संग्रह हिंदी कहानी की समृद्ध परंपरा को आगे बढ़ाता है और समकालीन समाज की जटिलताओं को नई दृष्टि से प्रस्तुत करता है। यह समीक्षा कार्यक्रम न केवल 'फुज्जार' कहानी संग्रह की साहित्यिक महत्ता को रेखांकित करने वाला रहा, बल्कि हिंदी कहानी की परंपरा, उसकी नवीन प्रवृत्तियों और सामाजिक सरोकारों पर भी गंभीर विमर्श का मंच बना।

साहित्यिक कार्यक्रम को सफल बनाने में संयोजक डॉ. विनय मिश्रा, डॉ. विजया सिंह, सुशील कुमार पाण्डेय, विनोद यादव, पद्माकर व्यास, सरिता खोवाला, परमजीत पंडित तथा प्रीति श्रीवास्तव, त्रिनेत्रकांत त्रिपाठी, राजसार्थक शर्मा, बलराम साव, रुद्रकांत झा व अन्य का सहयोग रहा।

*** सुप्रसिद्व कहानीकार एवं समीक्षक, 54, राजेश्वर नगर, फेज—1, लेन—1, गली—5, सहस्त्रधारा रोड़, देहरादून।**

'फुज्जार' कहानी संग्रह की समीक्षा एवं राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन (दिनांक : 26 अप्रैल, 2025) का चित्रपटल

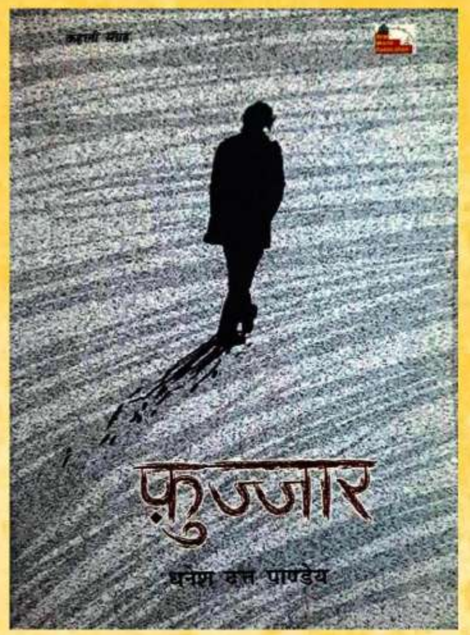

विद्यार्थी मंच, मुक्तांचल व गाथा प्रकाशन के संयुक्त तत्वावधान में कथाकार धनेश दत्त पाण्डेय के कहानी संग्रह 'फुज्जार' की समीक्षा हेतु पश्चिम बंगाल के हावड़ा में एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में साहित्य जगत के अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों, शिक्षकों, शोधार्थियों और विद्यार्थियों ने सहभागिता की।

आलोचन दृष्टि,
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद-फतेहपुर, उ0प्र0-212635
ई-मेल : aalochan.p@gmail.com
वेवसाइट : https://aalochandrishti.org/

Website QR Code